

GL SANS 491.25

PAN



125487
LBSNAA

दूर शास्त्री प्रशासन अकादमी
Radur Shastri Academy
of Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या

125487

Accession No.

वर्ग संख्या

GL SANS

Class No.

491.25

पुस्तक संख्या

Book No.

PAN पाणिनी

900

अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्त्वः ।

दशमो भागः ।

पारिभाषिकः ।

पाणिनिमुनिप्रणतायामष्टाध्याय्यां नवमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां द्वादशं पुस्तकम् ।

यद्यदक्षगर्भा शास्त्री के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय
अजमेर में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है

क्योंकि

इस की रजिस्टरी कराई गई है।

संवत् १९४८ पौष शुक्ला १०

द्वितीयवार २००० पुस्तक छपे

मूल्य ३॥

॥ भूमिका ॥

संज्ञापरिभाषाविधिनिषेधनियमातिदेशाधिकाराख्यानि सप्तविधानि सूत्राणि भवन्ति । सम्यग् जानीयुर्यथा सा संज्ञा; यथा (वृद्धिरादैच्) इत्यादि । परितः सर्वतो भाष्यन्ते नियमायाभिस्ताः पारिभाषाः; यथा (इको गुणवृद्धी) इत्यादि । यो विधीयते स विधिर्विधानं वा; यथा (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि । निषिध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषेधाः; यथा (न धातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि । नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा यैस्ते नियमाः; यथा (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि । अतिदिश्यन्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्तेऽतिदेशाः; यथा (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि । अधिक्रियन्ते पदार्था यैस्तेऽधिकाराः; यथा (कारके) इत्यादि । एषां सप्तविधानां सूत्राणां मध्याद्यतोऽयं परिभाषाणां व्याख्यानो ग्रन्थोऽस्ति तस्मात्पारिभाषिको वेदितव्यः ॥

सूत्र सात प्रकार के होते हैं (संज्ञा, परिभाषा, विधि, निषेध, अतिदेश, अधिकार) अच्छे प्रकार जिस से जानें वह संज्ञा कहानी है जैसे (वृद्धिरादैच्) इत्यादि । जिन से सब प्रकार नियमों की स्थिरता को जाय वे परिभाषा सूत्र कहते हैं जैसे (इको गुणवृद्धी) इत्यादि । जो विधान किया जाय वा जो विधान है वह विधि कहता है जैसे (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि । निषेध उस को कहते हैं कि जिस से कार्यों का निवारण किया जाय जैसे (न धातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि । नियम उनको कहते हैं कि जिन से प्रयोगों का निश्चय किया जाय जैसे (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि । जिस से किसी की तुल्यता लेकर कार्य कहें वह अतिदेश कहता है जैसे (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि । और जिन से पदार्थों की विशेष अनुवृत्ति हो उन को अधिकार कहते हैं जैसे (कारके) इत्यादि । इन सात प्रकार के सूत्रों में से जिसलिये यह परिभाषाओं का व्याख्यानरूप ग्रन्थ है इसलिये इस का नाम पारिभाषिक इका है

इन परिभाषाओं में से जो अष्टाध्यायीस्य परिभाषासूत्र हैं वे संधिविषय में व्याख्यापूर्वक लिख दिये हैं यहाँ केवल महाभाष्यस्य परिभाषासूत्रों का व्याख्यान है । परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य यही है कि दोषों का निवारण करके व्यवस्था कर देना । इसीलिये इस ग्रन्थ को बनाया है कि व्याकरण के सन्धि आदि प्रकरणों में जो २ संदेह पड़ते हैं वे इन परिभाषाओं के पठन पाठन से अवश्य निवृत्त हुआ करेंगे । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं । और इस में मूल परिभाषा के आगे जो संख्या पड़ी है वह अष्टाध्यायी के सूत्र की है उस सूत्र की व्याख्या में महाभाष्य में वह परिभाषा लिखी है । और परिभाषा के पहिले जो संख्या है वह इस ग्रन्थ की है ॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर }
 आश्विन शुक्ल संवत् १८३८

दयानन्द सरस्वती

अथ पारिभाषिकः ॥

परितो व्यापृतां भाषां पारिभाषां प्रवक्षते ।

सब ओर से वैदिक लौकिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिस का सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिस से सिद्ध हो उस को परिभाषा कहते हैं । इस पारिभाषिक ग्रन्थ में प्रथम परिभाषा की भूमिका लिख कर आगे लक्ष्य अर्थात् उदाहरण लिख के पुनः मूल परिभाषा लिखेंगे । और उस के आगे उस का स्पष्ट व्याख्यान करेंगे । अब प्रथम पाणिनीय व्याकरण अष्टाध्यायी के प्रत्याहारसूत्रों में (अइउण्, लण्) इन दो सूत्रों में लोप होने वाला हल् णकार पड़ा है इस णकार से (अण्) और (इण्) दो प्रत्याहार बनते हैं । सो जिन सूत्रों में अण् इण् प्रत्याहारों से काम लिया जाता है वहां सन्देह पड़ता है कि किन २ सूत्रों में पूर्व और किन २ में पर णकार से (अण्) तथा (इण्) प्रत्याहार जानें इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

१-व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् ॥

लण् सूत्र पर ॥

जिस सूत्र वा वार्त्तिक आदि में सन्देह हो वहां व्याख्यान से विशेष बात का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु सन्देहमात्र के होने से सूत्र आदि ही को अन्यथा न जान लें । जहां पृथक् २ देखे हुए दो पदार्थों के समान अनेक विरुद्ध धर्म एक में दीख पड़ें और उपलब्धि अनुपलब्धि की अवस्था हो अर्थात् जो पदार्थ है और जो नहीं है दोनों की उपलब्धि और दोनों की अनुपलब्धि होती है क्योंकि पदार्थों के साधारण धर्म को लेकर सन्देह होता है उन में से जब विशेष अर्थात् किसी एक का निश्चय हो जाता है तब सन्देह नहीं रहता जिन सूत्र आदि में सन्देह पड़ता है वहां उन में कः प्रकार का व्याख्यान करना चाहिये पदच्छेद, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ, पूर्वपक्ष-शङ्का, उत्तरपक्ष-समाधान इन कः प्रकार के व्याख्यानों से सन्देहों की निवृत्ति कर लेनी चाहिये (प्रश्न) जैसे प्रथम (दलोपे-

पूर्वस्य दीर्घोऽणः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से लेना वा पर से यह संदेह है (उत्तर) इस में निस्संदेह पूर्व णकार से लेना चाहिये क्योंकि जो पर णकार से लिया जावे तो इस सूत्र में (अण्) का ग्रहण करना व्यर्थ है क्योंकि (अचश्च) इस सूत्र से ह्रस्व दीर्घ भूत अच् ही के स्थान में होते हैं इस से (अच्)की उपस्थिति होही जाती फिर (अण्) ग्रहण का यही प्रयोजन है कि इत्यादि सूत्रोंमें पूर्व णकार ही से लिया जावे (प्रश्न) और (अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से वा पर णकार से लेना चाहिये (उ०) निस्संदेह पर णकार से (अण्) प्रत्याहार का ग्रहण है क्योंकि (उक्तं) इस सूत्र में ऋकार तत्पर इसीलिये पड़ा है कि (अचौक्तत्) इत्यादि प्रयोगों में ऋकार को ह्रस्व ऋकार ही आदेश हो अर्थात् सवर्णग्रहण (अणुदित्०) परिभाषा सूत्र से ह्रस्व का सवर्ण दीर्घन हो जावे। जो पूर्व णकार से अण् ग्रहण होता तो पूर्व अण् में ऋकार के होने से ऋकार को सवर्ण ग्रहण प्राप्त हो नहीं फिर तत्पर क्यों पड़ते। इस से स्पष्ट हुआ कि (अणुदित्०) इस सूत्र में पर णकार से और इसी एक सूत्र को छोड़ के अन्यत्र सब सूत्रों में पूर्व णकार से अण् ग्रहण है (प्र०) और (इण्कोः) इत्यादि जिन सूत्रों में इण् प्रत्याहार पड़ा है, वहाँ पूर्व वा पर णकार से ग्रहण करना चाहिये (उ०) यहाँ सर्वत्र निस्सन्देह पर णकार से इण् समझना चाहिये क्योंकि पूर्वसे इण् प्रत्याहार में (इ, उ) दो ही वर्ण आते हैं सो जहाँ इन दो वर्णों से कार्य लिया है वहाँ (त्वोः) ऐसा इ उ को विभक्ति के साथ सन्धि करके पड़ा है यहाँ इण् पड़ते तो कुछ गौरव नहीं था किन्तु आधी मात्रा का लाभ ही था फिर इण् प्रत्याहार के न पड़ने से निश्चय हुआ कि सर्वत्र पर णकार से इण् प्रत्याहार लिया जाता है। अन्यत्र भी जहाँ कहीं शिष्ट वचन में सन्देह पड़े वहाँ व्याख्यान से विशेष करके सत्य विषय का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु उस वचन को व्यर्थ जान के नहीं छोड़ देना चाहिये और सन्दिग्ध लौकिक व्यवहारों का भी विशेष व्याख्यान से निर्णय किया जाता है ॥ १ ॥

(सार्वधातुकार्षधातुकयोः) यह गुणकार्य होने का काल है यहाँ (अलोन्त्यस्य, इको गुणवृद्धौ) इन दो परिभाषाओं की विधिसूत्र के साथ परिभाषाबुद्धि से एक-वाक्यता हो इस लिये कार्यकाल परिभाषापक्ष, और जब (हयवरट्, हल्) यहाँ दो हकारों का उपदेश इत्यादि विषयों में सन्देह पड़े तब उस विषय के साथ सामान्य विषयकबुद्धि से परिभाषारूप व्याख्या की एकवाक्यता होवे। इस-लिये यन्त्रोद्देश पक्ष है। इस से ये दोनों परिभाषा की गई हैं ॥

२-कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥

३-यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ११ ॥

(कार्यस्य कालः कार्यकालः कार्यकालः कालोऽस्य तत् कार्यकालम्, संज्ञा च परिभाषा च तत्संज्ञापरिभाषम्, उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम्) संज्ञा और परिभाषा का समय वही है जो कार्य करने का काल होता है उसी समय उन की उपस्थिति होती है । जैसे दीपक एक स्थान पर रखा हुआ सब घर को प्रकाशित करता है वैसे परिभाषा भी एक देश में स्थित हो कर सब शास्त्र के विषयों को प्रकाशित करती है इस में प्रमाण (परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती कृत्स्नं शास्त्रमभिज्वलयति प्रदीपवत्, यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वैवेकमाभिज्वलयति) महाभाष्य० २ । १ । १ ॥ और यथोद्देशपक्ष से प्रयोजन यह है कि जिस विषय पर जिस परिभाषा का उच्चारण किया हो वह उस का उल्लंघन न करे अर्थात् उस विषय के अनुकूल उस की प्रवृत्ति होवे । इन दोनों पक्षों में भेद यह है कि कालपक्ष की परिभाषा किसी की दृष्टि में असिद्ध नहीं मानी जाती । और यथोद्देशपक्ष की परिभाषा असिद्ध प्रकरण में नहीं लगती ॥ २ । ३ ॥

(दाधाव् वदाप्) इस सूत्र में अदाप् कहने से दाप् लवने धातु का निषेध हो सकता है फिर दैप् शोधने धातु की घुसंज्ञा हो जावे तो (अवदातं सुखम्) यहां अनिष्ट दत् आदेश प्राप्त है इसीलिये दैप् धातु की घुसंज्ञा इष्ट नहीं है इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा की गई है ॥

४-अनेकान्ता अनुबन्धाः ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

प्, ज्, ङ्, क् इत्यादि अनुबन्ध जिन धातु आदि के साथ युक्त होते हैं उन के एकान्त अर्थात् अवयव नहीं किन्तु वे अनुबन्ध उन धातु आदि से पृथक् हैं । इस से यह सिद्ध हुआ कि "दैप्" धातु को एजन्त मान कर आकारादेश किये पीछे दाप् मान कर इसी घुसंज्ञा का निषेध होता है इसी से (अवदातं सुखम्) यहां दोष नहीं आता ॥ ४ ॥

अव (अनेकाल् शिखर्वस्य) इस सूत्र से (अनेकाल्) और (शित्) आदेश संपूर्ण के स्थान में होते हैं (इदम् इग्, अष्टाभ्य औश्) यहां (इग्) और औश् भी शकार के सहित अनेकाल हैं फिर अनुबन्धों * के एकान्तपक्ष में शित् ग्रहण ज्ञापक है इस से यह परिभाषा निकली ॥

* अनुबन्धों में एकान्त और अनेकाल दोनों पक्ष माने जाते हैं । अनेकान्तपक्ष में परिभाषा का प्रयोजन दिखादिवा और एकान्तपक्ष इसलिये मानते हैं कि अनेकान्तपक्ष में क् जिस का इत् गया : दा वह कित् नहीं हो सकता क्योंकि कित् शब्द में बहुव्रीहि सहास से अन्य पदार्थ प्रत्यय के साथ ककार अनुबन्ध का मुख्य सम्बन्ध नहीं घटता और एकान्तपक्ष में घट जाता है और अनेकान्तपक्ष में शकार अनुबन्ध से शित् अनेकाल नहीं हो सकता फिर एकान्तपक्ष के विधि ही अगली ५ । ६ । ३० तीनों परिभाषा हैं ॥

५-नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ५५ ॥

अनुबन्ध के सहित जो अनेकाल् हो उसको अनेकाल् नहीं मानना किन्तु जो अनुबन्धरहित अनेकाल् हो वही अनेकाल् कहाता है इस से यह आया कि (इश्) आदि आदेश शित् होने से अनेकाल् नहीं होते तो (शित्) आदेश सार्थक होकर स्वार्थ में इस परिभाषा का चरितार्थ होगया और अन्यत्र फल यह है कि जो अर्वन् शब्द को (अर्वणस्त्रसावनजः) इस सूत्रसे (ह) आदेश कहा है उस को नष्टकार अनुबन्ध के सहित अनेकाल् मान लें तो सर्वादेश अनिष्ट प्राप्त हो अन्य को इष्ट है अनुबन्ध कृत अनेकाल् न होने से सर्वादेश नहीं होता इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं ॥ ५ ॥

अब इस पाँचवीं परिभाषा के एकान्तपक्ष में होने से दैप् धातु के प्रकार का लोप प्रथम होगया क्योंकि लोपविधि सब से बलवान् है । लोप किये पीछे आकारादेश करने से (अदाप्) इस से घुसंज्ञा का निषेध नहीं हो सकता । और किसी प्रकार प्रकार का लोप प्रथम न करें तो अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दैप् धातु एजन्त नहीं पुनः आकारादेश नहीं प्राप्त है तो (अवदातं मुखम्) यहां घुसंज्ञा होनी चाहिये इसलिये आपकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

६-नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १९ ॥

अनुबन्ध के होने से एजन्तपन की हानि नहीं होती (उद्दीचां माङो०) इस सूत्र में (मेङ्) धातु का माङ्निर्देश नहीं करते तो व्यतिहारग्रहण भी नहीं करने पड़ता क्योंकि मेङ्धातु का व्यतिहार अर्थ ही है फिर (उद्दीचां मेङ्) इतने छोटे सूत्र से सब काम निकल जाता तो बड़ा सूत्र करने से यह आया कि अनुबन्ध के बने रहते ही आकारादेश हो जाता है कि जैसे मेङ् का माङ् बन गया अर्थात् अनुबन्ध के होने से भी एजन्तत्व की हानि नहीं होती । जैसे कि मेङ् में (ङ्) अनुबन्ध के बने रहते ही एच् निमित्त आकारादेश होगया इससे यह परिभाषा स्वार्थ में चरितार्थ हुई और अन्यत्र फल यह है कि दैप् धातु को भी अनुबन्ध के वर्तमान समय ही में एजन्त मान कर आकारादेश हो जाता है फिर अदात् निषेध के प्रवृत्त होने से घुसंज्ञा का प्रतिषेध होकर (अवदातं मुखम्) प्रयोगसिद्ध होता है ॥ ६ ॥

अब अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में यह भी दोष आता है कि (अण्) और (क्) प्रत्यय में (ण्, क्) अनुबन्धों के लगे होने से भिन्नरूप वाले समझे जावें फिर सरूप प्रत्यय नित्य बाधक होते हैं अर्थात् अपवाद विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती यह बात नहीं बनेगी इस से (गोदः, कम्बलदः) यहां

(अण्) का अपवाद (क) प्रत्यय हो जाता है इस अपवाद के विषय में उत्सर्ग अण् भी होना चाहिये इसलिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

७—नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

जिन में अनुबन्धमात्र का भेद हो, वे भिन्नरूपवाले असरूप नहीं कहते । (ददातिदधात्योर्विभाषा) इस सूत्र में विभाषा ग्रहण इसलिये है कि (श) प्रत्यय के पक्ष में आकारान्त से विहित उत्सर्ग रूप (ण) प्रत्यय भी होजावे और (अण्, क) प्रत्यय के समान (ण, श, प्रत्यय भी अनुबन्ध से असरूप और अनुबन्ध रहित सरूप ही हैं फिर असरूप प्रत्ययों में तो (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) इस परिभाषा सूत्र से उत्सर्गापवाद विकल्प ही हो जाता फिर विभाषाग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाता है अनुबन्धमात्रभेद के होने से असारूप्य नहीं होता अर्थात् (ण, श) प्रत्यय असरूप नहीं हैं कि जो (वाऽसरूप०) परिभाषा से विभाषा होजावे इस से विभाषा ग्रहण स्वार्थ में चरितार्थ और अन्यत्र फल यह है कि इसी से (गोदः, कम्बलदः) यहां (क) अपवाद के विषय में (अण्) उत्सर्ग भी नहीं होता ॥ ७ ॥

अब संज्ञा दो प्रकार की होती है एक तो जो वाच्यवाचक संकेत से किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिये किसी का कुछ नाम रख लेना उस को कृत्रिमसंज्ञा कहते हैं और जो प्रकृति प्रत्यय के योग से यौगिक अर्थ होता है उस को अकृत्रिम संज्ञा कहते हैं । सो लौकिक व्यवहारों में तो यही रीति है कि जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव हो वहां कृत्रिम संज्ञा ली जावे अकृत्रिम नहीं । यथा (केनचिदुक्तं गोपालकमानयेति) जैसे किसी ने कहा कि गोपालक को लेआ एक तो यहां गोपालक किसी निज मनुष्य का नाम है । और दूसरा जो कोई गौओं का पालन करे उसको गोपाल कहते हैं तो यह अर्थ किसी निज के साथ नहीं है । फिर इस कृत्रिमसंज्ञा वाले निज गोपालक का ही ग्रहण होता है ऐसे अब व्याकरण में जहां कृत्रिम अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव है जैसे धातु, प्रातिपदिक, बहुव्रीहि, तत्पुरुष, वृद्धि, गुण, सवर्ण, सम्प्रसारण, नदी इत्यादि शब्दों में कृत्रिम संज्ञा का ग्रहण हो वा अकृत्रिम का इसलिये यह परिभाषा है ॥

८—कृत्रिमाकृत्रिमयोःकृत्रिमेकार्यसम्प्रत्ययः ॥ अ० ॥ १ । १ । २३ ॥

जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं में कार्य होना सम्भव हो वहां कृत्रिम संज्ञा में कार्य होना निश्चित रहे अकृत्रिम में नहीं इस से व्याकरण में भी धातु आदि कृत्रिम संज्ञाओं से कार्य लेने चाहिये सुवर्ण आदि धातु संज्ञक से नहीं ॥ ८ ॥

अब इस कृत्रिम परिभाषा के होने से दोष आते हैं कि जहाँ कृत्रिमसंज्ञा के लेने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जैसे (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) इस सूत्र में जो कृत्रिम कर्मसंज्ञा का ग्रहण होवे तो (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहाँ कर्त्ता को ईप्सिततम धान्य कर्म के होने से आत्मनेपद होना चाहिये वह यहाँ दृष्ट नहीं है इसलिये यह परिभाषा है ॥

९—उभयगतिरिह भवति ॥ अ० ॥ १ । १।२३ ॥

इस व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार का बोध होता है अर्थात् कहीं कृत्रिम और कहीं अकृत्रिम का भी ग्रहण होता है जैसे (कर्मणि द्वितीया) यहाँ कृत्रिम कर्मसंज्ञा और (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) कृषीवला व्यतिलुनते। यहाँ अकृत्रिम क्रियारूप कर्म का ग्रहण है इसलिये (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहाँ अकृत्रिम कर्म के होने से (आत्मनेपद) नहीं होता तथा (कर्त्तृकरणयोः स्थतीया) देवदत्तेन ग्रामो गम्यते, रथेन गच्छति । यहाँ कृत्रिम करणसंज्ञा और (शब्दवैरकलहाभ्रकाशमेघेभ्यः करणे) शब्दं करोति शब्दायते । यहाँ अकृत्रिम करणसंज्ञा ली जाती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८ ॥

(अव्ययिता, गयिता) इत्यादि प्रयोगों में इङ् और शीङ् धातु को गुणनिषेध होना चाहिये क्योंकि अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दोनों धातु क्ति हैं और अनेकान्तपक्ष में अनुबन्ध पृथक् भी हैं इस में गुणनिषेध कार्य और इगन्त कार्य हैं ॥

१०—कार्यमनुभवन् हि कार्यो निमित्तत्वेननाश्रीयते ॥

कार्य करते हुए कार्यो का निमित्तगुण से आश्रय नहीं किया जाता है अर्थात् जिसके आश्रय से कार्य होता हो वही उसका निमित्त कार्यो होता है जैसे क्ति का निमित्त इगन्त नहीं कि जो वह क्ति इगन्त से उत्पन्न हुआ हो जो क्ति का निमित्त इगन्त कार्यो होता तो अवश्य गुण का निषेध हो जाता (स्थण्डिला ऋषितरि०) इस सूत्र में (शीङ्) धातु को गुणपठनज्ञापक से यह परिभाषा निकली है । तथा सन्नन्त यङन्त को कहा क्ति जणुं धातु के नुभाग को कहा जाता है क्योंकि सन का निमित्त जणुं धातु है (जणुं न विषति' जणुं न विषति) इत्यादि ॥ १० ॥

(प्रणिदापयति, प्रणिधापयति) इत्यादि प्रयोगों में (दा, धा) रूप को कही हुई सुसंज्ञा पुगल् (दाप्, धाप्) को न प्राप्त होने से सुसंज्ञक धातुओं के परे (प्र) उपसर्ग से उत्तर नि के नकार कोणत्व न होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा की गई है ॥

११-अर्थवत् आगमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते* ॥ अ०

१।१।२० ॥

जो अर्थवान् प्रकृति आदिको टिट् कित् और मित् आगम होते हैं वे उन्हीं प्रकृति आदि के स्वरूपभूत होने से उन्हीं के ग्रहणसे ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् वे पुक् आदि आगम प्रकृति आदि से पृथक् स्वतन्त्र नहीं समझे जाते इस से (प्रणि-दापयति) आदि में पुगन्त की भी घुसंज्ञा के होजाने से एत्व आदि कार्य होजाते हैं तथा (सर्वेषाम्) इत्यादि प्रयोगों में भी सुहादि आगमों के तद्गुणीभूत होने से (साम्)को भलादि सपुं मानकर एकारादेश होहीजाता है इसी प्रकार लोक में भी किसी प्राणी का कोई अङ्ग अधिक होजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ ११ ॥

अब (पादः पत्) इस सूत्र से जो पाद शब्द को (पत्) आदेश कहा है यहाँ तदन्तविधि परिभाषा के आश्रय से द्विपात्, त्रिपात् शब्दों को भी भसंज्ञा में (पत्) आदेश होता है उस पत् आदेश के अनेकाल् होने से द्विपात् त्रिपात् संपूर्ण के स्थान में प्राप्त है सो जो संपूर्ण के स्थान में होवे तो (द्विपदः पश्य, त्रिपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग न बन सकें इसलिये यह परिभाषा कही है ॥

१२-निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ अ० ६।४।१३० ॥

षष्ठी विभक्ति से दिखाये हुए स्थानी के स्थान में प्राप्त जो प्रथमानिर्दिष्ट आदेश वह निर्दिश्यमान अर्थात् सूत्रकार वा वार्त्तिकार ने जितने स्थानी का निर्देश किया हो उसी के स्थान में हो अर्थात् तदन्तविधि से जो पूर्वपद वा अन्य उसके सदृश कोई आजावे तो उस सब के स्थान में न हो । इस से द्विपात् शब्दमें पाद-आत्र को पत् आदेश हो जाता है (द्वि, त्रि) आदि वच जाते हैं इसी से (द्विपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग बन जाते हैं ॥ १२ ॥

अब (चेता, स्तोता) इन प्रयोगों में (स्थानेऽन्तरतमः) इस सूत्र से प्रमाणकृत आन्तर्य मानें तो ह्रस्व इकार उकारके स्थान में अकार गुण प्राप्त है इससे अभीष्ट प्रयोगों की सिद्धि नहीं होती इसलिये यह परिभाषा की है ॥

* जो नागेश और भट्टोजिदीक्षित आदि नवीन लोग इसपरिभाषा को (यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते) इस प्रकार की लिखते मानते और व्याख्यान भी करते हैं सो यह पा० महाभाष्य से विरुद्ध है, महाभाष्य में यह परिभाषा ऐसी कहीं नहीं लिखी इसलिये इन लोगों का प्रसाद है ।

१३-यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत एवान्तर्यं बलीयः ॥ अ०

१ । १ । ५० ॥

यहाँ अनेक प्रकार का अर्थात् स्थानकृत, अर्थकृत, गुणकृत और प्रमाणकृत यह चार प्रकार का आन्तर्य प्राप्त हो वहाँ जो स्थान से आन्तर्य है वही बलवान् होता है इस से प्रमाणकृत आन्तर्यके छूट जाने से स्थानकृत आन्तर्यके आश्रयसे एकार ओकार गुण होकर (चेता, स्तोता) प्रयोग बन जाते हैं स्थानकृत आदिके विशेष उदाहरण सन्धिविषय में लिख चुके हैं ॥ १३ ॥

(संख्याया अतिशदन्तयाः कन्) यहाँ ति और श्रुत् जिस के अन्त में ही उस से कन् प्रत्यय का निषेध किया है । सो (कतिभिः क्रीतम्, कतिकम्) यहाँ भी त्यन्त से निषेध होना चाहिये और कन् प्रत्यय तो इष्ट ही है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१४-अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ॥ अ० ५ । १ । २२ ॥

अर्थवान् के ग्रहण होने में अनर्थक शब्दों का ग्रहण नहीं होता इससे अर्थवान् (ति) शब्द के ग्रहण में निरर्थक डतिप्रत्ययान्त के ति का ग्रहण नहीं होता इस से (कतिकम्) यहाँ कन् का निषेध नहीं हुआ । इसी प्रकार प्रशब्द से ऊठ के परे वृद्धि कही है सो (प्र × ऊठवान् = प्रोठवान्) यहाँ ऊठ शब्द निरर्थक है इसलिये वृद्धि नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ४ ॥

अब अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा के होने से भी (अमहान् महान् संपन्नो महद्भूत-चन्द्रमाः) इस प्रयोग में महत् शब्द को आकारादेश होना चाहिये और आत्वके होने से अनिष्टसिद्धि प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१५-गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ अ० ६ । ३ । ४६ ॥

जो गुणों से प्राप्त होवे वह (गौण) और जो गुणों से प्राप्त होवे वह (मुख्य) कहा-ता है उस गौण से प्राप्त और मुख्य दोनों में एककाल में एककार्य प्राप्त होता मुख्य में कार्य होवे और गौण में नहीं इससे (महद्भूतचन्द्रमाः) यहाँ आकारादेश नहीं होता क्योंकि यहाँ महत् शब्द अभूततद्भाव अर्थ में मुख्य और चन्द्रमा के साथ समानाधिकरण में गौण विशेषण है इसी प्रकार (अगौः, गौः संपद्यत, गोभवत्) यहाँ च्विप्रत्ययान्त गो शब्द निपातसंज्ञक है परन्तु मुख्य ओकारान्त निपात नहीं इसलिये (ओत्) सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १५ ॥

अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता यह कह चुके हैं सो (राज्ञा) राजन् शब्द में कनिन् प्रत्यय का अन् अर्थवान् है इसलिये अन्नन्त के अकार का लोपहोना ठीक है और (साम्ना) यहां सामन् शब्द में मनिन् प्रत्यय का मन् अर्थवान् और अन् अनर्थक है इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

१६-अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

अन्, इन्, अस्, मन् ये जिन सूत्रों में ग्रहण हैं वहां अर्थवान् और अनर्थक दोनों से तदन्तविधि होता है । अन् में तो अर्थवान् और अनर्थक दोनों के उदाहरण दे दिये । इन् (दण्डी) यहां इनि प्रत्यय के अर्थवान् इन्नन्त को दीर्घ और (वाग्मी) यहां अर्थवान् (असुन्) प्रत्यय के अस् को दीर्घ और (पीतवाः) यहां पीत पूर्वक (वस्) धातु से क्तिप् हुआ है सो वस् में अनर्थक अस् को दीर्घ होता है । मन् (सुष्ठुशर्म यस्याः सा सुगर्भा) यहां तो अर्थवान् मन्नन्त से ङीप् का निषेध है और (सुप्रथिमा) यहां इमनिच् प्रत्यय का इमन् अर्थवान् और मन् भाग निरर्थक को भी ङीप् का निषेध होता ही है ॥ १६ ॥

और आगे एक परिभाषा लिखेंगे कि समीपस्थ का विधान वा निषेध होता है इस में यह दोष आता है कि जैसे (लिङ्सिचावात्मनेपदेषु) इस सूत्र की अनुवृत्ति (उच्च) इस में आती है । सो जो समीपस्थ के विधि निषेध का नियम है तो आत्मनेपद की अनुवृत्ति प्रानी चाहिये क्योंकि आत्मनेपद की अपेक्षा में (लिङ्, सिच्) दूर हैं और (लिङ्, सिच्) की अनुवृत्ति के बिना कार्यसिद्धि नहीं हो सकती इसलिये यह वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

१७-एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ॥

जो एक सूत्र में निर्देश किये पद हैं उन की अन्य सूत्रों में एकसाथ प्रवृत्ति और एकसाथ निवृत्ति हो जाती है इस से (उच्च) सूत्र में लिङ् सिच् की भी अनुवृत्ति आ जाती है । इसी प्रकार अन्यत्र बहुत स्थलों के सूत्र वार्त्तिकों में यह रीति दीख पड़ती है कि जैसे कहीं दो पदों की अनुवृत्ति आती है उन में से जब एक को छोड़ना होता है तब द्वितीय पद को फिर के पढ़ते हैं तो यही प्रयोजन है कि उन दोनों पदों की अनुवृत्ति एक साथ ही चलती है उस में से एक को छोड़ के दूसरे पद की अनुवृत्ति नहीं जा सकती ॥ १७ ॥

अब इस पूर्व परिभाषा के होने में यह दोष है कि (अलुगुत्तरपदे) इस सब सूत्र का अधिकार चलना है उस में अलुक् अधिकार तो आनङ् विधान से पूर्व २ हो रहता है फिर उत्तरपदाधिकार पादपर्यन्त क्यों जावे इसलिये यह परिभाषा है ॥

१८-एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति ॥ अ०

४।१।२७॥

एक सूत्र में पृथक् पठित पदों में से भी कहीं एकदेश की अनुवृत्ति होती है इससे उत्तरपदाधिकार का पादपर्यन्त जाना सिद्ध हो गया । तथा (दामहाय-नान्ताच्च) यहां पूर्वसूत्र से संख्या की अनुवृत्ति आती है और अव्यय की नहीं और (पञ्चातिः) इस सूत्र में पूर्व सूत्र से मूलशब्द की अनुवृत्ति आ जाती है पाक की नहीं आती इत्यादि ॥ १८ ॥

(अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) यहां प्रत्ययग्रहण से सवर्ण का निषेध किया है इस का यही प्रयोजन है कि (सनागंसभिच्च उः) इ आदि में उ आदिप्रत्यय अपने सवर्णादीर्घ आदि के ग्राहक न हों सो जब स्त्री प्रत्यय को छोड़ के अन्यदीर्घ प्रत्यय से किसी अर्थ की प्रतीति ही नहीं होती तो दीर्घप्रत्यय नहीं हो सकता इसलिये प्रत्ययग्रहण के व्यर्थ होने से यह ज्ञापक होता है कि इस सूत्र में यौगिक प्रत्यय का निषेध है (प्रतीयते विधीयते भाव्यतेऽनेनाऽसौ प्रत्ययः, न प्रत्ययोऽप्रत्ययः) इसी व्याख्यान से यह परिभाषा निकली है ॥

१९-भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम् ॥ अ० १।१।६९ ॥

जो विधान किया जाता है उससे सवर्णों का ग्रहण नहीं होता जैसे (त्यदा-दीनामः) यहां अकार का विधान किया है उस से दीर्घ सवर्णों का ग्रहण नहीं होता और (ज्यादादीयसः) यहां ईयसुन् प्रत्यय के ईकार को आकारादेश न कहते किन्तु अकार कहते तो सवर्णग्रहण से दीर्घ हो ही जाता फिर निश्चित हुआ कि यहां भी पूर्ववत् भाव्यमान अकार सवर्णग्राही नहीं हो सकता इसलिये दीर्घ कहा इत्यादि ॥ ६ ॥

यदि भाव्यमान से सवर्णों का ग्रहण नहीं होता तो (दिव उत्, कृत उत्) इन सूत्रों में भाव्यमान उकार को तपर करना व्यर्थ है । क्योंकि तपर करने का यही प्रयोजन है कि इकार तत्काल का ग्राहक हो अपने सवर्णों का ग्रहण न करे फिर (अणुदित्०) परिभाषा से सवर्णग्रहण तो प्राप्त ही नहीं उकार तपर क्यों पड़ा इसलिये यह परिभाषा है ॥

• २०—भवत्युकारेण भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम् ॥ अ० ६ ।

१ । १८५ ॥

भाव्यमान उकार से सवर्णों का ग्रहण होता है इस से पूर्वोक्त उकार में तपर सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (अदसेऽसेर्दादुदेमः) यहां भाव्यमान ह्रस्व उकार सवर्णों का ग्राही होता है तभी (अमूभ्याम्) आदि में दीर्घ उकारादेश हुआ ॥ २० ॥

(गवेहितं, गोहितम्) यहां समास में चतुर्थ्येकवचन प्रत्यय का लक् किये पीछे (प्रत्ययलोपे०) सूत्र से प्रत्ययलक्षण कार्य मानें तो (गो) शब्द के ओकार को अवादेश प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

२१—वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥

वर्ण के आश्रय से जो कार्य कर्त्तव्य हो तो प्रत्ययलक्षण न हो अर्थात् उस प्रत्यय को मान के वह कार्य न होवे इसलिये अच् को मान के अवादेश नहीं होता इत्यादि ॥ २१ ॥

(अतः कृकमिकंस०) इस सूत्र में कंस शब्द का पाठ व्यर्थ है क्योंकि उणादि में (कमेः सः) इस सूत्र से कम् धातु का कंस शब्द बना है कम् धातु के सामान्य प्रयोगों के ग्रहण में कंस शब्द का भी ग्रहण होजाता फिर कंस शब्द क्यों पड़ा इसलिये यह परिभाषा है ॥

२२—उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ अ० १ । १।१।६१ ॥

उणादि प्रातिपदिक अव्युत्पन्न अर्थात् उन का सर्वत्र प्रकृति, प्रत्यय, कारक आदि से यौगिक यथार्थ अर्थ नहीं लगता अर्थात् उणादि शब्द बहुधा रुढ़ि होते हैं इसलिये (अतः कृकमिकंस०) सूत्र में कंस ग्रहण सार्थक है। इसी प्रकार (प्रत्ययस्य लुक्०) इस सूत्र से (परश्व्य) शब्द का लुक् कहा हुआ उकार प्रत्यय होने से भी अव्युत्पन्नपक्ष मान के परश्व्य शब्द के उकार का लुक् नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ २२ ॥

(देवदत्तश्चिकीर्षति) इत्यादि प्रयोगों में देवदत्त आदि शब्दों को सन्नत के धातुसंज्ञा आदि कार्य प्राप्त हैं सो कर्त्तों नहीं होते। जो देवदत्त के सहित सब वाक्य की धातुसंज्ञा होजावे तो (सुपो धातु०) इस सूत्र से जो देवदत्त के आगे विभक्ति है उस का लुक् प्राप्त होवे इसलिये यह परिभाषा है ॥

२३-प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स प्रत्ययो विहितस्तदादेस्तदन्तस्य च- ग्रहणं भवति ॥ अ० १। ४। १३ ॥

जिस से जो प्रत्यय विधान किया हो वह जिस के आदि वा अन्त में हो उसी का ग्रहण हो और जो उस वाक्य में प्रत्ययविधि से पद पृथक् हो उस का सामान्य कार्य में ग्रहण न हो। इस से सन्नन्तको धातुसंज्ञा में देवदत्त का ग्रहण न हुआ तो विभक्ति का लुक् भी बच गया इसी प्रकार (देवदत्तो गार्ग्यः) यहां समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा हो तो मध्य विभक्तिका लुक् हो जावे तथा (ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः) इस समुदाय की समाससंज्ञा हो तो मध्य विभक्तियों का लुक् प्राप्त होवे इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ २३ ॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषा सूत्र से (दृषत्तीर्णा, परिषत्तीर्णा) इत्यादि प्रयोगों में (रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः) इस सूत्र से दृषद् परिषद् दकारान्त शब्दों से परे धातु के तकारको अनिष्ट नकारादेश प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

२४-प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ अ० १। १। ७२ ॥

जिन सूत्रों में प्रत्ययग्रहण से कार्य होते हैं वहां पञ्चम्यन्त से परे वह कार्य न हो अर्थात् पञ्चम्यन्त से परे प्रत्ययग्रहण में तदन्तविधि न होवे इस से (परिषत्तीर्णा) आदि में धातु के तकार को नकार आदेश नहीं होता इत्यादि ॥ २४ ॥ कुमारीगौरितरा। इत्यादि प्रयोगों में तदन्तविधि माने तो कुमारी शब्द को भी ह्रस्व प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

२५-उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे रूपग्रहणं द्रष्टव्यम् ॥ अ० ६। ३। ५० ॥

(अलुगुत्तरपदे) जो षष्ठाऽध्याय के तृतीय पाद में प्रत्ययनिमित्त कार्य है वहां स्वरूप का ग्रहण होना चाहिये अर्थात् तदन्तविधि न हो इस से (कुमारीगौरितरा) यहां कुमारी शब्द को ह्रस्व नहीं होता और रूपग्रहण से यह भी प्रयोजन है कि (ऋद्धस्य ऋद्धेख्यदण्लासेषु) जो इस सूत्र में (२३)वीं परिभाषा के अनुकूल (यत्) और (अण्) प्रत्यय जिस से विहित हैं उस उत्तरपद के परे पूर्व को कार्य होजावे सो दृष्ट नहीं है। क्योंकि जो तदन्तविधि होता केवल ऋद्धय शब्द से (ऋद्धम्, हार्दम्) प्रयोग नहीं बने इस में लेखग्रहण ज्ञापक है कि अणन्त उत्तरपद का ग्रहण होता लेख शब्द (अण्) प्रत्ययान्त पृथग् ग्रहण व्यर्थ है। इस से यह निश्चित हुआ कि इस उत्तरपदाधिकार के प्रत्ययान्तितकार्यविधायक सूत्रों में तदन्तविधि नहीं होती ॥ २५ ॥

• (प्रत्ययग्रहणे०) इस २३ वी परिभाषासे (व्यङ्ः संप्रसारणं पुत्रपत्न्यास्तत्पुरुषे) यहां तत्पुरुष में (पुत्र) और (पति) उत्तरपदों के परे (व्यङ्)को संप्रसारण कहा है तो (व्यङ्)का जो आदि वा व्यङन्त को कार्य होगा । इस से(कारौषगन्ध्यायाः पुत्रः कारौषगन्धोपुत्रः, कारौषगन्धोपतिः, वाराहीपुत्रः, वाराहीपतिः) इत्यादि प्रयोग तो सिद्ध हो जावेंगे परन्तु(परमकारौषगन्धोपुत्रः, परमकारौषगन्धोपतिः) इत्यादि प्रयोग नहीं सिद्ध होंगे क्योंकि जिस (कारौषगन्धि) शब्द से (व्यङ्) प्रत्यय विहित है तो वही जिस के आदि में हो ऐसे (व्यङ्) का ग्रहण हो सकता है और परम के सहित ग्रहण नहीं हो सकता इसलिये यह परिभाषा है ॥

२६—अस्त्रीप्रत्ययेनानुपसर्जनेन ॥ अ० ६।१।१३ ॥

(तदादिग्रहणपरिभाषा) स्त्रीप्रत्यय और उपसर्जन को छोड़ के प्रवृत्त होवे इस से सामान्य स्त्रीप्रत्यय (परमकारौषगन्धोपुत्रः) इत्यादि में तदादि ग्रहण के दोष से संप्रसारण का निषेध नहीं होता और(कारौषगन्ध्यमतिक्रान्तेऽतिकारीषगन्ध्यः, अतिकारीषगन्ध्यस्य पुत्रः अतिकारीषगन्ध्यपुत्रः) यहां व्यङन्त स्त्रीप्रत्यय उपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में अप्रधान है इसलिये संप्रसारण नहीं होता इत्यादि॥२६॥

(सुप्तिङन्तं पदम्) इस सूत्र में अन्तग्रहण व्यर्थ है क्योंकि जो (सुप्तिङन्तं पदम्) ऐसा सूत्र करते तो तदन्तविधिपरिभाषा से अन्त की उपलब्धि से(सुबन्त, तिङन्त) की पदसंज्ञा हो ही जाती फिर अन्तग्रहण व्यर्थ हो कर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

२७—संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्न भवति ॥ अ० १।

४।१४ ॥

प्रत्ययों की संज्ञा करने में तदन्तविधि नहीं होती। इस से अन्तग्रहण सार्थक होना तो स्वार्थ में चरितार्थ है और अन्यत्र फल यह है कि (तरममयी घः) यहां (तरप् तमप्) प्रत्ययान्त की (घ) संज्ञा नहीं होती जो तरप् प्रत्ययान्त की (घ) संज्ञा होजावे तो (कुमारीगौरितरा) यहां घसंज्ञक के परे कुमारी शब्द को ह्रस्व हो जावे सो इस परिभाषा से नहीं होता । और (कृतद्वितसमासाश्च) यहां कृतद्वित प्रत्ययों में अन्तग्रहण नहीं किया और प्रातिपदिकसंज्ञा के होने से तदन्तविधि भी नहीं हो सकती इसलिये कृतद्वित में अर्थवान् की अनुवृत्ति करने से कदन्त और तद्वितान्त ही अर्थवान् होते हैं केवल (कृत् , तद्वित) नहीं क्योंकि (न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलप्रत्ययः) इस महाभाष्य के

प्रमाण से प्रत्ययान्त ही अर्थवान् होता है । और (बहुच्) प्रत्यय प्रातिपदिक से नहीं होता किन्तु सुबन्त से पूर्व बहुच् कहा है बहुच् प्रत्यय के सहित जो समुदाय है वहाँ प्रातिपदिकसंज्ञा होने की कुछ आवश्यकता नहीं है जैसे (बहुपटवः) यहाँ बहुच् के होने से पहिले ही अथवा पटु शब्द की प्रातिपदिक-संज्ञा तो सिद्ध ही है । फिर बहुच् प्रत्यय की विवक्षा में जिस विभक्ति और वचन का प्रयोग करना हो उस को रख के बहुच् प्रत्यय लाना चाहिये जैसे (पटु, जस्) इस सुबन्त के पूर्व बहुच् आकर (बहुपटवः) प्रयोग सिद्ध हो गया । इसी प्रकार अन्य प्रयोगों में जान लेना चाहिये और (सर्वकः) (विश्वकः) इत्यादि में जो अकच् प्रत्यय मध्य में होता है उस के आगे परिभाषा लिखी है कि (तदेकदेशभूतस्तदग्रहणेन गृह्यते) (सर्व) प्रातिपदिक के एक देश के मध्य में आया अकच् उसी प्रातिपदिक के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ २७ ॥

(२३) वी परिभाषा के होने में ये भी दोष हैं कि (अवतमे नकुलस्थितं त एतत्) यहाँ त प्रत्ययान्तस्थित शब्द के साथ समस्यन्त का समास कहा है सो गतिसंज्ञक अव शब्द के सहित समस्यन्त और कर्तृकारकवाची नकुल शब्द के सहित कान्त कदन्त स्थित शब्द है इस कारण समास नहीं प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ।

२८-कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ०

१ । ४ । १३ ॥

जहाँ कृत्प्रत्यय के ग्रहण से कार्य हो वहाँ उस कदन्त के पूर्व गतिसंज्ञक और कारक हो तो भी वह कार्य हो जावे । इस से गतिसंज्ञक अव और कारक नकुल के होने से भी समास हो जाता है, तथा सांकूटिनम् यहाँ (इनुण्) कृत्प्रत्ययान्त से (अण्) तद्धित होता है सो जो (कूटित्) शब्द से करे तो उसी के आदि को द्वि होवे इस परिभाषा से गतिसंज्ञक (सम्) के सहितके (अण्) के होने से (सम्) के सकार को द्वि होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं (गतिरनन्तरः) इस सूत्र में (अनन्तर) ग्रहण इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है ॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषासूत्र में सामान्य करके तदन्तविधिकही है विशेषविषय में उस का अपवादरूप वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

२९—पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

उत्तरपदाधिकार अर्थात् षष्ठाध्याय के तृतीयपाद में और अङ्गाधिकार में जिस को कार्यविधान हो वा जिस के आश्रय हो उस का और वह जिस के अन्त में

हो उन दोनों का ग्रहण होता है जैसे (इष्टकेषोकामालानां चिततूलभारिषु) इस सूत्रमें (इष्टकचितं चिन्वीत) यहां उसी इष्टकाशब्द को ह्रस्व और (पक्केष्टकचितं चिन्वीत) यहां तदन्त को भी ह्रस्व होता है (इषीकतूलेन, मुञ्जेषीकतूलेन, माल-भारिणीकन्या, उत्पलमालभारिणीकन्या) यहां भी इषीका और माला शब्द को दोनों प्रकार ह्रस्व हुआ है । अज्ञाधिकारमें (सान्तमहतः संयोगस्य) महान् यहां उसी महत् शब्द की उपधा को दीर्घ और (परममहान्) यहां तदन्त को भी होता है इत्यादि अनेक उदाहरण महाभाष्य में लिखे हैं ॥ २८ ॥

(एकाचो हे प्रथमस्य) यहां अनेकाच् धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है जैसे (जजागार) यहां जा भाग को द्वित्व हुआ है । जो केवल एकाच् धातु है उसमें प्रथम एकाच् अवयव कहां है जिस को द्वित्व हो जैसे (पपाच, इयाज) इत्यादि । तथा (एकाच्) शब्द में भी बहुव्रीहि समास है कि एक अच् जिस में हो अर्थात् अन्य एक वा अधिक हल् हीं वह (एकाच्) अवयव कहता है । सो जहां केवल एकही अच् धातु है जैसे (इयाय, आर) यहां (इ, ऋ) धातुओं को द्वित्व कैसे हो सके इसलिये यह परिभाषा है ॥

३०—व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ अ० १ । १ । २१ ॥

सत् निमित्त के होने से मुख्य जिस का व्यपदेश (व्यवहार) हो वह व्यपदेशी कहता है और एक वह है जिसके व्यवहार का कोई सहायी कारण न हो उस एक में व्यपदेशी के तुल्य कार्य होता है इस से (एकाच्) धातु (पपाच) आदि में द्वित्व और केवल एक ही अच् धातु (इयाय, आर) आदि में भी द्विवचन हो जाता है । क्योंकि एकाच् और एकही अच् धातु की अपेक्षा में अनेकाच् व्यपदेशी है तद्वत् कार्य मानने से सर्वत्र द्वित्व हो जाता है (आदेश प्रत्यययोः) इस सूत्र में प्रत्यय के अवयव शकार को मूर्धन्य कहा है सो (करिष्यति) आदि में तो होही जाता है । और (स देवान् यक्षत्) यहां यक्षत् क्रिया में केवल सिप् विवरण का सकारमात्र प्रत्यय है उस को (व्यपदेशिवद्भाव) मानके मूर्धन्य होता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं । लोक में भी यह व्यवहार होता है कि किसी के बहुत पुत्र हैं वहां तो ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ का व्यवहार बनता है और जिस का एक ही पुत्र है तो वहां उसी में ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

तद्धित में जैसे नडादि, गर्गादि और शिवादि इत्यादि प्रातिपदिकों से अपत्य आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय कहे हैं सो उत्तमनङ् परमगर्ग और महाशिव आदि प्रातिपदिकों से तदन्तविधि में क्यों नहीं होते इसलिये यह परिभाषा है ॥

३१-ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते ॥

अ० ५ । २ । ८७ ॥

प्रत्यय का ग्रहण करने वाले प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होता इसलिये (उत्तमनङ्) और (परमगर्ग) आदि प्रातिपदिकों से (फक्) और (यञ्) आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा के निकलने का आपक (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्योंकि जो पूर्व शब्द से विधान किया इनि प्रत्यय तदन्त से भी हो जाता तो द्वितीय सूत्र व्यर्थ हो जाता फिर व्यर्थ होकर यह आपक होता है कि यहाँ तदन्तविधि नहीं होता ॥ ३१ ॥

सूत्रान्त प्रातिपदिकों से (ठक्) और दशान्त आदि प्रातिपदिकों से (ङ्) आदि प्रत्यय कहे हैं सो (३०) वीं परिभाषा से (व्यपदेशिवद्भाव) मान कर केवल सूत्र और दश आदि से (ठक्) तथा (ङ) आदि प्रत्यय क्यों नहीं हो जाते इसलिये यह परिभाषा है ॥

३२-व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

व्यपदेशिवद्भाव की प्रवृत्ति प्रातिपदिकाधिकार की छोड़ के होती है । इसलिये केवल सूत्रआदि शब्दों से ठक् आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा का आपक भी (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्योंकि जो यहाँ व्यपदेशिवद्भाव होता तो (पूर्वात्तादिनिः) ऐसा एक सूत्र कर देते तो सब काम सिद्ध हो जाता फिर पृथक् दो सूत्र करनेसे ज्ञात हुआ कि यहाँ व्यपदेशिवद्भाव नहीं होता ॥ ३२ ॥

(अचि अनुधातु०) यहाँ (श्रियौ, भ्रुवौ) उदाहरणों में तो केवल (अच्) के परे (इयङ्, उवङ्) होजाते हैं और (श्रियः, भ्रुवः) यहाँ (इयङ्, उवङ्) न होने चाहिये क्योंकि यहाँ केवल (अच्) परे नहीं है इसलिये यह परिभाषा है ॥

३३-यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ अ० १ । १ । ७० ॥

जिस प्रत्याहाररूप पर विगेषण के आश्रय से विधि हो वह जिस के आदि में हो उस के परे वह कार्य होना चाहिये इस से अजादि प्रत्यय के परे (इयङ्, उवङ्) होते हैं तो (श्रियः, भ्रुवः) यहाँ अजादि [जस्] में भी दोष नहीं आता । तथा [अवश्यलाव्यम्, अवश्यपाव्यम्] इत्यादि में [वान्तो यि प्रत्यये] सूत्र से यकारादि प्रत्यय के परे वान्तादेश हो जाता है (इको भल्) यहाँ भलादिसन् लिया जाता है । इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३३ ॥

• (तिथ्यपुनर्वसोर्नक्षत्रमहद्बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्) इस सूत्र में बहुवचन-ग्रहण न करते तो भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता। क्योंकि एक (तिथ्य) और दो (पुनर्वसु) इन तीन के होने से बहुवचन तो प्राप्त ही था फिर द्विवचन के कहने से उसी बहुवचन की प्राप्ति में द्विवचन हो जाता इस प्रकार बहुवचनग्रहण व्यर्थ हो कर आपक है कि (तिथ्य, पुनर्वसु) में कहीं एकवचन भी होता है वहां एकवचन को द्विवचन न हो इसलिये यह परिभाषा है ॥

३४—सर्वे द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति ॥ अ० १ । २ । ६३ ॥

दो वा अधिक किन्हीं शब्दों का द्वन्द्वसमास हो वह सब विकल्प करके एकवचन होता है। इस से तिथ्य पुनर्वसु के एकवचनपक्ष में द्विवचन हो इसलिये बहुवचनस्थानी का ग्रहण है। तथा इसी परिभाषा से (घटपटम्, घटपटौ, ईपलोमकूलम्, माथोत्तरपदव्यमुपदम्) इत्यादि में भी एकवचन सिद्ध हो जाता है। समाहार द्वन्द्वसर्वत्र एक ही वचन होता है। और यह परिभाषा इतरतर-द्वन्द्वसमासमेलगती है इसीसे इसके उदाहरण भी सब इतरतरद्वन्द्व के दिये हैं ॥३४॥

(व्यत्ययोबहुलम्) इस से स्य आदि विकरणों का व्यत्यय होना सूत्रार्थ है। तथा (षष्ठीयुक्तप्रच्छन्दसि वा) इस सूत्र से भी षष्ठीयुक्त पति शब्द की घिसंज्ञा का वेद में विकल्प है इन दोनों में भाष्यकारने विभाग करके यह परिभाषा सिद्ध की है ॥

३५—वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति ॥ अ० १ । ४ । ९ ॥

वेद में सब कार्य विकल्प करके होते हैं जैसे (दक्षिणायाम्) इस सम्यन्त की प्राप्ति में (दक्षिणायाः) ऐसा प्रयोग होता है। इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं ॥३५॥

किसी विद्यार्थी ने (अग्नी) ऐसा द्विवचनान्त शब्द उच्चारण किया जो उसका कोई अनुकरण करे कि (अग्नी इत्याह) तो यहां अनुकरण में साक्षात् द्विवचन के न होने से जो प्रगृह्यसंज्ञा न होवे तो इकार के साथ संधि होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

३६—प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ अ० ८ । २ । ४६ ॥

जो अनुकरण किया जाता है वह प्रकृति के तुल्य होता है इस से (अग्नी) द्विवचनप्रकृति के तुल्य अनुकरणको मानके प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे संधि नहीं होती। और एकवचन बहुवचन में तो संधि होता है (कुमार्यलूतक इत्याह) यहां (लूतक) शब्द के अनुकरण (लूतक) के परे भी यणादेश होता है (हिः पचन्त्वित्याह) यहां

(द्विः पचन्तु) शब्द के अनुकरण मेंभी अतिङ् से परे तिङ् पद बिघात होजाता है ।
 (अर्थवदधातुरप्रत्ययः०) इस सूत्र में धातु का पर्युदास प्रतिषेध मानें कि धातु से
 अन्य अर्थवान् की प्रातिपदिकसंज्ञा हो इस से च्ति आदि धातुओं के अनुकरण
 को प्रकृतिवत् होने से स्वाश्रय कार्य मान कर प्रातिपदिकसंज्ञा होजाती है फिर
 पंचमी विभक्ति के एकवचन में च्तिधातु को (इयङ्) आदेश नहीं प्राप्त है इसलिये
 धातु के अनुकरण को प्रकृतिवत् मान के (इयङ्) आदेश भी होजाता है इस से
 (क्षियो दीर्घात्, परीभुवोऽवज्ञाने, नेर्विशः) इत्यादि सब निर्देश ठीक बनजाते हैं ॥ ३६ ॥

(भवतु, पचतु) इत्यादि को पदसंज्ञा न होनी चाहिये क्योंकि तिङन्त की
 पदसंज्ञा कही है यहां तो तिप् के इकार को उकार हो जाने से तिङ् नहीं
 रहा इसलिये यह परिभाषा है ॥

३७—एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति ॥ अ० ४।१।८३ ॥

जिस किसी का एक अवयव विपरीत हो जावे तो वह अन्य नहीं हो जाता
 किन्तु वही बना रहता है । इससे इकार के स्थान में उकार हो जानेसे भी पद-
 संज्ञा हो जाती है (प्राग्दीव्यतोऽण्) इस सूत्र से (दीव्यत्) शब्दपर्यन्त (अण्)
 प्रत्यय का अधिकार करते हैं और दीव्यत्शब्द कहीं नहीं है किन्तु (दीव्यति) शब्द
 है इस का एकदेश इकार के जाने से (दीव्यत्) रह जाता है इसी आपकसे यह
 परिभाषा निकली है । लोक में भी किसी कुत्ते का कान वा पूंछ काट लिया
 जावे तो उस को घोड़ा वा गधा नहीं कहते किन्तु कुत्ता ही कहते हैं इत्यादि
 अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३७ ॥

(स्योनः) यहां (सिवु) धातु से उणादि (न) प्रत्यय के परे वकार को
 (जट्) होकर वकार को स्थानिवत् मानने से धातु के इकार को (लघूपधगुण)
 और उसी इकार को (यणादेश) दोनों प्राप्त हैं । इस में गुण पर और यणादेश
 (अन्तरङ्ग) है अब दोनों मेंसे कौनसा कार्य होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

३८—पूर्वपरनित्यान्तरङ्गाऽपवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ॥

पूर्व से पर, पर से नित्य, नित्यसे अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद ये सब
 पूर्व ३ से उत्तर २ बलवान् होते हैं । यह परिभाषा महाभाष्य के अभिप्रायानुकूल
 है अर्थात् इसी प्रकार को कहीं नहीं लिखी । पूर्व से पर बलवान् होना यह
 विषय (विप्रतिषेध परं कार्यम्) इसी सूत्र का है जैसे (अत्रि) इस शब्द से

अपत्याधिकार में ऋषिवाची होने से (अण्) प्राप्त और “इकारान्तव्यच्” होने से ढक् प्राप्त है सो पूर्व (अण्) को बाध के परविहित (ढक्) होता है जैसे (अत्रे-पत्यम्, आत्रेयः) इत्यादि। भू धातु से लिट् लकार के णल् प्रत्ययके परे (भू×अ) इस अवस्था में द्वित्व, यणादेश, उवङ्, गुण, वृद्धि और वुक् आगम ये सब प्राप्त हैं (द्विवचन) नित्य होने से पर यणादेश का बाधक है (उवङ्) अन्तरङ्ग होने से नित्य द्वित्व का भी बाधक है और (उवङ्) का अपवाद (गुण) गुण का अपवाद (वृद्धि) और इन दोनों का अपवाद निरवकाश होने से (वुक्) हो जाता है। इसी प्रकार अन्य भी बहुत प्रयोगों में यह परिभाषा लगती है (दुष्यति) यहां सन् प्रत्यय के परे (दिव्) धातु के वकार को जट् किये पीछे द्विवचन और यणादेश दोनों प्राप्त हैं नित्य होने से द्विवचन होना चाहिये फिर नित्य द्विवचन से भी अन्तरङ्ग होने से यणादेश प्रथम हो जाता है। इत्यादि ॥ ३८ ॥

(ईजतुः) यहां यज् धातु से (अतुस्) प्रत्यय के परे द्वित्व को बाध के परत्व से (संप्रसारण) होता है फिर द्वित्व होना चाहिये वा नहीं इसलिये यह परिभाषा है ॥

३९-पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम् ॥ अ० १ । ४ । २ ॥

परत्व से वा अन्य किसी प्रकार से प्रथम बाधक कार्य हो जावे। फिर जो उत्सर्ग कार्यकी प्राप्ति हो तो उत्सर्ग भी हो जावे। इस से (यज्) धातु को संप्रसारण किये पीछे भी द्वित्व हो जाता है। इसी प्रकार परत्व से (हि) के स्थान में तातङ् आदेश होने से फिर हि को धि न होना चाहिये सो भी (तातङ्) के निषेध-पक्ष में (हि) को (धि) होकर (भित्ति) आदि प्रयोग बन जाते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३९ ॥

लोक में यह रीति है कि तुल्य अधिकारी दो स्वामियों का एक भृत्य होता के तो वह आगे पीछे दोनों के कार्य किया करता है परन्तु जो उस भृत्य को दोनों स्वामी अनेक दिशाओं में एक काल में कार्य करने के लिये आज्ञा दें तो उस समय जो वह किसी का विरोधी न हुआ चाहै तो दोनों के कार्य न करे क्योंकि एक को एककाल में दो दिशाओं में जाके दो कार्य करना असम्भव है फिर जिस का पीछे करेगा वही अप्रसन्न होगा, इसी प्रकार सूत्रों में भी दोमें जो बलवान् होगा वह प्रथम हो जावे गा और जो दोनों तुल्यबल वाले होंगे तो एक दूसरे को हटाने से लोक के तुल्य एक भी कार्य न होगा। जैसे स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान (त्रि, चतुर) शब्द को सामान्य विभक्तियों में (तिस्र, चतस्र) आदेश कहे हैं और (त्रि) शब्द को (आम्) विभक्ति के परे (त्रय) आदेश भी कहा है

फिर (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इस सूत्र से पर विप्रतिषेध मान के प्रथम (तिष्ठ) आदेश हो गया । फिर उस को स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश भी होना चाहिये तो लोकवत् अनिष्टप्रसङ्ग आजावे इसलिये यह परिभाषा है ॥

४०—सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव ॥ अ०

१ । ४ । २ ॥

एककाल में जब दो कार्यो की प्राप्ति होती है तब विप्रतिषेध में पर का कार्य होकर फिर दूसरे पूर्व सूत्र का कार्य प्रवृत्त नहीं हो सकता क्योंकि जो बाधक हुआ सो हुआ इस से फिर स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश नहीं होता इस कारण [तिष्ठणाम्] इत्यादि प्रयोग शुद्ध ठीक बन जाते हैं । और जो दूसरा कार्य भी पश्चात् प्राप्त हो और प्रथम हुआ कार्य कुछ न बिगड़े तो [३६] वीं परिभाषा के अनुकूल वह भी कार्य हो जावे गा ॥ ४० ॥

अब यह विचार भी कर्त्तव्य है कि धातुओं से परे जो लकारों के स्थान में तिप् आदि परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं वे पहिले ही किंवा विकरण ही आत्मनेपदादि के करनेसे प्रथम और पीछे भी विकरणों की प्राप्ति है इस से वे नित्य हैं । और आत्मनेपद परस्मैपद विधायक प्रकरण से परे भी विकरण ही हैं और विकरण किये पीछे आत्मनेपद नियम की प्राप्ति नहीं क्योंकि (अनुदात्तङित०) यह पञ्चमीनिर्दिष्ट कार्य व्यवधानरहित उत्तर को होना चाहिये विकरणों के व्यवधान से फिर आत्मनेपद नहीं पाता और जो आत्मनेपद नियम को अवकाश माने सो भी नहीं क्योंकि अदादि और जुहोत्यादि-गण में जहां विकरण विद्यमान नहीं रहते वहां और (लिङ्, लिट्) लकारों में (आत्मनेपद, परस्मैपद) को अवकाश ही है फिर (एधते, स्पृहते) आदि में आत्मनेपद नहीं हो सकता इसलिये यह परिभाषा है ॥

४१—विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ अ० १ । ४ । १२ ॥

विकरण विधि से आत्मनेपद परस्मै पद नियमविधान बलवान् है क्योंकि जो आत्मनेपद आदि के होने से पहिले विकरण ही होते हैं तो (आत्मनेपदेऽबन्धयत्-रस्याम्, पुषादियुताय्लदितः परस्मैपदेषु) इन विकरणविधायकसूत्रों में आत्मनेपद के आश्रय से विकरणविधान क्यों किया इससे यह आपक है कि विकरण-विधि से पहिले ही आत्मनेपद परस्मैपद नियम कार्य होते हैं । इस से (एधते, स्पृहते) आदि में आत्मनेपद सिद्ध हो गया इत्यादि प्रयोजन इस के हैं ॥ ४१ ॥

* (न्यविशत, व्यक्रीणीत) यहाँ (नि, वि) उपसर्गों से परे (विग) और (क्री) धातु से आत्मनेपद होता है सो विकरण आत्मनेपद और अट् आगम तीनों कार्य एक साथ प्राप्त हैं इन में से आत्मनेपद सब से पहिले होकर अब विकरण करने के पहिले और पीछे भी (अट्) प्राप्त है इस से अट् अनित्य हुआ और विकरण भी अट् करने से पहिले तथा पीछे भी प्राप्त है तो विकरण भी नित्य हुए । जब दोनों नित्य हुए तो परस्पर अट् प्राप्त है । और अङ्ग कार्य अट् से विकरणों का होना प्रथम इष्ट है क्योंकि विकरण के आजाने पर सब को (अङ्ग) संज्ञा हो और अङ्गसंज्ञा के पश्चात् अट् होवे इसलिये यह परिभाषा है ॥

४२-शब्दान्तरस्य च प्रान्तवन्विधिरनित्यो भवति॥अ० १।३।६०॥

जो दो कार्य एकसाथ प्राप्त हों और वे दोनों नित्य ठहरते हैं तो उन में एकविधि के होने से पहिले जिस शब्द को दूसरा विधि प्राप्त है और पहिले कार्य के होने पश्चात् वह विधि दूसरे शब्द को प्राप्त हो तो वह अनित्य होता है यहाँ (अट्) आगम पहिले तो केवल (विग) को प्राप्त है और विकरण किये पीछे विकरणसहित सब को अंगसंज्ञा होने से सब को प्राप्त है इसलिये अट् अनित्य हुआ । फिर प्रथम विकरण हो कर पुनः प्रसंग मानने से (अट्) हो जाता है । इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ४२ ॥

[नृकुट्या भवः नार्कुटः, नृपतेरपत्यं नार्पत्यः] यहाँ जो (नृ) शब्दको वृद्धि होती है उसी वृद्धिरूप आकार का सहाचारी रेफ रहता है उस रेफ की खर प्रत्याहार के परे [खरवसानयोर्विसर्जनीयः] इस सूत्र से विसर्जनीय होने चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

- ४३-असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अ० ८।३।१५ ॥

४४-असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे ॥ अ० ६।४।१३२॥

इन में से पहिली परिभाषा बहुधा व्यवहारकालमें प्रवृत्त होती और दूसरी बहुधा व्याकरणादिशास्त्रों में लगती है । बहिरंग कार्य करने में अन्तरंग कार्य असिद्ध हो जाता है । बहिर् और अन्तर् इन दोनों शब्दों के आगे जो अंग शब्द है वह उपकारकवाची और अंग शब्द के साथ दोनों शब्दों का बहुव्रीहि समास है [निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य कार्यस्यांगमुपकारि निमित्तं बहिः कार्यान्तरा-पेक्षया दूरमधिकं वा वर्तते तद्बहिरङ्गं कार्यम्, एवं निमित्तसमुदायस्य मध्ये

यस्य कार्यस्याङ्गमुपकारिनिमित्तमन्तः कार्यान्तरापेक्षयासन्निहितं वा न्यूनं वर्तते तदन्तरङ्गं कार्यम्, तथा बह्वपेक्षं बहिरङ्गमपेक्षमन्तरङ्गम्) बहिरङ्ग उस को कहते हैं कि प्रकृति, प्रत्यय, वर्ण और पद के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से दूर वा अधिक हैं। और अन्तरङ्ग वह कहाता है कि प्रकृति आदि निमित्तों के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से समीप वा न्यून हैं। तथा जो बहुत निमित्त और व्याख्यान की अपेक्षा रखे वह बहिरङ्ग तथा थोड़े निमित्त और व्याख्यान की अपेक्षा रखे वह अन्तरङ्ग कहाता है। इसलिये प्रायः अन्तरङ्ग-कार्य प्रथम होता है और बहिरङ्ग असिद्ध हो जाता है। और कहीं २ बहिरङ्ग प्रथम हो भी जावे तो अंतरङ्गकार्य की दृष्टि में असिद्ध अर्थात् नहीं हुआ सा ही रहता है। अब प्रकृत में (नार्कुटः, नार्पत्यः) यहां ककार पकार विसर्जनीय के निमित्त अंतरङ्ग और वृद्धि का निमित्त तद्धित बहिरङ्ग है सो प्रथम बहिरङ्ग कार्य वृद्धि होभी जाती है। परन्तु अंतरङ्गकार्य विसर्जनीय करने में वृद्धि के असिद्ध होने से रेफ ही नहीं फिर विसर्जनीय किस को हो तथा (वाह जठ्) इस सूत्र में (जठ्) नहीं पढ़ते तो संप्रसारण की अनुवृत्ति आकर (प्रष्ठ×वाह्×ण्वि×अस्) इस अवस्था में ण्वि प्रत्यय के परे वकार को (उ) संप्रसारण और पूर्वरूप हो कर। (प्रष्ठ×उह्×ण्वि×अस्) इस अवस्था में उकार को ओकार (गुण) और उस ओकार के साथ वृद्धि एकादेश होकर (प्रष्ठौहः) आदि प्रयोग सिद्ध होही जाते फिर जठ् ग्रहण व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि (प्रष्ठौहः) आदि में गुण करते समय संप्रसारण (असिद्ध) होता है अर्थात् यजादिप्रत्ययनिमित्त भसंज्ञा और भसंज्ञा के आश्रय संप्रसारण होता है इसप्रकार बहुत अपेक्षा वाला होने से संप्रसारण बहिरङ्ग और (वि) प्रत्यय को मान के गुण अंतरङ्ग है फिर अंतरङ्ग गुण करने में जब संप्रसारण असिद्ध हुआ तो गुण की प्राप्ति नहीं जब गुण नहीं हुआ तो वृद्धि होकर (प्रष्ठौहः) आदि प्रयोग भी नहीं बन सकते इसलिये जठ्ग्रहण करना चाहिये इसी जठ् ग्रहण के ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है तथा (पचावेदम्, पचामेदम्) यहां लोट् के उत्तम पुरुष के एकार को ऐकारादेश प्राप्त है सो ऐत्व अंतरङ्ग की दृष्टि में (आद्गुणः) सूत्र से हुआ गुण बहिरङ्ग होने से असिद्ध है इसलिये वहां एकारही नहीं तो ऐकार किसको हो। इत्यादि इस परिभाषा के असंख्य प्रयोगन हैं। लोक में भी अंतरंग कार्य करने में बहिरङ्ग असिद्धही माना जाता है जैसे। मनुष्य प्रातःकाल उठकर पहिले निज शरीरसंबन्धी अंतरङ्गकार्यों को करता है पीछे मित्रों के और उस

के पीछे सम्बन्धियों के काम करता है क्योंकि मित्र आदि के कार्य निज शरीर को अपेक्षा में बहिरङ्ग हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अब अन्तरङ्गबहिरङ्गलक्षण परिभाषा में ये दोष हैं कि (अक्षैर्दीव्यति अक्षयूः, हिरण्यूः) यहाँ (दिव्) धातु से क्तिप् प्रत्यय के परे क्तिप् को मान के वकार को छूट जाता है उस बहिरङ्गजङ् को असिद्ध मानें तो यणादेश नहीं हो सकता इत्यादि दोषों को निवृत्ति के लिये यह अगलो परिभाषा है ॥

४५-नाजानन्तर्ये बहिष्मकृतिः ॥ अ० १ । ४ । २ ॥

जहाँ दोनों अर्चों के समीप वा मध्य में कार्य विधान करते हो वहाँ अन्तरङ्ग बहिरङ्गलक्षण परिभाषा नहीं लगती इस से (अक्षयूः) आदि में बहिरङ्ग जङ्को जब असिद्ध नहीं माना तो यणादेश भी होगया तथा (षत्वतुको रसिद्धः) इस सूत्र में तुक्ग्रहण का यहो प्रयोजन है कि (अधोत्व, प्रेत्व) इत्यादि प्रयोगों में तुक् अन्तरङ्ग और सर्वदोष तथा गुण एकादेश बहिरङ्ग है जो तुक् अन्तरङ्ग के करने में बहिरङ्गएकादेश असिद्ध होजाता तो तुक् ही ही जाता फिर तुग्-विधि में एकादेश को असिद्ध करने से यह ज्ञापक निकला कि जो दो अर्चों के आश्रय बहिरङ्गकार्य हो वह अन्तरङ्गकार्य की दृष्टि में असिद्ध नहीं होता । इसी तुक्ग्रहणज्ञापक से यह परिभाषा निकली है ॥ ४५ ॥

(गोमान् प्रियो यस्य स गोमत्प्रियः, यवमत्प्रियः, गोमानिवाचरति गोमत्वते, यवमत्वते) इत्यादि प्रयोगों में समासाश्रित अन्तर्वर्तिगीविभक्ति का लुक् द्विपदाश्रय होने से बहिरङ्ग और (हल्ङ्यादि) सूत्र से प्रागसुलोप एकापदाश्रय होने से अन्तरङ्ग है सो जो बहिरङ्गका बाधक अन्तरङ्ग होजावे तो नुम् आदि कार्य होकर (गोमत्प्रियः) प्रयोग सिद्ध नहीं किन्तु (गोमान्प्रियः) ऐसा प्राप्त होवे सो अनिष्ट है इसलिये यह परिभाषा है ॥

४६-अन्तरङ्गानपि विधीन् बाधित्वा बहिरङ्गो लुग् भवति ॥

अ० ७ । २ । ९८ ॥

अन्तरङ्गविधियोंको बाध के भी बहिरङ्गलुक् होता है अर्थात् जब अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का लुक् समासाश्रय होने से बहिरङ्गहुआ एकपदाश्रयसुलोप आदि अन्तर-ङ्गों का बाधक होगयातो (नलुमतांगस्य) इस सूत्र से नुप् आदि करनेमें प्रत्ययलक्षण का निषेध होकर (गोमत्प्रियः) इत्यादि प्रयोग बनजाते हैं तथा (प्रत्ययान्तरपदयोश्च)

इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि (त्वामिच्छति, त्वद्यति, मद्यति, तवपुत्रस्त्वपुत्रः, मत्पुत्रः त्वं नाथोऽस्य त्वन्नाथः, मन्नाथः) इत्यादि प्रयोगों में (युष्मद्, अस्मद्) शब्दों को (त्व, म) आदेश होजावे (त्वं नाथोऽस्य) इस अवस्था में मध्यवर्तिनो विभक्ति का लुक् (त्व, म) आदेश होने के पहिले और पीछे भी प्राप्त होने से नित्य और (त्व, म) आदेश अन्तरङ्ग है नित्य से अन्तरङ्गबलवान् होता है यह तो कहचुके हैं। सो जो अन्तरङ्ग होने से (त्व, म) आदेश पहिले हो जावे तो इस सूत्रका कुछ प्रयोजन न रहे क्योंकि वर्तमान विभक्ति के परे (त्वमावेकवचने) सूत्र से (त्व, म) होही जावेगे फिर व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरङ्गविधियों का भी बहिरङ्ग लुक् बाधक होता है फिर जब बहिरङ्ग लुक् पहिले हुआ तो सूत्र सार्थक रहा और इसी ज्ञापक से यह परिभाषा निकली ॥ ४६ ॥

(पूर्वेषुकामशमः) यहाँ (पूर्वेषुकामशमी) शब्द से तद्धित (अण्) प्रत्यय होता है (पूर्व×इषु×काम×शमी×अ) इस अवस्था में जो तद्धित प्रत्ययाश्रित बहिरङ्ग उत्तरपदवृद्धि से अन्तरङ्ग होने के कारण इकार इकार को गुण एकादेश पहिले हो जावे तो पूर्वोत्तरपद के पृथक् २ न रहने और उभयाश्रय कार्य में अन्तादिवद्भाव के निषेध होने से (दिशोऽमद्राणाम्०) इस सूत्र से उभयपद वृद्धि नहीं हो सकती इत्यादि दोषों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

४७-पूर्वोत्तरपदयोस्तावत्कार्यं भवति नैकादेशः॥अ० १।४।२॥

पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्य से अन्तरङ्ग भी एकादेश पहिले नहीं होता किन्तु पूर्वोत्तरपदनिमित्त कार्य अन्तरङ्ग एकादेश से पहिले हो जाता है इस से (पूर्वेषुकामशमः) यहाँ अन्तरङ्ग मान कर प्रथम गुण एकादेश नहीं होता किन्तु पहिले उत्तरपद को वृद्धि होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है। यह भी परिभाषा (४५) वीं परिभाषा की सहचारिणी है। इस का ज्ञापक यह है कि (नेन्द्रस्य परस्य) इस सूत्र में उत्तरपदवृद्धिका निषेध है कि उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि न हो जिस से (सौमेन्द्रः) प्रयोग सिद्ध होजावे। सो जो सोम के साथ इन्द्र का एकादेश अन्तरङ्ग होने से पहिले होजावे तो इन्द्र शब्द का इकार तो एकादेश में गया अन्त्य का अच् तद्धित प्रत्यय के परे लोप में गया फिर जब उत्तरपद इन्द्र शब्द में कोई अच् ही नहीं तो वृद्धि का निषेध क्यों किया इस से व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरङ्ग भी एकादेश पूर्वोत्तरपद कार्य के पहिले नहीं होता किन्तु अन्तरङ्ग का बाधक उत्तरपदवृद्धि पहिले होती है इसलिये उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि का निषेध किया है ॥ ४७ ॥

• (प्रधाय, प्रस्थाय) इत्यादि प्रयोगों में (क्त्वा) प्रत्ययके स्थान में (ल्यप्) आदेश होता है सो ल्यप् होने ने पहिले (प्रधा×त्वा) इस अवस्था में धा के स्थान में (हि) और (स्था) को इकारादेश तथा (त्वा) को (ल्यप्) भी प्राप्त है इस में हि आदि आदेश पर और अन्तरङ्ग हैं और ल्यप् बहिरङ्ग है सो पर और अन्तरङ्ग मान के हि आदि आदेश कर लें तो (प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग नहीं बन सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

४८—अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब् बाधते ॥ अ० २।४।३६॥

अन्तरङ्ग विधियों का भी बहिरङ्ग ल्यवादेश बाध करता है । इस से (हि) आदि आदेशों को बाध के प्रथम (ल्यप्) हो गया फिर हि आदि को प्राप्ति नहीं तो (प्रधाय, प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये और (अदो जग्धिर्ल्यमि किति) इस सूत्र में ल्यप् का ग्रहण नहीं करते तो तकारादि प्रत्ययमात्र की अपेक्षा रखने वाला अद् धातु को (जग्धि) आदेश अन्तरङ्ग होने के कारण पूर्वपद की अपेक्षा रखने वाले समासाश्रित बहिरङ्ग ल्यप् आदेश से प्रथम हो जाता फिर ल्यप् ग्रहण व्यर्थ होकर इस का ज्ञापक हुआ कि (अन्तरङ्गविधियों को भी बाध के पहिले ल्यप् होता है) फिर तकारादि कित् न होने से (जग्धि) आदेश प्राप्त नहीं होता इसलिये ल्यप् ग्रहण किया है । यही ल्यप् ग्रहण इस परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥ ४८ ॥

(इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोगों में पर होने से गुण वृद्धि और नित्य होने से द्वित्व प्राप्त है द्वित्व होने के पश्चात् (इ×इ×अ, इ×इ×इथ) इस अवस्था में परत्व से गुण वृद्धि और अन्तरङ्ग होने से सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त है सो जो बलवान् होने से अन्तरङ्ग सवर्णदीर्घ एकादेश हो जावे तो (इयाय, इययिथ) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

४९—वारणादाङ्गं बलीयो भवति ॥ अ० ६।४।७८॥

वर्णकार्य से अङ्गकार्य बलवान् होता है । यहां वर्णकार्य सवर्णदीर्घ एकादेश और अंगकार्य गुणवृद्धि है उस वर्णकार्य से अंगकार्य को बलवान् होने से गुणवृद्धि प्रथम हो कर (इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं (अभ्यासस्यासवर्ण) इस सूत्र में असवर्ण अच् के परे अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को (इवङ्, उवङ्) आदेश कहे हैं सो जो गुण वृद्धि का बाधक एकादेश हो जावे तो अभ्यास से परे

असवर्णं अच् हो ही नहीं सकता फिर उस असवर्ण गुण वृद्धि किये अच् के परे (इयङ्, उवङ्) कहने से निश्चित ज्ञात हुआ कि (वर्णकार्य का बाधक अंग-कार्य होता है) यही असवर्ण अच् के परे (इयङ्, उवङ्) का विधान इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है ॥ ४८ ॥

यह बात प्रथम लिख चुके हैं कि अन्तरङ्ग से भी अपवाद बलवान् होता है (जुसि च) इस सूत्र से जो गुणविधान है सो (कङिति च) आदि निषेधप्रकरण का अपवाद है क्योंकि (भि) के ङिन् होने से उसके स्थान में जुम् भी ङित् ही आदेश होता है सो जैसे (अविभयुः, अविभक्तः) इत्यादि में निषेध का बाध जुस् में गुण होता है वैसे ही [चिनुयुः, सुनुयुः] यहाँ [यासुट्] के आश्रय से प्राप्त गुण निषेध का भी बाध होजाये तो (चिनुयुः, सुनुयुः) आदि प्रयोगों में गुण होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

५०—येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति ॥

अ० १ । १ । ६ ॥

जिस कार्य की प्राप्ति में अपवाद का आरम्भ किया जाता है वह अपवाद उसी कार्य का बाधक होता है और जिस की प्राप्ति अप्राप्ति में सर्वथा अपवाद का आरम्भ है उसका बाधक नहीं होता इससे यह आया कि (चिनुयुः, सुनुयुः) यहाँ दोङित् हैं एक सार्वधातुक जुस् प्रत्यय का और दूसरा यासुट् का सो सार्वधातुकप्रत्ययाश्रित जो ङित्व है उसी को मान के प्राप्त गुण का निषेध है उस निषेध की प्राप्ति में जुस् के परे गुण कहा है और यासुट् के ङित्वनिमित्तप्राप्तनिषेध के होने वा न होने में उभयत्र जुस् के परे गुण कहा है क्योंकि (अविभयुः) आदि में यासुट् के बिना केवल सार्वधातुक के आश्रयगुण का निषेध प्राप्त है इस लिये (चिनुयुः) आदि में गुण नहीं होता । इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५० ॥

अब इस पूर्वाक्त परिभाषा के विषय में यह विशेष विचार है कि (नासिको-दरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाश्च) यह सूत्र अगले (न कोडादिबह्वचः, सहनञ्०) इन दो सूत्रों का अपवाद है और दोनों की प्राप्ति में इस का आरम्भ भी है पूर्व परिभाषा के अनुकूल माना जावे तो सह, नञ् और विद्यमानपूर्वक शब्दों से प्राप्त निषेध का बाधक ङीष् प्रत्यय (सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका) आदि में भी (ङीष्) प्रत्यय होना चाहिये तो ये प्रयोग नहीं बनसकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

५१-पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते न परान् ॥

अ० ॥ ४ । १ । ५५ ॥

जो पहिले अपवाद और पीछे उत्सर्ग पढ़ा हो तो वह अपने समीपस्थ कार्य का बाधक हो और परविधि अर्थात् जिसके साथ व्यवधान है उस का बाधक नहीं होवे । इस से बह्वच लक्षण से प्राप्त [डोप्] के निषेध का बाधक हुआ और सह, नञ्, विद्यमान पूर्वक नासिका से प्राप्त डोप् के निषेध का बाधक नहीं हुआ । इस प्रकार (सनासिका, अनासिका) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । इसी प्रकार अन्यत्र भी इसका विषय जानना ॥ ५१ ॥

अब (नासिकोदरौठ०) इस सूत्र में जो ओष्ठ आदि पांच संयोगोपध शब्द हैं उन से निषेध भी प्राप्त है उस का बाधक पूर्व परिभाषा नहीं हो सकती क्योंकि (नासिकोदर०) सूत्र से भी संयोगोपध का निषेध पूर्व है (नासिकोदर०) सूत्र में नासिका और उदर शब्द तो सह आदि पूर्व होने से पर दोनों सूत्रों के अपवाद हैं और ओष्ठ आदि शब्द सह आदि पूर्व हैं तो (सहनञ्) इस पर सूत्र के और सामान्य उपपद में (स्वाङ्गाच्चोप०) इस पूर्व सूत्र के भी अपवाद हैं । सो दोनों के अपवाद होने चाहिये या किसी एक के । इस सन्देह की निवृत्तिके लिये यह परिभाषा है ॥

५२-मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाध्यन्ते नोत्तरान् ॥ अ०

४ । १ । ५५ ॥

जो पूर्व पर दोनों और उत्सर्ग और मध्य में अपवाद पढ़ा होतो वह अपने से पूर्वविधि का बाधक होता है उत्तर का नहीं इस से (विम्बोडो, विम्बोठा, दीर्घजह्वी, दीर्घजह्वा) इत्यादि उदाहरणों में संयोगोपधलक्षण निषेध का बाधक होगया और (सदन्ता, अदन्ता, विद्यमानदन्ता) इत्यादि में परसूत्र से प्राप्त निषेध की बाधा नहीं हुई । इसी प्रकार सर्वत्र योजना कर लेनी चाहिये ॥ ५२ ॥

(सुडनपुंसक्य) इस सूत्र में सुट् की सर्वनामसंज्ञा का निषेध है सो (कुण्डानि तिष्ठन्ति, वनानि तिष्ठन्ति) यहाँ भी जो नपुंसक के सुट् की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध होजावे तो (नुम्) आदि होकर (कुण्डानि) आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं सो न होसके इसलिये यह परिभाषा है ॥

५३-अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा ॥ अ० १ । १ । ४३ ॥

जिस में कुछ अन्तर न हो अर्थात् जो अत्यन्त समीप हो उस का विधि वा निषेध होता है दूरस्थ का नहीं । इससे सुटकरके जो सर्वनामस्थानसंज्ञा की प्राप्ति है उसी का निषेध करता है (शि) की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध नहीं इस से कुण्डानि आदि प्रयोग बन जाते हैं । और (नेटि) सूत्र में इडादि सिच के परे वृद्धि का निषेध होता है सो जो दूरस्थ वृद्धि का भी होतो अमार्जात्, अलावीत्, अपावीत् इत्यादि में भी वृद्धि का निषेध होना चाहिये इस परिभाषा से समीपस्थ हलन्तलक्षण वृद्धि का निषेध हो जाता है सामान्य करके नहीं इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ५३ ॥

(ददति, दधति) इत्यादि प्रयोगों में जो प्रत्ययादि भ्रकार को अन्तरङ्ग होने से अन्तादेश प्रथम हो जावे तो अभ्यस्तसंज्ञकों से विहित प्रत्ययादि भ्रकार को अत् आदेश व्यर्थ और अनिष्टप्रयोग सिद्ध होने लगें इसलिये ये परिभाषा हैं ॥

५४-नचापवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥

५५-पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥

५६-प्रकल्प्य चापवादविषयमुत्सर्गः प्रवर्तते ॥ अ० ६ । १ । ५ ॥

ये तीनों परिभाषा उत्सर्गापवाद की व्यवस्था के लिये हैं अपवादविषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती । प्रथम अपवादों की और पश्चात् शेषविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति होती है । अपवाद के विषय को छोड़के अपने विषय में उत्सर्ग प्रवृत्त होते हैं । इस से यह आया कि अभ्यस्तसंज्ञक से प्राप्त जो प्रत्ययादि भ्रकार को अत्, आदेश उस अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति न होने से प्रथम अपवाद प्रवृत्त हुआ तो प्रत्ययादि भ्रकार को अत् आदेश हो कर [ददति, दधति] आदि प्रयोग सिद्ध हो गए । और जैसे अन्त आदेश का बाधक [पचेयुः, अजागरुः] आदि प्रयोगों में भ्रि को जुस् होता है वैसे [ऐप्सन्] आदि प्रयोगों में उत्सर्ग का विषय है उस में भ्रि को जुस् नहीं होता । अर्थात् अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती और उत्सर्ग के विषय में अपवाद की प्रवृत्ति हो ही जाती है ॥ ५६ ॥

अब पूर्व परिभाषाओं से यह आया कि अपवादविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति नहीं होती किन्तु स्वविषय में अपवाद उत्सर्ग का बाधक होता है तो [दीर्घोऽकितः] इस सूत्र में अकित् ग्रहण व्यर्थ होता है क्योंकि जो सामान्य से अभ्यास की दीर्घ

कहते तो अनुनासिकान्त अकारोपध धातुओं के अभ्यास को दीर्घ का बाधक (नुक्) आगम हो कर अजन्त के न रहने से दीर्घ की प्राप्ति ही नहीं थी तो (यंबम्यते, रंरम्यते) आदि प्रयोग सिद्ध हो ही जाते फिर अकित् ग्रहण व्यर्थ हो कर इस वक्ष्यमाण परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥

५७-अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते ॥अ० ७।४।८३॥

अभ्यास के आदेशविधानप्रकरण में अपवाद उत्सर्गों के बाधक नहीं होते तो जब दीर्घरूप उत्सर्ग का बाधक नुक्, न रहा तो (यंबम्यते) आदि में दीर्घ की प्राप्ति हुई इसलिये अकित् ग्रहण सार्थक हुआ यह तो स्वार्थ में चरितार्थ औरअन्यत्र फल यह है कि (डोढीक्यते, तोत्रीक्यते) इत्यादि प्रयोगों में उत्सर्गरूप ह्रस्वका बाधक दीर्घ नहीं होता और जो ह्रस्व का अपवाद होने से औकार को औकार ही दीर्घ कर लेवे तो फिर ह्रस्व होकर गुण न होवे तो (डोढीक्यते) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हों इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५७॥

तच्चीलादि अर्थों में (तन्) प्रत्यय ण्वुल् का अपवाद है और (ण्वुल्) तथा (तन्) असरूप प्रत्यय भी हैं सो धात्वधिकार में असरूप प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके होता है पक्ष में उत्सर्ग भी होजाता है अब (निन्दहिंसक्लिग्) इस सूत्र में (वुञ्) प्रत्यय का (तन्) अपवाद क्यों पड़ा क्योंकि तन् के द्वितीय पक्ष में ण्वुल् होकर (निन्दकः, हिंसकः) आदि प्रयोग बन ही जाते कि जो (वुञ्) प्रत्यय के होने से बनते हैं और (निन्दकः) आदि में (ण्वुल्, वुञ्) का स्वर भी एक ही होता है एक (असूयक) शब्द के स्वर में तो (एवुल्, वुञ्) के होने से भेद पड़ेगा । ण्वुल् का स्वर [असूयकः] वुञ् का [असूयकः] और [निन्दकः] आदि में आद्युदात्त ही रहेगा । फिर निन्द आदि धातुओं से वुञ् विधान व्यर्थ हुआ इसलिये यह ज्ञापकसिद्ध परिभाषा है ॥

५८-ताच्छीलिकेषु सर्व एव तृजादयोवाऽसरूपेण न भवन्ति॥

अ० ३।२।१४६ ॥

तच् आदि अपवादां के साथ असरूप उत्सर्गरूप प्रत्यय तच्चीलाधिकार विहित अपवादां के पक्ष में नहीं होते । इस से तच्चीलाधिकारविहित तन् के पक्ष में जब ण्वुल् नहीं होसकता तो निन्द आदि धातुओं से वुञ् विधान सार्थक होगया और [असूयकः] में स्वर भेद होने के लिये [वुञ्] कहना आवश्यकही है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५८ ॥

अब धात्वधिकार में सर्वत्र वाऽसरूपविधि के मानने से (हसितं, हसनं वा क्वात्स्य शोभनम्) यहाँ (क्त) और ल्युट् के विषय में घञ् (इच्छति भोक्तुम्) यहाँ (लिङ्, लोट्) और (ईषत्पानः सोमो भवता) यहाँ (खल्) असरूप उत्सर्ग होने से प्राप्त हैं इस सन्देह को निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

५९-क ल्युट् तु मुन् खलर्थे बुवाऽसरूपविधिर्नास्ति ॥ अ० ३। १। ९४ ॥

क्त, ल्युट्, तुमुन्, और खलर्थप्रत्ययों के विषय में असरूप उत्सर्ग प्रत्यय अपवाद-पक्ष में नहीं होते इस से (हसितम्, हसनम्) आदि प्रयोगों के विषय में घञ् आदि उत्सर्ग प्रत्यय नहीं होते (अर्हं कृत्यत्वच्य) इस सूत्र में कृत्य और त्वच् प्रत्यय नहीं कहते तां अर्हं अर्थ में अर्हे हुए लिङ्ग के साथ असारूप्य होने से अर्हं अर्थ में कृत्य और त्वच् हो ही जाते फिर कृत्य और त्वच् ग्रहण व्यर्थ होकर यह जानाते हैं कि (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) यह परिभाषा अजित्य है ॥ ५८ ॥

(हृषत्तोल्लङ्च) इस सूत्र में लङ् ग्रहण नहीं करते तो भूतानद्यतनपरोक्षकाल में, विहित (लिट्) के साथ असरूप (लङ्) का समावेश हो ही जाता फिर लङ् व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक होता है ॥

६०-ज्ञादेशेषु वाऽसरूपविधिर्न भवति ॥ अ० ३। १। ९४ ॥

लकारार्थ विधान में वाऽसरूपविधि नहीं होती । इस से लङ् लकार का ग्रहण सार्थक हुआ । और [लटः गलशानचा०] यहाँ विकल्पकी अनुवृत्ति इसलिये करते हैं कि जिस से लिङ् का भी पक्ष में समावेश हो जावे जो [वाऽसरूप-विधि] होजाती तो लिङ् समावेश के लिये विकल्पनहीं लाने पड़ता इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा के समझने चाहिये ॥ ६० ॥

अब तस्मिन्निति, तस्मादित्युत्तरस्य, इन सूत्रों से सप्तमीनिर्दिष्टकार्य अव्यवहित पूर्व को और पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है सो [इको यणचि] यहाँ सप्तमीनिर्दिष्ट पूर्व को और [व्यन्तरूपसर्गेभ्योऽपदैत] हीपम् । यहाँ पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है । परन्तु जहाँ पंचमी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का निर्देश हो वहाँ किसको कार्य होना चाहिये इस संदेह को निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६१-उभयनिर्देशो विप्रतिषेधात् पंचमीनिर्देशः ॥ अ० १। १। ६६ ॥

जहाँ सप्तमी पंचमी दोनों विभक्तियों से निर्देश किया है वहाँ [तस्मिन्निति० तस्मादित्यु०] इन दोनों सूत्रों में पर विप्रतिषेध मान के पंचमीनिर्दिष्ट का कार्य

होना चाहिये जैसे (बहोर्लोपोभूच बहोः) यहां (बहु) शब्द पंचमीनिर्दिष्ट और (इठन्, इमनिच्, ईयसुन्) सप्तमीनिर्दिष्ट हैं यह बहु से परे इठन् आदि को वा इठन् आदि के परे बहु शब्द को कार्य होवे इस सन्देह की निवृत्ति इस परिभाषा से हुई कि पंचमीनिर्दिष्ट को कार्य होना चाहिये अर्थात् बहु से परे इठन् आदि को कार्य होवे सो परको विहितकार्य अर्थात् ईयसुन् के आदि का लोप हो जाता है भूयान्, भूमा तथा (ङमो ह्रस्वादचिङमुण् नित्यम्) यहां ङम् से परे अच् को वा अच् परे हो तो ङम् को कार्य हो यह सन्देह है । सो ह्रस्व से परे जो ङम् उस से परे अच् को कार्य होता है (तिङ्ङितिङः) कुर्वन्नास्ते । इत्यादि बहुत सन्देह निवृत्त हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

इस व्याकरणशास्त्र में (स्वं रूपं शब्दस्या०) इस परिभाषासूत्र के अनुकूल (पयस्कुम्भो, पयस्पात्री) इत्यादि प्रयोगों में विसर्जनोय को सकारादेश न होना चाहिये क्योंकि कुम्भ और पात्र आदि शब्दों के परे कहा है उन के स्वरूप ग्रहण होने से स्त्रीलिङ्ग में नहीं हो सकता । इसलिये यह परिभाषा है ॥

६२-प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति ॥

अ० ४ । १ । १ ॥

प्रातिपदिक के परे वा प्रातिपदिक को जहां कार्य कहा हो वहां पठितलिङ्ग से विशेषलिङ्ग का भी ग्रहण होना चाहिये इस से पयस्कुम्भो आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं जैसे सर्वनाम को सुट् कहा है सो (येषाम्, तेषाम्) यहां तो होता ही है (यासां, तासां) यहां भी हो जावे जैसे (कष्टं श्रितः कष्टश्रितः) यहां समास होता है वैसे (कष्टं श्रिता कष्टश्रिता) यहां भी हो जावे जैसे (हस्तिनां समूहो हास्तिकम्) यहां ठक् होता है वैसे (हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्) यहां भी हो जावे जैसे (ग्रामेवासी) यहां सप्तमी का अलुक् होता है वैसे (ग्रामे वासिनी) यहां भी हो जावे इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६२ ॥

जब प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का भी ग्रहण होता है तो जैसे (यूनः पश्य) यहां युवन् शब्द को सम्प्रसारण होता है वैसे (युवतीः पश्य) यहां स्त्रीलिङ्ग में भी होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६३-विभक्तौ लिङ्गविशिष्टग्रहणं न ॥ अ० ७ । १ । १ ॥

विभक्ति के आश्रय कार्य करने में पठितलिङ्ग से अन्य लिङ्ग का ग्रहण नहीं होता । इस से भसंज्ञाश्रय सम्प्रसारण युवति शब्द को नहीं होता तथा जैसे

(गोमान्, यवमान्) यहां नुम् औसंदीर्घ होते हैं वैसे (गोमती, यवमती) यहां होवे सो सर्वनामस्य विभक्त्याश्रित कार्य होने से नहीं होता जैसे (सखा, सखायौ) यहां सखि शब्द को आकारादेश होता है वैसे (सखी, सख्यौ, सख्यः) यहां स्त्रीलिङ्ग में विभक्त्याश्रित आकार नहीं होता इत्यादि इस परिभाषा के भी बहुत प्रयोजन हैं ॥ ६३ ॥

(तस्यापत्यम्) इस सूत्र में (तस्य) यह पुलिङ्ग षष्ठी का एक वचन और अपत्य शब्द नपुंसकलिङ्ग प्रथमैकवचननिर्देश किया है तो (कन्याया अपत्यं, कानौनः) यहां स्त्रीलिङ्ग शब्दसे कानौन शब्द नहीं सिद्ध होना चाहिये और (दयोर्मात्रोरपत्यं हेमातुरः) यहां द्विवचन से प्रत्ययोत्पत्ति भी नहीं होनी चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

६४-सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ अ० ४।१।९२ ॥

जो सूत्र में लिङ्ग और वचन पढ़े हैं वे कार्य करने में प्रधान नहीं होते अर्थात् जहां स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग से तथा एकवचन, द्विवचन बहुवचन से निर्देश किये जावें वहां उसी पठितलिङ्ग वा वचन से कार्य लिया जाय यह नियम नहीं समझना चाहिये किन्तु एक किसी लिङ्ग वा वचनसे शब्द पढ़ा हो तो सभी लिङ्ग वचनों से कार्य हो सकते हैं इस से (कानौनः, हेमातुरः) इत्यादि शब्द सिद्ध हो जाते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा से सिद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

अब अच्यन्त भृशादि प्रातिपदिकों से जो भू धातु के अर्थ में (कृष्) प्रत्यय होता है वह (कृ दिवा भृशा भवन्ति) यहां भी भृश शब्दसे होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६५-नञिव्युक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथाह्यर्थगतिः ॥ अ०

३।१।१२ ॥

वाक्य में जो नञ्युक्त पद है उस के समान जो वाक्य में युक्त और उस नञ्युक्त पदार्थ के सदृश धर्मवाला हो उस में कार्यविधान होना चाहिये। ऐसा ही अर्थ लोक में प्रतीत होता है। अर्थात् वाक्य में जिस पदार्थ को जिस क्रिया का निषेध होवे उस पदार्थ के तुल्य धर्म वाले को उसी क्रिया का विधान कर लेना चाहिये। जैसे लोक में किसी ने कहा कि (अब्राह्मणमानय) ब्राह्मण से भिन्न को लेना तो ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि किसी मनुष्य को ले आता है क्योंकि ब्राह्मण के तुल्य धर्मवाला मनुष्य ही होता है किन्तु यह नहीं होता कि ब्राह्मणसे इतर की मंगवाने में मट्टी वा पत्थर आदि किसी पदार्थ को लेना के अपना अभीष्ट

सिद्ध कर लेवे । इसी प्रकार शास्त्री में भी जिस का निषेध किया हो उसके सदृश दूसरे का विधान करना चाहिये । यहां जो च्विप्रत्ययान्त से अन्य भृशादिशब्दों से कण् प्रत्यय विधान किया है वह च्विप्रत्ययान्त के तुल्य अर्थ वाले भृशादिकों से कण् होना चाहिये । च्वि प्रत्यय का अर्थ अभूततद्भाव है उसी अर्थ में कण् होता है (अभृशो भृशो भवति, भृशायते) इत्यादि (कदिवा भृशा भवन्ति) यहां अभूततद्भाव के न होने से (कण्) नहीं होता । तथा (दधिक्यादयति, मधुका दयति) इत्यादि प्रयोगों में (तुक्) आगम को अभक्त मानें कि न पूर्वान्त और न परादि दोनों से पृथक् है तो अतिङ् से परे तिङ् पद को निघात होजावे । सो तुक् तिङ् से भिन्न तिङ् के तुल्य धर्मवाला पद नहीं है इस से निघात नहीं पावेगा और निघात होना इष्ट है इसलिये (तुक्) को अभक्त नहीं करना, किन्तु पूर्वान्त ही करना चाहिये इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६५ ॥

(उपपदमतिङ्) इस सूत्र में अतिङ्ग्रहण का यही प्रयोजन है कि तिङन्त उपपद का समास न होवे सो जो (सुप्, सुपा) इन दोनों की अनुवृत्ति चली आती है तब तो तिङ् उपपद का समास प्राप्तही नहीं फिर निषेधार्थ करना व्यर्थ हुआ इसलिये ऐसा आपक होना चाहिये कि असुबन्त के साथ असुबन्तका भी समास होता है तब तो अतिङ्ग्रहण सार्थक होता है इसलिये यह प० ॥

६६-गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्-

पतेः ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

गति कारक और उपपद इन का कृदन्त के साथ सु आदि की उत्पत्ति से पहिले ही समास होजाता है । यहां केवल सुप्ररहित कृदन्त के साथ समास हुआ तो अतिङ्ग्रहण सार्थक होने से स्वार्थ में चरितार्थ होगया । और अन्यत्र फल यह है कि गति, (साकूटिनम्) यहां जो तद्धितोत्पत्ति से पहिले सम् और कूटिन् सुबन्तों का समास करके पीछे तद्धित उत्पन्न किया चाहें तो तद्धितोत्पत्ति की विवक्षा में कूटिन् शब्दकी पृथक् पदसंज्ञा रहने से सम् शब्द को वृद्धि नहीं हो सकती । और जब सुप्ररहित केवल कूटिन् कृदन्त के साथ समास होता है तब समास समुदाय की एक पदसंज्ञा होकर तद्धितोत्पत्ति होने से सम् को वृद्धि होजाती है । कारक, (या वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती, अश्वक्रीती) इत्यादि शब्दों में केवल क्रीत कृदन्त के साथ वस्त्र आदि शब्दों का समास होकर कारण पूर्व क्रीतान्त प्रातिपदिक से (क्रीष्) प्रत्यय होजाता है । और जो सुबन्त के साथ ही समास नियम रहे तो समास की विवक्षा में ही अन्तरङ्ग होने से

अकारान्तक्रीत शब्दसे टाप् होजावे पुनः अकारान्त होजानेसे अकारान्तसे विहित ङीप् प्रत्यय नहीं होवे तो (वस्त्रक्रीती) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हो सकें। उपपद, (माषवापिणी, त्रीष्टिवापिणी) यहाँ प्रातिपदिकान्तनकार को गत्व होता है। सो जो सुबन्तों का ही समास करे तो समास की विवक्षा में ही नकारान्त (वापिन्) शब्दसे ङीप् होकर पीछे समास हो तब उस ङीबन्त (माषवापिनी) समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा होवे तो प्रातिपदिकान्त ईकार के होने से फिर गत्व नहीं होसके। और जब केवल कृदन्त वापिन् शब्दके साथ समास होता है तब केवल माषवापिन् नकारान्त शब्दकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर ङीप् होता है तो प्रातिपदिकान्तनकार को गत्व होजाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६६ ॥

(उगित्वा सर्वनामस्थानेऽधातोः) इस सूत्र में उगित् धातु के निषेध का यही प्रयोजन है कि (उखास्त्रत्, पर्णधत्) इत्यादि में तुम् आगम न हो सो यह प्रयोजन तो (अच्) धातु के ग्रहण से निकल जाता कि (उगित्) धातुको (तुम्) आगम हो तो अच् ही को हो इस नियम से अन्य उगित् धातु को तुम् होता ही नहीं फिर अधातु ग्रहण व्यर्थ हुआ। इसके व्यर्थ होने रूप ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है ॥

६७-साम्प्रतिकाऽभावे भूतपूर्वगतिः ॥

जो पदार्थ वर्त्तमान काल में अपनी प्रथमावस्था से पृथक् होगया होतो उसी पूर्वावस्था के सम्बन्ध से उस को वर्त्तमान में भी कार्य हों जैसे (गोमन्तमिच्छति, गोमत्यति, गोमत्यते, क्तिप्, गोमान्) यहाँ प्रथम तो गोमान् प्रातिपदिक है पीछे उस से क्यच् हुआ तो धातुसंज्ञा हुई फिर क्यच्प्रत्ययान्त से क्तिप् होने से धातुसंज्ञा उसकी बनी रही। सो पूर्व रही प्रातिपदिकसंज्ञा के स्मरण से पीछे धातुसंज्ञा के बने रहते भी (तुम्) होता है अर्थात् अधातुनिषेध नहीं लगता इस से अधातु निषेध भी सार्थक रहा। तथा (आत्मनः कुमारौमिच्छति, कुमारौयति, कुमारौयते: कर्त्तरि क्तिप्, कुमारी ब्राह्मणः, तस्मै कुमाय *ब्राह्मणाय) यहाँ कुमारी शब्द प्रथमावस्था में स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त है तब तो स्त्र्याख्य ईकारान्त नदीसंज्ञा सिद्ध है पीछे जब पुंलिङ्गवाची हो गया तब भी पूर्वावस्था के भूतपूर्व स्त्रीत्व को लेकर नदीसंज्ञा होके नदीसंज्ञा के कार्य भी होते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६७ ॥

यहाँ भूतपूर्वगति परिभाषा के मानने से कार्य भी चलजाता तथा अन्य भी सब काम चलता है फिर कुमारी ब्राह्मणाय। इत्यादि प्रयोगसिद्धि के बिना नदीसंज्ञा में (प्रथमलिङ्गग्रहण) इस वार्तिक का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहा क्योंकि इस परिभाषा के होने से सब काम निकलजाते हैं। वार्तिक एकदेशी और परिभाषा सर्वदेशी है।

* बहुव्रीहिसमासमें अन्य पदार्थ प्रधान होता है अर्थात् जिन दो वा अधिक पदों का समास किया जावे उन पदों से पृथक् पद वाच्य अन्य पदार्थ कहा जाता है जैसे (चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, श्वलगुः) यहां गौओं का विशेषण (चित्रगुण) और गौ इन दोनों पदों से भिन्न इन का स्वामी (चित्रगु) कहा जाता है इसी प्रकार (सर्व आदिर्येषां तानि सर्वादीनि) यहां सर्व और आदि दोनों शब्दों से पृथक् अन्य पदार्थ लिया जावे तो सर्वशब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं हो सके इसलिये यह परिभाषा है ॥

६८—भवति हि बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि* ॥ अ० १।१।२७ ॥

बहुव्रीहि दो प्रकार का होता है एक (तद्गुणसंविज्ञान) और दूसरा (अतद्गुणसंविज्ञान) तद्गुणसंविज्ञान उस को कहते हैं कि जहां उस अन्य पदार्थ के साथ उसके निज गुणों का समवायसम्बन्ध हो जैसे (लम्बकर्णः, तुङ्गनासिकः, दीर्घबाहुः, क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः) इत्यादि में अन्य पदार्थ का बोध कान आदि के सहित होता है। अतद्गुणसंविज्ञान वह है कि जिन पदों का समास किया जावे उन से अन्य पदार्थ का पृथक् सम्बन्ध बना रहे कि जैसे (चित्रगु) शब्द में दिखा दिया है। इस से सर्वादि में भी तद्गुणसंविज्ञान मान के सर्व शब्द की भी सर्वनामसंज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

जहां समास को अन्तोदात्त स्वर कहा है वहां (ब्राह्मणसमिन्, राजदृषत्) इत्यादि प्रयोगों के अन्त में तकार है तो विधानसामर्थ्य से उस व्यञ्जन को ही उदात्त हो जाना चाहिये इत्यादि सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६९—हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवद्भवति* ॥ अ० ६।१।२२३ ॥

व्यञ्जनको उदात्तादि स्वर प्राप्त होता वह व्यञ्जन अविद्यमानवत् होता है इससे (ब्राह्मणसमिन्) आदि प्रयोगों में अन्य तकार को अविद्यमानवत् मान के इकार

* इस परिभाषा के आगे नागेश ने (चानुक्तं नोत्तरम्) यह परिभाषा लिखी है सो ठीक नहीं क्योंकि उसका मूल कहीं महाभाष्य से वा मूर्धो से नहीं निकलता और न कोई उदाहरण मुख्य प्रयोग का दिया।

+ इस परिभाषा से नागेश भट्ट तथा अन्य लोग भी महाभाष्य से विरुद्ध लिखते पढ़ते हैं कि (स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्) ऐसा पाठ करने में महाभाष्यकार ने ये दोष भी दिखाये हैं कि उदात्तादि स्वरों के विधान मात्र में ही व्यञ्जन अविद्यमानवत् माना जावे तो (विद्युत्वात् वलादकः) यहां विद्युत् के तकार को अविद्यमान मानें तो वृक्ष से परे मनुष्य को उदात्त स्वर (दृक्खण्ड्यां) स्व से प्राप्त है इत्यादि अनेक दोष आनेगे और (हल्स्वरप्राप्तौ) इस प्रकार की परिभाषा ने कोई दोष नहीं आता इसलिये नागेश आदि का मानना ठीक नहीं है।

को उदात्त होजाता है । इस का आपक (यतोऽनावः) इस सूत्र में यत् प्रत्ययान्त व्यच् प्रातिपदिक को आद्युदात्त कहा है । और (नौ) शब्द का निषेध इसीलिये है कि (नाव्यम्) वहां आद्युदात्त न हो सो जब आदि में नकार है तब स्वर के होने से आद्युदात्त प्राप्त ही नहीं फिर निषेध करने से यही प्रयोजन है कि उस नकार का भी स्वर प्राप्त होता है सो अविव्यमानवत् मान के आकार को होजाता इसलिये निषेध किया । तथा अनुदात्तादि वा अन्तोदात्त से परे जो कार्य कहे हैं उन में जहां आदि और अन्त में व्यञ्जन हैं वहां उन कार्योंकी प्राप्ति नहीं होगी वहां भी अविव्यमानवत् मान कर काम चल जाता है । और जो कदाचित् ऐसा मान लिया जावे कि उदात्तादि गुण व्यंजनों के ही हैं उन के संयोग से अर्चोंके भी धर्म समझे जाते हैं सो नहीं बन सकता क्योंकि व्यंजन के बिना भी केवल अर्चों में उदात्तादि धर्म प्रसिद्ध हैं और अच् के बिना व्यंजन का उच्चारण होना भी कठिन है इसलिये उदात्तादि गुण स्वतंत्र व्यंजनों के नहीं होसकते । परन्तु यह बात तो माननी चाहिये कि अच् के संयोग से व्यंजन को भी उदात्तादि गुण प्राप्त हो जाते हैं । जैसे दो रङ्गवस्त्रों के बीच एक श्वेत वस्त्र हो तो वह भी कुछ रङ्गित प्रतीत होता है ॥ ६८ ॥

(वामदेवाङ् व्यङ्घी) इस सूत्र में व्यत् औ ङ प्रत्यय हित् इसीलिये पढ़े हैं कि हित् के परे वामदेव शब्द के टि भाग का लोप होजावे सो (यस्येति च) सूत्र से तद्धित के परे भस्मक अवर्ण का लोप हो ही जाता फिर हित्करण व्यर्थ हो कर इन परिभाषाओं के निकलने में आपक है ॥

७०—अनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥

७१—तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥ अ० ४।२।१॥

अनुबन्धरहित प्रयोगों के ग्रहण में अनुबन्धसहितोंका ग्रहण नहीं होसकता अर्थात् जहां यत् प्रत्यय डकार अनुबन्ध से रहित पड़ा है और व्यत् में डकारकी इत्संज्ञा होकर यत् ही रह जाता है जहां यत् और य प्रत्यय का ग्रहण किया है वहां (व्यत्, ङ) प्रत्यय का ग्रहण न हो । और जिस अनुबन्धसे जो प्रत्यय पड़ा है उस में द्वितीय अनुबन्ध के सहित प्रत्यय का ग्रहण न हो अर्थात् यत् कहनेसे ष्यत् अङ् कहने से चङ् और अच् कहने से णच् का ग्रहण न हो इस से यह

आया कि (ययतोऽघातदर्शे) इस स्वरविधायक सूत्र में नञ् से परे (य, यत्) प्रत्ययान्त को अन्तोदात्त स्वर होता है सो जो (घात्, घा)का भी ग्रहण होवे तो (अघामदेव्यम्) यहाँ भी अन्तोदात्त स्वर होजावे और पूर्वपदप्रकृतिस्वर इष्ट है इसलिये ङित्ग्रहण का सार्थक होना स्वार्थ में चरितार्थ और अङ् के परेजो गुणआदि कार्य कहा है सो चङ् के परे नहीं होता और चङ् के परे जोद्वित्वादि कार्य कहा है सो अङ् के परे नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥७०॥७१॥

(णचः स्त्रियामञ्) यहाँ णच् प्रत्ययान्त से स्वार्थ में अञ् प्रत्ययकहाहै सो (कर्मव्यतिहारे णच्स्त्रियाम्) इस सूत्र से णच् प्रत्यय का तो स्त्रीलिंगमें ही विधान है फिर स्वार्थ में णच् प्रत्ययान्त से अञ् कहने से स्त्रीलिंग ही हो जाता क्योंकि स्वार्थिक प्रत्ययों के होने में प्रकृति के लिङ्ग और वचन की अनुवृत्ति होती है फिर स्त्रीग्रहण व्यर्थ हुआ इसलिये यह परिभाषा है ॥

७२-कचित्स्वार्थिका अपि प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ॥

अ० ५ । ३ । ६८ ॥

कहीं २ स्वार्थिक प्रत्यय भी प्रकृति के लिङ्ग वचनों को छोड़ देते हैं । जब प्रकृति के लिङ्ग वचन स्वार्थप्रत्ययोत्पत्ति में सर्वत्र नहीं बने रहते तो (णचः-स्त्रियामञ्) सूत्र में स्त्रीग्रहण सार्थक हो गया । तथा(अपक्कल्पम्) यहाँ नियत स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त अप् शब्द से कल्पप्रत्यय स्वार्थ में हुआ है सो अपने लिङ्ग वचन छोड़ के नपुंसकलिङ्ग एकवचन रह जाता है तथा (गुडकल्पा द्राक्षा, पयस्कल्पा यवागूः) यहाँ गुडपुलिङ्ग और पयः नपुंसकलिङ्ग से कल्प प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग हो जाता है । और कचित् कहने से यह प्रयोजन है कि(बहुगु-डो द्राक्षा, बहुपयो यवागूः) इत्यादि में प्रकृति के अनुकूल ही लिङ्ग वचन रहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७२ ॥

(प्रतेरंश्वाद्यस्तत्पुरुषे) इस सूत्र के अंश्वादिगण में राजन् शब्द पड़ा है तो उस का यही प्रयोजन है कि प्रति से परे तत्पुरुष समासमें राजन् शब्द अन्तोदात्त होजावे सो जब प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से तत्पुरुष समास में समासान्तटच्प्रत्यय प्राप्त है तब तो चित् होने से अन्तोदात्त होही जाता फिर राजन् शब्द का पाठ व्यर्थहुआ इसलिये यह परिभाषा है ॥

७३-विभाषा समासान्तो भवति * ॥ अ० ६ । २ । १९७ ॥

समासान्त सब प्रत्यय विकल्प करके होते हैं तो प्रतिपूर्वक राजन् शब्दसे जिस पक्ष में समासान्त टच् न हुआ वहां (प्रतिराजा) में भी अन्तोदात्त हो जावे इसलिये राजन् शब्द का श्रेश्वादिगण में पढ़ना सार्थक हो गया । तथा (द्वित्रिभ्यां पाद्भ्यः) इस सूत्र से भी बहुव्रीहिसमास में द्वित्रिपूर्वक मूर्द्ध शब्दको अन्तोदात्त स्वर कहा है सो यहां भी द्वित्रिपूर्वक मूर्द्ध से जब समासान्त ष प्रत्ययविधान है तो प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त सिद्ध हो है फिर मूर्द्धन् शब्द का ग्रहण इसीलिये है कि समासान्त प्रत्यय विकल्प होते हैं सो जिस पक्ष में समासान्त नहीं होता (द्विमूर्द्धा, त्रिमूर्द्धा) यहां भी अन्तोदात्त स्वर हो जावे । इत्यादि प्रयोजनोंके लिये यह परिभाषा है ॥ ७३ ॥

(शतानि, सहस्राणि) यहां सब सर्वनामस्थान शि को मान के लुम्भागम होता है तब (शतन्, सहस्रन्) शब्दों के नकारान्त हो जाने से (णान्ता षट्) सूत्र से षट्संज्ञा हो जावे तो (षट्भ्यो लुक्) सूत्र से शिका लुक् होना चाहिये इत्यादि समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

७४-सन्निपातलक्षणोविधिरनिमित्तं तद्विधातव्या ॥ अ० १।१।३९ ॥

जो एक के आश्रय से दूसरे का सम्बन्ध होना है वह सन्निपात कहा जाता है उसी सन्निपातसंबन्ध का जो निमित्त हो ऐसा जो विधि कार्य है वह उस अपने निमित्तके बिगाड़नेको अनिमित्त अर्थात् असमर्थ होता है । यहां शत, सहस्रशब्द से जस् आकर शि आदेश हुआ अब शि के आश्रय से शत शब्द को लुम् हो कर शत नान्त हुआ अब जिस के आश्रय से शत को नान्तत्व गुण मिला उस नान्त-गुण से उसी का विधात करे यह ठीक नहीं इस से (शतानि, सहस्राणि) आदि में शि का लुक् नहीं होता तथा (इयेष, उबोष) यहां णल् प्रत्यय के आश्रय से (इष, उष) धातु को गुणहीता है गुण होने से इजादि मान कर आम् प्राप्त है और

✽ इस परिभाषा का नागेश भट्ट ने (समासान्तविधिरनित्यः) ऐसा लिखा है सो महाभाष्यसे विद्वद् है क्योंकि अनित्य और विभाषा में बहुत भेद है अनित्य उस को कहते हैं कि जो कभी हो और कभी न हो और विकल्प के दो पक्ष सदा बने रहते हैं और इस परिभाषा की भूमिका में (सुपथी नगरी) यह महाभाष्य का उदाहरण करके रक्खा है कि पथिन् शब्द से (इतः स्त्रियाम्) स्त्र से समासान्त कप् नहीं हुआ तो समासान्त अनित्य है । सो यह नहीं विचारा कि (न पूजनात्) स्त्र से (सुपथी नगरी) आदि सब में पूजनवाची समास से समासान्त का निषेध सिद्ध है जब कप् प्राप्त हो नहीं तो समासान्तविधि के अनित्य होने में (सुपथी नगरी) यह प्रयोग कब समर्थ हो सकता है । देखो व्याकरण में नागेश की कितनी बड़ी भूल है ।

आम् के होजाने से उस से परे लुक् कहा है तो उसी णत् का विघात हो कि जिस के आश्रय से इस उघ इजादि हुए हैं इत्यादि इसके अनेक प्रयोजन हैं। और लोक के साथ भी इस परिभाषा का सम्बन्ध है कि जो पुरुष जिस धनाव्य के धन से स्वयं धनवान् हुआ हो वह उसी धन से धनाव्य का विघात करे यह बहुत विरुद्ध है अर्थात् ऐसा कभी न होना चाहिये कि जिस के संग से जो सामर्थ्य प्राप्त हो उस सामर्थ्य से उसी को नष्ट करे ॥ ७४ ॥

(पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य स पञ्चेन्द्रः स्थालीपाकः) पञ्चेन्द्राण्यो शब्दसे देवता अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का (द्विगोर्लुगनपत्ये) सूत्र से लुक् होकर (लुक् द्वितलुकि) सूत्र से ईकार स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। तब ङीष् के संयोग से आया जो आनुक् आगम उस का लुक् विधान किसी सूत्र से नहीं किया सो उस आनुक् का अर्थ हो तो (पञ्चेन्द्रः) आदि शब्द सिद्ध नहीं हो सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

७५—संनियोगशिष्टानामन्यतराऽभावे उभयोरप्यभावः ॥ अ०

६ । ४ । १५३ ॥

जिस कार्य के होनेमें एक साथ दो का नियम हुआ हो उन में से जब एकका अभाव होजावे तब दूसरे का अपने आप अभाव होजाता है। जैसा किसी कार्य का नियम है कि देवदत्त यज्ञदत्त दोनों मिलके इस काम को करें सो जो देवदत्त न रहे तो यज्ञदत्त उस कार्य से स्वयं निवृत्त होजाता है। इसी प्रकार यहां भी इन्द्र शब्दसे स्त्रीत्व रूप कार्य की विवक्षा को ङीष् और आनुक् दोनों पूरी करते हैं। सो जब ङीष् का अभाव होता है तब आनुक् भी वहां से निवृत्त होजाता है। तथा (पञ्चाग्नाय्यो देवता अस्य स पञ्चाग्निः)। यहां स्त्री प्रत्यय के लुक् होने के पश्चात् ऐकार आगम की भी निवृत्ति होजाती है। इस परिभाषा का आपक यह है कि (विल्वकादिभ्यश्च लुक्) इस सूत्र में विल्वकादि से परे छ प्रत्यय का लुक् कहा है और उसी छ प्रत्यय के संयोग से विल्वादि शब्दों को कुक् होता है। सो विल्वादि शब्दों से छ का लुक् कहदेते तो कुक् आगम की भी निवृत्ति हो जाती। इसलिये विल्वादि शब्दों को कुक् आगम के सहित पढ़ें उन से परे छ प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है। इस से सिद्ध हुआ कि आगमी की निवृत्ति में आगम की निवृत्ति होजाती है। तब छत कुगागम विल्वकादि से छ प्रत्यय का लुक् कहा है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७५ ॥

तदनुबन्धकग्रहणे० इस पूर्व लिखित परिभाषा के अनुकूल अण् प्रत्यय के आश्रय कार्य है वह ए प्रत्यय को मान के न होना चाहिये तो (कामंस्ताच्छील्ये) इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि ताच्छील्य अर्थ में ए प्रत्यय पर होता कर्मन् शब्द के टि भाग का लोप हो सो (नस्तद्धिते) सूत्र से नान्त भ संज्ञक अङ्ग के टिका लोप सिद्ध हो है तो ताच्छील्य अर्थ में (कामः) प्रयोग बन ही जाता फिर यह सूत्र व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

७६-ताच्छीलिकेणोऽण् कृतानि भवन्ति ॥ अ० ६ । ४। १७२ ॥

तच्छील अर्थ में विहित ए प्रत्यय के परे अण् प्रत्ययाश्रित कार्य भी होते हैं इस से यह आया कि (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे अन्नन्त को प्रकृतिभाव कहा है सो ताच्छील्य अर्थ में ए प्रत्यय के परे अन्नन्तकर्मन् शब्द को भी प्राप्त था इसलिये (कामंस्ताच्छील्ये) सूत्र में टिलोपनिपातन सार्थक होगया यह स्वार्थ में चरितार्थ है । अन्यत्र फल यह है कि (पुराशीलमस्याः सा चोरी, तपः शीलमस्याः सा तापसी, इत्यादि प्रयोगों में ताच्छीलिक ए प्रत्ययान्तसे (टिड्ढाणञ्०) सूत्र में अणन्त से कहा डीप् हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७६ ॥

(दाण्डिनाय०) इस सूत्र में भ्रौणहत्य शब्द निपातन किया है उस से यही प्रयोजन है कि (भ्रूणघ्नो भावः भ्रौणहत्यम्) यहाँ निपातन से तकारादेश होजावे सो जो (हनस्त्वोऽविमलोः) सूत्र से ह्यञ् प्रत्यय के परे हन् के नकार को तकारादेश होजाता तो फिर निपातन करना व्यर्थ है इसलिये यह परिभाषा है ॥

७७-धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ अ० ७। २। ११४ ॥

जो धातु को कार्य कहा है वह उसी धातु से विहित प्रत्यय के परे हो अर्थात् धातु को कार्य प्रातिपदिक से विहित तद्धित के परे नहीं इससे हन् धातु को कहा तकारादेश भ्रौणहत्य में प्रातिपदिक से विहित तद्धित ह्यञ् के परे नहीं हो सकता । इसलिये भ्रौणहत्य में तकारादेश निपातन करना सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (भ्रौणघ्नः) यहाँ अण् प्रत्ययके परे तकारादेश नहीं होता तथा (कंसपरिमृडभ्याम्) यहाँ प्रातिपदिक से विहित विभक्ति के परे सृज् धातु को कही वृद्धि नहीं होती (रज्जुसृडभ्याम्, देवदृग्भ्याम्) यहाँ भलादि अकित् विभक्ति के परे सृज् धातु को अम् आगम नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७७ ॥

(सर्वके, विश्वके, उच्चकैः, नीचकैः) यहाँ सर्वनाम और अव्ययसंज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि सर्वादि में सर्व विश्व शब्द और अव्ययों में उच्चैस् नीचैस् शब्द पढ़े हैं

तो जब शब्दके स्वरूप का ग्रहण होता है तो उक्त शब्दों की सर्वनाम और अव्यय-संज्ञा कैसे होगी और संज्ञा के बिना सर्वनाम और अव्यय के कार्य भी नहीं हो सकते इसलिये यह परिभाषा है ॥

७८-तदेकदेशभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

कसो के एकदेश में कोई अन्य आजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है इस से यहां सर्व आदि शब्दों के मध्य में अकच् प्रत्यय आगया वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया गया तो सर्वनामसंज्ञा हो गई। इसी प्रकार (उच्चकैः) आदि में अव्ययसंज्ञा होना जानो। तथा (अहंपटामकि) यहां अतिङ् से परे तिङ्पद अनुदात्त भी हो जाता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७८ ॥

(गातिस्थाषुपा०) इस सूत्र में गाति निर्देश से तो अदादि के इण् धातु का ग्रहण होना ठीक है। परन्तु पा धातु के ग्रहण में संदेह है कि अलुक्विकरण भ्वादि और लुक्विकरण अदादि इन दोनों में से किस का ग्रहण किया जावे सो जो अदादि के पा धातु का भी ग्रहण हो तो (अपासौजनम्) यहां भी सिच् का लुक् हो जाना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

७९-लुग्विकरणा लुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् ॥

अ० ७ । २ । ४४ ॥

लुग्विकरण और अलुग्विकरण के ग्रहण में जहां संदेह पड़े वहां अलुग्विकरण का ही ग्रहण होना चाहिये इससे उक्त (गातिस्था०) सूत्र में (पा पाने) अलुग्विकरण धातु का ग्रहण हो जाता है। और लुग्विकरण (पारक्षणे) का ग्रहण नहीं होता। इस का आपक यह है कि (स्वरतिसूतिसूयति) इस सूत्र में (सूति, सूयति) दोनों के स्थान में सूङ् पढ़ते तो इन्हीं दोनों का ग्रहण हो जाता क्योंकि ये ही दोनों सूङ् हैं तीसरा नहीं परन्तु सूति लुग्विकरण अदादि और सूयति अलुग्विकरण दिवादि का है। इससे यही आया कि सामान्य सूङ् के पढ़ने से अलुग्विकरण सूयति का ग्रहण होता और सूति का नहीं होता इसलिये पृथक् २ दोनों का निर्देश किया गया है इत्यादि इसके अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७९ ॥

(हेरचङि) इस सूत्र में अभ्याससे परे हि धातु के हकार को कृत्व कहा है परन्तु वह कृत्व चङ् में न हो सो चङ् णिजन्त से होता है उस चङ् के परे हि की अङ्गसंज्ञा ही नहीं किन्तु णिच् के सहित और णिच् के परे हि की अङ्गसंज्ञा है और

अंगाधिकार में अङ्ग को कार्य का विधान वा निषेध होता है इस चङ् के परे कुत्व प्राप्त ही नहीं फिर निषेध क्यों किया इसलिये यह परिभाषा है ॥

८०—प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि कुत्वंभवति ॥ अ० ७।३।५६ ॥

कुचप्रकरण में जहाँ मूलप्रकृति का ग्रहण है वहाँ णिच्सहित प्रकृति का भी ग्रहण हो जावे । इस से चङ् के परे निषेध सार्यक होगया और अन्यत्र फल यह है कि (प्रजिवायधिपति) यहाँ णिजन्त हि धातु को सन् प्रत्यय के परे कुत्व हो जाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८० ॥

(ज्यादादीयसः) इस सूत्र में जो ज्य से परे ईयसन् प्रत्यय को आकारादेश न कहते तो भी लोप को अनुवृत्ति आकर पर के आदि ईकार का लोप होकर अकृत् यकारादि प्रत्यय के परे ज्य को दीर्घ हो के (ज्यायान्) प्रयोग सिद्ध होही जावेगा फिर आकारादेशविधान व्यर्थ होने से यह परिभाषा है ॥

८१—अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः ॥ अ० ६।४।१६० ॥

अंगाधिकार में कोई कार्य निष्पन्न हो गया होतो फिर दूसरे कार्य में प्रवृत्ति न होवे । इस से यह आया कि अंगाधिकार के एक ईयसन्लोप कार्य होने में फिर द्वितीय कार्य दीर्घ नहीं हो सकता इसलिये पूर्वोक्त (ज्यादादीयसः) सूत्र में आकारादेश सार्यक हो गया तथा (रौङ् ऋतः) यहाँ जो दीर्घ रौङ् न कहते तो भी (मावीयति) आदि में अकृत् यकारादि प्रत्यय के परे दीर्घ हो जाता फिर दीर्घ रौङ् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि रिङ् किये पीछे दीर्घ नहीं हो सकता इसलिये दीर्घ रौङ् पढ़ना चाहिये । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८१ ॥

(परमात्मानं नमस्करोति नमस्यति वा) इत्यादि प्रयोगों में नमः शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति (नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंबवट्योगाच्च) इस सूत्र से होनी चाहिये सो इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

८२—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्वलीयसी ॥ अ० २।३।१९ ॥

उपपदविभक्ति से कारकविभक्ति बलवान् होती है । उपपदविभक्ति यह कहाती है कि जहाँ कर्मादि कारक व्यवस्था से किसी निज विभक्ति का नियम न किया हो और जहाँ कर्मादि कारक व्यवस्था से नियत विभक्ति होती है उस को कारक विभक्ति कहते हैं सो (परमात्मने नमः, गुरवे नमः) इत्यादि में तो उपपदविभक्ति चतुर्थी हो जाती और (परमात्मानं नमस्करोति) इत्यादि में उपपदविभक्ति

को बाध के कारकविभक्ति हो जाती है । तथा (गाः स्वामी व्रजति) यहां स्वामी शब्द के योग में उपपद विभक्ति षष्ठी समी (स्वामीश्वराधिपति०) इस सूत्र से प्राप्त है परन्तु व्रजति क्रिया में गौश्री को कर्मत्व होने से द्वितीयाविभक्ति हो जाती है । इत्यादि ॥ ८२ ॥

(मिमार्जिषति) यहां (सृज्×सन्×तिप्=) इस अवस्था में वृद्धपेक्ष वृद्धि की अपेक्षा में अल्पापेक्ष अन्तरङ्ग होने से द्वित्व हो कर परत्व से अभ्यासकार्य होके (मिसृ-ज्×सन्×तिप्=) इस अवस्था में इकार ऋकार दोनों को वृद्धि प्राप्त है सो जो अभ्यासको भी वृद्धि होजावे तो ऋस्व का अपवाद होनेसे फिर ऋस्व नहीं होसकता तो (मिमार्जिषति) आदि प्रयोग भी सिद्ध नहीं हो सकते इसलिये यह परि० ॥

८३--अनन्त्यविकारेऽन्यसदेशस्य कार्यं भवति ॥ अ० ६।१।१३ ॥

जहां अनन्त्य और अन्य वर्ण के समीपस्थ दोनों वर्णों को जो कार्य प्राप्त हो वहां अन्य के समीपस्थ वर्णों को कार्य होना चाहिये और दूरस्थ व्यवहित पूर्ववर्णों को नहीं होवे इस से (मिमार्जिषति) में अभ्यास को वृद्धि नहीं होती तथा (अदोऽ-ञ्चति, अदमुगङ्) यहां क्तिप् प्रत्ययात्त अञ्चु धातु के परे अदम् शब्द के टि भाग को अद्रि आदेश हो कर (अदयूङ्) इस अवस्था में (अदसोऽसेर्दादु दो मः) इस सूत्र से दोनों दकारों से परे उ और दकारों को मकार प्राप्त है सो इस परिभाषा से अन्य को होता है अनन्त्य पूर्व को नहीं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८३ ॥

(देहि, धेहि) इत्यादि प्रयोगों में जो अभ्यास कालोप होता है सो अलोन्त्य-विधि मात्र के अन्य अल् का लोप होवे तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

८४--नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ अ० १।१।६५ ॥

अनर्थक शब्द को कहा कार्य अनन्त्य अल् को न हो परन्तु अभ्यास विकार को छोड़ के धातु को जो द्वित्व किया जाता है उस में एक भाग अनर्थक और दोनों भाग सार्थक होते हैं क्योंकि वहां शब्दाधिक्य होने से अर्थाधिक्य नहीं हो जाता इस से अनर्थक अभ्यास का लोप अनन्त्य अल् को न हुआ तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । तथा (अव्यक्तानुकरणस्यात इती) इस से अत् भाग को कच्चा पररूप इस परिभाषा के आश्रय से अनन्त्य अल् को नहीं होता (घटत्×इति=घटिति, पटिति) इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४ ॥

जैसे (ब्राह्मणश्च, ब्राह्मणी च ब्राह्मणी, वत्सश्च वत्सा च वत्सी) यहाँ स्त्री वाचक शब्द के साथ पुरुषवाची शब्द एकशेष रह जाता है वैसे (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहाँ भी एकशेष होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

८५-प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः ॥

जहाँ प्रधान और अप्रधान दोनों में कार्य प्राप्त है वहाँ प्रधान में कार्य होना निश्चित रहे अप्रधान में नहीं (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहाँ स्त्रीत्व और पुंस्त्व स्वार्थ में अप्रधान और स्वस्वामिसम्बन्ध में प्रधान है इसलिये एकशेष नहीं होता इत्यादि । तथा लोक में भी और किसी ने किसी से पूछा कि यह कौन जाता है उसने उत्तर दिया कि राजा यद्यपि राजा के साथ सेनादि सब थे तथापि प्रधान राजा का ग्रहण होता और दो मनुष्यों का देवदत्त नाम हो तो उन में जो प्रधान होता है उसी से व्यवहार किया जाता है ॥ ८५ ॥

स्वस्त्रादिगण में मातृ शब्द पढ़ा है उस से डीप् प्रत्यय का निषेध किया है सो जननीवाचक है और परिमाण अर्थात् तोलन करने वाली सामान्य स्त्री को भी मातृ कहते हैं सो दोनों का निषेध हो वा किसी एक का इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८६-अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्वर्तीयसी ॥

अवयव की प्रसिद्धि से समुदाय की प्रसिद्धि बलवान् होती है । अवयव की प्रवृत्ति थोड़े अंश में और समुदाय की प्रवृत्ति बहुत अंश में होती है । इस कारण जननीवाचक मातृ शब्द के रूढि होने से अवयव मान कर स्वस्त्रादिगण से डीप् का निषेध होजाता है और परिमाणकर्तृवाचक मातृ शब्द के यौगिक होने से समुदायवाची मान कर स्वस्त्रादि गण से डीप् का निषेध नहीं होता अर्थात् परिमाणवाचक मातृपुरुष होतो (माता, मातारी, मातारः) और स्त्री होतो (मात्री, मात्र्यौ, मात्र्यः) ऐसे प्रयोग होंगे इस परिभाषा के इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८६ ॥

(अचि विभाषा) इस सूत्र में गृ धातु के रेफ को लकारादेश होता है । सो जहाँ कण्ठवाची गलग्रन्थ है वहाँ भी लत्वका विकल्प होतो गर शब्दभी कण्ठवाचक होजावे सो नियम से विरुद्ध है क्योंकि गर शब्द केवल विष का वाची और गल शब्द कण्ठवाची है इन दोनों के अर्थ में लत्व के विकल्प से व्यभिचार होजाना चाहिये इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

• ८८—व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥

व्यवस्थित विभाषा से भी कार्य किये जाते हैं। व्यवस्थित विभाषा उस को कहते हैं कि जिस कार्य का विकल्प किया हो वही कार्य किसी नियतार्थवाचक शिष्टप्रयुक्त शब्द में नित्य हो जावे और किसी में होही नहीं और जहां सब प्रयोगों में उस कार्य का होना न होना दोनों भेद रहें तो उस को अव्यवस्थित विभाषा कहते हैं इस से कण्ठवाची गल शब्द में नित्य लत्व हो जाता है इस के उदाहरणों की कारिका महाभाष्य की यह है कि:—

देवत्रातो गलो ग्राह इतियोगे च सहिधिः ।

मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः ॥ १ ॥

(देवशासौ त्रातो देवत्रातः) यहाँ संज्ञावाचक त्रात शब्द में (नुदविदोन्दत्रा०) इस सूत्र से निष्ठा के तकार को नकार नित्य ही नहीं होता और क्रियावाचक में तो (त्राणम्, त्रातम्) दोनों होते हैं। गल शब्द का लिख दिया। सामान्य यौगिकवाची (गरः, गलः) दोनों ही होते हैं (विभाषा ग्रहः) इस सूत्र में ग्रह धातु से ण प्रत्यय होकर (ग्राहः) प्रयोग बनता है सो यह जलजन्तु की संज्ञा है इस में नित्य ण हो जाता है। और जहाँ नक्षत्र आदि लोकवाची में ग्रह शब्द अच् प्रत्ययान्त होगा वहाँ ण नहीं होता तथा (इति) शब्द के योग में सत् संज्ञक (शट्, शानच्) प्रत्यय विकल्प से प्राप्त भी हैं जैसे (हन्तीति पलायते, वर्षतीति धावति) यहाँ प्रथमासमानाधिकरण में व्यवस्थितविभाषा मान कर नित्य नहीं होते (गवाक्षः) यह भरोखा की संज्ञा है यहाँ गो शब्द को अवङ् आदेश विकल्प से प्राप्त है सो नित्यही हो जाता है। और जहाँ गौ के अक्ष नेत्र का नाम होगा वहाँ (गवाक्षम्, गोअक्षम्, गोऽक्षम्) ये तीन प्रयोग होजावेंगे और (संशितव्रतः) यहाँ (शाक्कोरन्यतरस्याम्) इस सूत्र से तादि कित् के परे शो धातु को विकल्प से प्राप्त इकारादेश नित्य होता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८७ ॥

(आशंसायां भूतवच्च) इस सूत्र में प्रिय पदार्थ की इच्छा संबन्धी भविष्यत्काल में भूतवत् और वर्त्तमानवत् प्रत्यय कहे हैं अर्थात् भूतकालिक जिस अर्थ में प्रकृति से जो प्रत्यय कहा है वह प्रत्यय उसी अर्थ में उसी प्रकृति से होना चाहिये सो सामान्यभूत में निष्ठा और लुङ् आदि होते हैं और अनद्यतनभूत में लङ् तथा परोक्षानद्यतनभूत में लिट् होता है इस में यह सन्देह है कि भूतवत् कहने से सामान्यभूतकालिक प्रत्ययों का अतिदेश होवे वा सामान्य विशेष दोनों का। इसलिये यह परिभाषा है ॥

८८-सामान्यातिदेशो विशेषानतिदेशः ॥

जहां सामान्य और विशेष दोनों का अतिदेश प्राप्त हो वहां विशेष का अतिदेश नहीं होता । इस से सामान्यभूत के अतिदेश में विशेषभूत में विहित लङ् लिट् का अतिदेश नहीं होता इत्यादि ॥ ८८ ॥

(सनाशंसभिन्न उः) इस सूत्र में सन् धातु वा सन् प्रत्यय का ग्रहण होना चाहिये इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८९-प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० ६ । ४ । १ ॥

जहां प्रत्यय और अप्रत्यय दोनों का एकस्वरूप होने से ग्रहण हो सकता हो वहां प्रत्यय ही का ग्रहण हो अप्रत्यय का नहीं । इसलिये सन् धातु का ग्रहण नहीं होता किन्तु सन् प्रत्ययान्त से उ प्रत्यय होता है तथा (चिचीषति, तुष्टूषति) यहां सन् के परे अजन्त को दीर्घ होता है सो (दधि सनाति, मधु सनाति) यहां सन् धातु के परे दीर्घ नहीं होवे । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८९ ॥

(विपराभ्यां जेः) इस सूत्र में वि परा पूर्वक जि धातु से आत्मनेपद कहा है सो (परा जयति सेना) यहां सेना शब्द के विशेषण परा शब्द से परे भी आत्मनेपद होना चाहिये इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९०-सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥

सहचारी और असहचारी दोनों का जहां ग्रहण हो सकता हो वहां सहचारी का ही ग्रहण हो । और असहचारी का नहीं (विजयते, पराजयते) यहां आत्मनेपद होगया और (बहुविजयति वनम्, पराजयति सेना) यहां न हुआ । क्योंकि जहां वि, परा, केवल उपसर्ग हैं वहां ही । यहां बहुवि वन का और परा, सेना का विशेषण अर्थात् दोनों अनुपसर्ग हैं वहां आत्मनेपद नहीं होता । वन और सेना के विशेषण में वि और परा शब्द उपसर्ग के सहचारी नहीं हैं इस कारण वहां आत्मनेपद नहीं हुआ तथा (पंचम्यपाङ्परिभिः) यहां कर्मप्रवचनीय अप् आङ् और परि के योग में पंचमी विभक्ति होती है सो वर्जनार्थ अप् शब्द के साहचर्य से (इच्चं परि विद्योतते विद्युत्) यहां लक्षण अर्थ में पंचमी विभक्ति नहीं होती । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९० ॥

जैसे (अहो आश्चर्यम्, उताहो इमे) इत्यादि में ओकारान्त निपात की प्रगृह्यसंज्ञा हो कर प्रकृतिभाव हो जाता है वैसे (अतिरस्त्रिरः समपद्यत, तिरोऽभवत्) यहां च्विप्रत्ययान्त लाक्षणिक ओकारान्तकी निपातसंज्ञा होकर प्रगृह्यसंज्ञा हो जावे तो प्रकृतिभाव होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

९१-लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० १।१।१५।

लक्षण नाम जो सूत्रसे कार्य होकर बना हो वह लाक्षणिक और जो स्वाभाविक है वह प्रतिपदोक्त कहा जाता है । उन लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त के बीच में जहां संदेह पड़े वहां प्रतिपदोक्त को कार्य हो और लाक्षणिक को नहीं इस से (तिरोऽभवत्) यहां लाक्षणिक ओकारान्त निपात की प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव नहीं होता । तथा (आशिषा तरति, आशिषिकः) यहां इस भाग के लाक्षणिक होने से (इससुक्तान्तात्कः) सूत्र से ठक् प्रत्यय को ककारादेश नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८१ ॥

इस परिभाषा के होने में ये दोष हैं कि जो (दाधाष्वदाप्) सूत्र से दाधा की घु संज्ञा होती है सो (देङ् रक्षणे, दोअवखण्डने, धेट् पाने) आदि की घु संज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि (डुदाञ्, डुधाञ्) प्रतिपदोक्त और देङ् आदि लाक्षणिक हैं इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९२-गामादाग्रहणेष्वविशेषः ॥ अ० १।१।२० ॥

गा, मा, दा ये तीनों जिन सूत्रों में ग्रहण किये हैं वहां सामान्य करके लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होता है इस से (देङ्) आदि लाक्षणिक धातुओं की भी घु संज्ञा हो जाती है (दैप्) धातु में पित् पढ़ने का यही प्रयोजन है कि जो दाप् की घु संज्ञा का निषेध है सो दै मात्र के पढ़नेसे प्राप्त नहीं था इसलिये पित् किया सो जो लाक्षणिक दै मात्र की घु संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी तो निषेध के लिये पित् क्यों पड़ा । इस से यह आया कि लाक्षणिक की भी घु संज्ञा होती है (घुमास्यागापाजहातिसां हलि) यहां मा करके मेङ् आदि को भी ईकारादेश होता है (मीयते, मेमीयते) इत्यादि गा करके गै आदि भी लिये जाते हैं (गीयते, जेगीयते) इङ् धातु के स्थान में जो गाङ् आदेश होता है उस का भी ग्रहण होता है जैसे (अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्) इत्यादि बहुत प्रयोजन हैं ॥ ८२ ॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ, इन तीनों की वृद्धिसंज्ञा होती है । इस में यह संदेह होता है कि जो तीनों वर्णों की एक साथ वृद्धिसंज्ञा होजावेतो (कारकः) आदि में एक साथ तीनों वर्ण वृद्धि होने चाहिये । इसलिये यह परिभाषा है ॥

९३-प्रत्ययवयवं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० १।१।१॥

वाक्य की समाप्ति प्रत्येक अवयव के साथ होती है अर्थात् जहां समुदाय को

कार्य कहा है वहां वाक्यस्य क्रिया जब प्रत्येक अवयव के साथ सम्बन्ध करलेती है तब उस को पूर्णवाक्य कहते हैं। जैसे किसी ने कहा कि (देवदत्तयज्ञदत्तविष्णु-मित्रा भोज्यन्ताम्) यद्यपि यहां यह नहीं कहा कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णु-मित्र को पृथक् २ भोजन कराओ तथापि भोजन क्रिया प्रत्येक के साथ सम्बन्ध रखती है इसी प्रकार यहां आ, ऐ, औ की वृद्धिसंज्ञा पृथक् कही है इसी से प्रत्येकवर्ण के साथ वृद्धि का सम्बन्ध पृथक् २ रहता है ऐसे ही गुण आदि संज्ञा भी प्रत्येक की होती है ॥ ८२ ॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा से यह दोष आया कि जो (हलोऽनन्तराः संयोगः) यहां प्रत्येक वर्ण को संयोगसंज्ञा रहे तो (निर्यायात्, निर्वायात्) यहां या, वा धातु को संयोगादि मान कर (वान्यस्य संयोगादेः) इस सूत्र से एकारादेश होना चाहिये इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। इसलिये यह परिभाषा है ॥

९४-समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० १।१।७ ॥

कहीं ऐसा भी होता है कि समुदाय में वाक्य की परिसमाप्ति होवे अर्थात् वाक्यस्य क्रिया का केवल समुदाय के साथ सम्बन्ध रहे। और प्रत्येक अवयव के साथ पृथक् २ सम्बन्ध न होवे जैसे राजा ने आज्ञा किई कि (गर्गाः शतन्दप्यन्ताम्) यहां गर्गों पर सौ रुपये दण्ड कहा तो उन में प्रत्येक पर सौ२ दण्ड कि या जावे वा समुदाय पर तो जैसे समुदाय पर एक दण्ड होता है वैसे ही समुदित हलों को संयोगसंज्ञा होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४ ॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ, इन तीन दीर्घ वर्णों की वृद्धिसंज्ञा की है फिर आकार तपर क्यों पड़ा क्योंकि सवर्णग्रहणपरिभाषा से अक्षरसमान्नाय का ही अण् सवर्णग्राहक है परन्तु जो अक्षरसमान्नाय में ऋस्व पढ़ते हैं उन्हीं का ग्रहण होगा दीर्घों का नहीं फिर दीर्घ से सवर्णग्रहण की प्राप्ति ही नहीं और तपरकरण का यही प्रयोजन होता है कि तपर से भिन्न कालिक सवर्णों का ग्रहण न हो। इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

९५-भेदका उदात्तादयः ॥ अ० १।१।१ ॥

जिस वर्ण के साथ जो उदात्तादिगुण लगता है वह उसको स्वभावसे भिन्न कर देता है परन्तु कालभेद नहीं होता दीर्घ उदात्त, दीर्घ अनुदात्त, दीर्घ स्वरित इन में काल का तो भेद नहीं परन्तु उच्चत्व, नीचत्व, समत्व आदिका भेद है सो जो आकार को तपर न पढ़ते तोभी अभेदकों का ग्रहण होही जाता फिर तपर से यही प्रयोजन है कि भिन्नधर्मवाले तात्कालिक उदात्तादि का भी ग्रहण होजावे इस-लिये आकार में तपरकरण सार्थक हुआ तथा अन्यतमी दीर्घवर्णों को तपरपढ़ने का यही प्रयोजन है। और लोक में भी उदात्तादिका भेद दीखपड़ता है जैसेकीई

विद्यार्थी उदात्त के स्थान में अनुदात्त बोले तो अध्यापक उसको शासन करता है कि तू अन्यथा क्यों बोलता है। सो जो उदात्तादिमें भेद नहीं होता तो शासन भी नहीं बन सकता। और यह भी दृष्टान्त है कि एकजल शीत, उष्ण और खारी आदि भेदक गुणों के होनेसे भिन्न होजाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥८५॥

इस पूर्वोक्त विषय में ऐसे भी दृष्टान्त मिलते हैं कि एक देवदत्त बालक युवा वृद्ध आदि अवस्था गुणों और मुण्ड जटिल आदि गुणों से वही बना रहता है कोई भिन्न नहीं होजाता। इस से यह भी आया कि गुण अभेदक हैं और (यासुट् परस्मैपदे प्रदात्तो ङिच्) इस सूत्र में यासुट् को उदात्त न कहते किन्तु उस को उदात्त ही पढ़ देते तो उदात्तादि गुणों के भिन्न होनेसे उदात्तके पढ़ने में अनुदात्त होही नहीं सकता फिर उदात्तग्रहण व्यर्थ हुआ इसलिये यह परिभाषा है।

९६-अभेदका गुणाः॥ अ० १ । १ । १ ॥

उदात्तादि गुण अभेदक होते हैं अर्थात् गुणों के स्वरूप को कुछ भी नहीं बदल सकते। इसीलिये (अस्थिदधि०, इत्यादि सूत्रों में उदात्त वा अनुदात्त पढ़ा है जो उदात्तादि शब्दों से उदात्त नहीं पढ़ते तो अभेदक होने से विशेष गुणोंका ज्ञान नहीं होता इस से उदात्तादि शब्दों का पढ़ना सार्थक होगया। इन गुणों के अभेदक पक्ष में दीर्घों को तपर पढ़ने का द्वितीय समाधान है (आदैच्) यहां तो आकारके तपर पढ़ने का यहो प्रयोजन है कि तकार से परे ऐ औ तपर माने जावें तो (महा ओजाः, महीजाः) यहां चार मात्रिक स्थानों के स्थान में चार मात्राओं का आदेश भी प्राप्त होता है सो नहो किन्तु द्विमात्रिक ही (ए, ऐ, ओ, औ) आदेश होवें इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं इन दोनों में गुणों का अभेदकपक्ष ही बलवान् है ॥ ८६ ॥

(सर्वादीनि सर्वनामानि) इस सूत्र में सर्वनामशब्द में णत्वनिषेध निपातन किया है सो उस को सूत्र में चरितार्थ हो जाने से लौकिकप्रयोगविषय में सर्वनाम शब्द को णत्व होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

९७-बाधकान्येव हि निपातनानि ॥ अ० १ । १।२७ ॥

जिस अप्राप्त कार्य का विधान वा प्राप्त का निषेध निपातन से करदिया हो वह सर्वथा बाधक होजाता है फिर वह वैसा ही प्रयोगकाल में भी रहेगा। इस से सर्वनाम आदि शब्दों में णत्वनिषेध आदि कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ८७॥

(स्थन्तस्यति) इस स्थन्दू धातु के प्रयोग में इट् का विकल्प अन्तरङ्ग और निषेध बहिरङ्ग है सो जो अन्तरङ्गकार्य करने में बहिरङ्ग असिद्ध माना जावे तो परस्मैपद में भी इट्का विकल्प होना चाहिये। इस सन्देह को निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९८-प्रतिषेधाश्च बलीयांसो भवन्ति ॥ अ० १ । १ । ६३ ॥

पर, नित्य और अन्तरङ्ग से भी प्रतिषेध बलवान् होते हैं इस से अन्तरङ्ग भी इष्टविकल्प को बाध के नित्य प्राप्त इष्ट का निषेध होजाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८८ ॥

(अग्रउण्) आदि प्रत्याहार सूत्रों में जो (ण् क्) आदि अनुबन्ध पड़े हैं उनका अच् के ग्रहण से ग्रहण किया जावे तो (दधि णकारोयति, जरीकरोति) इत्यादि में णकार ककार के परे इकार ईकार को यणादेश होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

९९-सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्वलीयान् ॥

सब विधियों से लोपविधि बलवान् होती है । इस से (ण्क्) आदि अनुबन्धों का प्रत्याहार की प्रवृत्ति से पहिले ही लोप होजाता है फिर अच् में णकार ककार के न रहने से (दधि णकारोयति, जरीकरोति) आदि में यणादेश नहीं होता । इत्यादि । और लोक में भी यही रीति है कि किसी का मृत्यु आजावे तो सब कामों का बाधक होजाता है । अर्थात् अदर्शन अग्रहण होता है ॥ ८९ ॥

(अर्थ प्रत्याययति स प्रत्ययः) जो अर्थ का निश्चय करावे वह प्रत्यय कहाता है इस अर्थ के न होने से केवल स्वार्थ में विहितों की प्रत्ययसंज्ञा नहीं होवे इसलिये यह परिभाषा है ॥

१००-अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति ॥ अ० ३।२।४ ॥

जिन प्रत्ययों की उत्पत्ति में कोई विशेष अर्थ नियत न किया हो वे स्वार्थ में हैं अर्थात् प्रकृत्यर्थ के सहायक और बोधक रहें । इसी से वे प्रत्यय कहावें जैसे (गुप्तिज्किदभ्यः सन्, यावादिभ्यः कन्) इत्यादि प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं (सुगुप्ते, यावकः) इत्यादि ॥ १०० ॥

(सुपिस्थः) इस सूत्र से कर्त्ता में प्रत्यय होते हैं इसलिये (आखनामुत्थानमाखूथः) इत्यादि प्रयोगों में भाव में क प्रत्यय नहीं हो सकता इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०१-योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥

जहां इष्टकार्य की सिद्धि न हो वहां योगविभाग करना चाहिये और योगविभाग कर के इष्टकार्य साधलेना अनिष्ट नहीं होने देना (सुपि) इतना पृथक् सूत्र किया तो यह अर्थ हुआ कि सुबन्त उपपद होतो आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो इस से (कच्छेन पिबति कच्छपः, कटाहपः, हाभ्यां पिबति द्विपः) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुये पीछे (स्थः) इतना पृथक् किया तो यह अर्थ हुआ कि स्था धातु से सुबन्त उपपद होतो क प्रत्यय हो यहां योगविभाग करके कर्त्ता से हटाया तो स्वार्थ भाव में आखूथ आदि प्रयोग सिद्ध होगये इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥ १०१ ॥

* लाघव गौरव का विचार सर्वत्र रहता है कि । जहां तक हो थोड़ा वचन पढ़के बहुत अर्थ निकालना परन्तु ॥

१०२-पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते ॥

पर्याय शब्दों में थोड़े बहुत होने का विचार नहीं करते कि जहां थोड़े वचन से काम चल सकता है तो उस का पर्याय अधिक अक्षर का शब्द न पढ़ना जैसे (अन्यतरस्याम्, विभाषा, वा उभयथा) इत्यादि एकार्थ शब्दों में किसी को पढ़ दिया यह नियम नहीं कि इतना अधिक क्यों पढ़ा इत्यादि ॥ १०२ ॥

जो ज्ञापकरूप परिभाषाओं से कार्य सिद्ध होते हैं वहां सर्वत्र ज्ञापकसिद्ध की प्रवृत्ति नहीं होती इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०३-ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥

जैसे अर्थवान् और अनर्थक के ग्रहण में ज्ञापकसिद्ध परिभाषा से अर्थवान् का कार्य होता है सो अन्नन्त को कहा कार्य कनिन् प्रत्यय के परे सार्थक अन् को और मन् प्रत्यय के निरर्थक अन् को भी होते हैं ॥ १०३ ॥

त्रिपादी में हुआ कार्य सपादसमाध्यायी में असिद्ध माना जाता है सो (द्रोग्धा, द्रोग्धा, द्रोटा, द्रोटा) यहां त्रिपादिस्थ (वा द्रहमुह०) सूत्र से हकार को घ और ढ आदेश होते हैं सो जो द्वित्व करने में उस घ को असिद्ध मानें तो द्वित्व के एक भाग में घ और द्वितीय भाग में ढ आदेश रहना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०४-पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने ॥ अ० ८ । १ । १ ॥

त्रिपादी का कार्य द्वित्व करने में असिद्ध न माना जावे इस से (द्रोग्धा द्रोग्धा) आदि में ढत्व नहीं होता तथा (नुन्नं नुवम्, नुत्तं नुत्तम्) यहां भी द्वित्व के एक भाग में न और एक में तकार प्राप्त है सो नही इत्यादि ॥ १०४ ॥

जैसे (गोषु स्वाम्यश्वेषु च) यहां एक स्वामी शब्द के योग में दोनों भिन्नाकृति शब्दों में एकाकृति सममी विभक्ति होती है वैसे गो शब्द में सममी और अश्व में षष्ठी विभक्ति क्यों नहीं होती इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०५-एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भवति ॥ अ० १ । ३ । ३९ ॥

जहां एक आकृति का प्रयोग चरितार्थ होता है वहां द्वितीय वा तृतीय अन्यार्थ सम्भव कारक का प्रयोग नहीं होता इस से वहां अश्व शब्द में षष्ठी नहीं

होसकती क्योंकि एकाकति सममोविभक्ति का चरितार्थ है और षष्ठी के होने से भिन्नार्थ भी सम्भव होजावे ॥ १०५ ॥

(विध्याध)इत्यादि प्रयोगोंमें परत्वसे(हलादिःशेषः)इस सूत्रसे अभ्यासके यकार का लोप होजावे तो वकारको संप्रसारण प्राप्त होता है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०६-संप्रसारणं संप्रसारणाश्रयं च कार्यं बलीयो भवति

अ० १ । १ । १७ ॥

जो संप्रसारण और संप्रसारण के आश्रय कार्य हैं वे दोनों बलवान् होते हैं इस से (हलादिः शेषः) सूत्र से प्राप्त परलोप को भी बाध के प्रथम यकार को संप्रसारण होगया तो फिर (विध्याध) आदि प्रयोग बन गये । तथा (जुहवतुः, जुहुवुः) यहां संप्रसारण और हा धातु के आकार का अजादि आर्द्धधातुक के परे लोप भी प्राप्त है परत्व से लोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारण हो जाता है और संप्रसारण हुये पीछे भी आकारलोप तथा संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप भी प्राप्त है परत्व से आकारलोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप हो जाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०६ ॥

जब शक्त नील आदि गुणवाचकशब्द अपने केवल गुणवाचकपन अर्थात् स्वतन्त्र अर्थ में पुल्लिङ्गादि किसी विशेष लिङ्ग वा एकत्वादि वचन का आश्रय करने से नहीं प्रतीत होते पुनः जब इन का द्रव्य के साथ समानाधिकरण हो तब कौन लिङ्ग वचन इन में होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०७-गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि

भवन्ति ॥ अ० १ । २ । ६४ ॥

गुणवाची शब्द जिस द्रव्य के आश्रित हैं उस द्रव्यवाचकशब्द के जो लिङ्ग वचन हैं वे ही गुणवाचक शब्द के भी हो जावे जैसे । शक्तं वस्त्रम् । शक्ता शाटी । शक्तः कम्बलः । शक्ती कंबली । शक्ताः कम्बलाः ॥ इत्यादि इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥ १०७ ॥

जैसे । कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । इत्यादि में समास हो जाता है वैसे । महत् कष्टं श्रितः । यहां भी समास होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०८-सापेक्षमसमर्थं भवति ॥ अ० २ । १ । १ ॥

जो पद विशेष्यविशेषणभाव से द्वितीय पद के साथ सम्बन्ध रखता हो वह सापेक्ष होने से समास होने में असमर्थ कहाता है उस का समास नहीं हो सकता । इस कारण महत् शब्द विशेषण के साथ कष्टसापेक्ष होने से पर के साथ समास को प्राप्त नहीं होता तथा (भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य) यहां

भार्या के साथ राजन् शब्द सापेक्ष विशेषण और देवदत्त विशेषण के साथ पुरुष सापेक्ष है इसलिये राजन् और पुरुष दोनों के परस्पर असमर्थ होने से समास नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०८ ॥

(परीयात्, अतीयात्) यहाँ परि—इयात् । दो इकार को दीर्घ एकारादेश हुआ है सो जो अन्तादिवत् मानें तो (एतेर्लिङि) सूत्र से उपसर्गों से परे इण् धातु को ऋस्व प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०९—उभयत आश्रयेनान्तादिवत् ॥ अ० ६ । १ । ८५ ॥

पूर्व पर के स्थान में जो एकादेश हुआ हो वह पूर्व पर दोनों के आश्रयकार्यकी प्राप्ति में अन्तादिवत् न हो इस से (परीयात्, अतीयात्) आदि में ऋस्व नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०८ ॥

जो टित्, कित्, मित् आगम होते हैं उन में किसी टकारादि अनुबन्ध से कोई उदात्तादि विशेष स्वर का विधान नहीं किया है वहाँ क्या स्वर होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

११०—आगमा अनुदात्ता भवन्ति ॥ अ० ३ । १ । ३ ॥

टित् आदि आगम अनुदात्त होते हैं । यद्यपि यह बात है कि अथर्वत आगम इस परिभाषा के अनुकूल जो प्रत्यय वा प्रकृति का स्वर है वही आगम का भी हो तो एक पद में दो स्वर नहीं रहते इसलिये (भविता) इत्यादि में आगम भी अनुदात्त विधान किये हैं इस में ज्ञापक यह है कि (यासुट् परस्मैपदेषूदा०) इस सूत्र में उदात्तादि करने का यही प्रयोजन है कि आगम सब अनुदात्त होते हैं इस से उदात्त प्राप्त नहीं था और जो प्रत्यय को आयुदात्त स्वर होता है वह आगम को नहीं प्राप्त था इसलिये उदात्त कहा इत्यादि ॥ ११० ॥

गुप्, तिष्, कित्, मान आदि धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय होता है उस सन् के नित्य होने से प्रथम गण में शुद्ध प्रयोग नहीं होता तो यह सन्देह होता है कि इन से आकनेपद् हो वा परस्मैपद् हो जो सन्नन्त से पहिले कोई पद विधान होता हो वह (पूर्ववत्सनः) इस सूत्र से सन्नन्त से भी होजाता सो तो नहीं होता और सन्नन्तों में कोई विशेष अनुबन्ध भी नहीं है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१११—अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समुदायं सोऽवयवो न व्यभिचरति ॥ अ० ३ । १ । ५ ॥

अवयव में किया हुआ चिह्न उस समुदाय का विशेषक होता है, कि जिस को वह अवयव फिर न छोड़ देवे । इस से यह आया कि जिन गुप् आदि धातुओं में

जो अनुदात्तेत् चिह्न किया है उन का सन् के विना कहीं पृथक् प्रयोग भी नहीं होता इसलिये गुप् आदि धातुओं का अनुदात्तेत् सन्नन्त का विशेषक हो के अर्थात् गुप् आदि सन्नन्तों को भी अनुदात्तेत् मान कर आत्मनेपद हो (जुगुप्सते, मीमांसते) यहां आत्मनेपद हो गया और जुगुप्सयति वा जुगुप्सयते मीमांसयति, वा मीमांसयते यहां णिजन्त समुदाय को णिच् छोड़ देता है इसलिये परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं तथा पण धातु अनुदात्तेत् है उस के (पणायति) प्रयोग में आय प्रत्ययान्त से परस्मैपद ही होता है क्योंकि आत्मनेपद तो व्यवहार अर्थ में और एकपक्ष में आर्द्धधातुक विषय में चरितार्थ है (शतस्य पणते) पणायाम्-चकार । पेणे । पेणाते । और आय प्रत्ययान्त समुदाय को पण छोड़ भी देता है । इसलिये आय प्रत्ययान्त से आत्मनेपद नहीं होता और लोक में भी बैल को किसी अवयव में दाग देते हैं तो वह चिह्न उस बैल का विशेषक हो जाता है कि यह अङ्कित बैल है उसी अवयव का और सब साथ के बैलों का भी विशेषक नहीं होता ॥ १११ ॥

(अपृक्त एकाल् प्रत्ययः) इस सूत्र में एकग्रहण का यही प्रयोजन है कि (दर्विः, जागृविः) यहां वि प्रत्यय की अपृक्तसंज्ञा नहीं सो जो एकग्रहण न कर-ते और अल् प्रत्यय कहते तो भी अनेकाल् में नहीं होती फिर एकग्रहण व्यर्थ हुआ इस से यह ज्ञापकसिद्ध परिभाषा निकली ॥

११२-वर्णग्रहणे जातिग्रहणम् ॥ अ० १ । २ । ४१ ॥

वर्ण के ग्रहण में वर्णजाति का ग्रहण होता है इस से एकग्रहण तो सार्थक होगया क्योंकि अल् मात्र पढ़ते तो जातिग्रहण होने से अनेक अलों का ग्रहण होजाता फिर एकग्रहण से नहीं हुआ और (धीप्सति, धिप्सति) यहां दम्भ धातु के दो हलों में भी हल्जाति मानकर (हलन्ताच्च) सूत्र से इक् समीप हल् मान के सन् प्रत्यय कित् होजाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ११२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द

सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमदयानन्दसरस्वतीस्वामिना

विरचिते वेदाङ्गप्रकाशे दशमोऽष्टाध्याय्यांनवमश्च

पारिभाषिको ग्रन्थोऽलङ्कृतिमगात् ॥

अथ साक्ष्य नियमः ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगायें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमौशन के पुस्तक अधिक भेजे जायंगे (३) डाकमहसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जायंगे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें और पता तथा आशय स्पष्ट लिखें ॥

क्र०	विवरण	पृ०	श्री०	विवरण	पृ०	श्री०
१	यजुर्वेदभाष्य	१४७	४८)	व्यवहारभाणु	१)	१)
२	यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण		३८)	भ्रमोच्छेदन	१)	१)
३	यजुर्वेदादिभाष्यभूमिका		मू०	अनुभ्रमोच्छेदन	१)	१)
४	विना जिल्द की	३)	४)	मेलालांदापुर	१)	१)
५	" जिल्द की	३॥)	१)	आर्योद्देश्यरत्नमाला	१)	१)
६	वर्णोच्चारणशिक्षा	१)	१)	गोकर्णानिधि	१)	१)
७	सन्धिविषय	१॥)	१)	स्वामीनारायणमतखण्डन		
८	नामिक	१॥)	१)	गुजराती	१)	१)
९	कारकीय	१॥)	१)	वेदविरुद्धमतखण्डन	१)	१)
१०	सामासिक	१॥)	१)	स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	१)	१)
११	स्त्रैणताक्षित	१॥)	१)	शास्त्रार्थ फीरोजशाह	१)	१)
१२	अव्ययार्थ	१)	१)	शास्त्रार्थकाशी	१)	१)
१३	सौवर	१)	१)	आर्याभिविनय	१)	१)
१४	आख्यातिक	१॥)	१)	" जिल्द की	१॥)	१)
१५	पारिभाषिक	१॥)	१)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	१)	१)
१६	धातुपाठ	१)	१)	भ्रान्तिनिवारण	१)	१)
१७	गणपाठ	१)	१)	पञ्चमहायज्ञविधि	१)	१)
१८	उणादिकोष	१)	१)	" जिल्द की	१॥)	१)
१९	निघण्टु	१)	१)	आर्यसमाज के नियमो-		
२०	अष्टाध्यायी मूल	१॥)		पनियम	१)	१)
२१	संस्कृतवाक्यप्रबोध	१)	१)	सत्यार्थप्रकाश	१॥)	१)
२२	हवनमन्त्र	१॥)	१)	संस्कारविधि	१॥)	१)

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—अजमेर

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यसप्तमभागस्य

प्रथमः खण्डः ।

धातुपाठः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

षष्ठभागस्य प्रथमः खण्डः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतसूचीपत्रेण सहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां नवमपुस्तकस्य ।

प्रथमो भागः ।

यज्ञदत्तशर्मा शास्त्री के प्रबन्ध से

वैदिकयन्त्रालय अजमेर में मुद्रित हुआ

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९४८ माघशुक्ला ७

दूसरी बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य १/०

विषयसूचीपत्रम् ॥

				पृष्ठ	से	पृष्ठ	अक्षर
भूमिका	१		२	
भवाद्यः	३		१५	
अदाद्यः	१६		१८	
जुहोत्याद्यः	१८		१९	
दिवाद्यः	१९		२१	
स्वाद्यः	२२			
तुदाद्यः	२३		२५	
इधाद्यः	२६			
तनाद्यः	२७			
क्रयाद्यः	२७		२८	
चुराद्यः	२८		३३	
कंड्वाद्यः	३४			

भूमिका ।

यह ग्रन्थ यथार्थ व्याख्यान और भूमिका के सहित आख्या-
तिक में छप चुका है परन्तु उस में धातु अर्थों के सहित
व्याख्यान के बीच २ में पढ़े हैं । इस कारण उस ग्रन्थ में
मूल का पाठ करना तथा धोष के कण्ठस्थ करना अध्येताओं
को कठिन पड़ता इसलिये यह मूल पुस्तक सूचीपत्र के
सहित पृथक् छपवाते हैं । इस में एक प्रकार के जितने धातु
हैं उन के आदि में उन की संख्या, आत्मनेपद, परस्मैपद
तथा उदात्त और अनुदात्त भी रख दिया है । उदात्त से सेट्
और अनुदात्त से अनिट् समझना चाहिये । उदात्तेत् से पर-
स्मैपद और अनुदात्तेत् से आत्मनेपद तो समझा जाता है
तथापि अति सुगमता के लिये आत्मनेपद परस्मैपद शब्द भी
रख दिये हैं । इस से पढ़ने पढ़ाने वाले लोगों को बड़ी सु-
गमता होगी । परन्तु धातुओं के रूप मूल पुस्तक पर लेना
सेट् अनिट् आदि प्रकरणों के उपयुक्त सूत्रों को देख समझ
के ही कर सकेंगे । क्योंकि कोई अनिट् धातु किसी विशेष
प्रत्यय में सेट् और कोई सेट् धातु कहीं अनिट् भी हो जाता
है । इस का सूचीपत्र भी साथ ही छपता है इस में तीन
संकेत हैं पहिला, भ्वादिगणका (भ्वा०) अदादिका (अ०) जुहोत्यादि
का (जु०) दिवादि का (दि०) स्वादि का (स्वा०) तुदादि का (तु०)
रुधादि का (रु०) तनादि का (त०) क्रयादि का (क्र्या०) चुरादि का

(चु०) और कण्वादि का (कं०) लिखा है। दूसरा, आत्मनेपद का (आ०) परस्मैपद का (प०) और उभयपद का (उ०) लिखा है। तीसरा, सेट् का (से०) वा अनिट् का (अ०) लिखा है। और नीचे के धातुओं में जहाँ पूर्व का ही संकेत है। वहाँ उस के बराबर नीचे विन्दु दिये हैं। सूची में मूल धातुओं के आदि अनुबन्ध इसलिये छोड़ दिये हैं कि उन धातुओं के आद्यक्षर में संदेह न पड़े। और जो धातु उपदेश में षकारादि और प्रयोग-काल में सकारादि होजाते हैं। उन सब को सकारादि में लिखा है। क्योंकि वे सूत्रों से विशेष कार्य होने के लिये षोपदेश हैं। दशों गण के अन्त में कण्वादिगण इसलिये छपवाया है कि यह बहुधा धातुओं से अर्थविधान के सहित सम्बन्ध रखता है। धातुपाठविषयक विशेष व्याख्यान आख्या-तिक की भूमिका और उस पुस्तक को देखने से विदित हो जावेगा ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वयैषु ।

इति भूमिका ।

श्रीमान महाराजाजी का
उद्दयपुर

{ दयानन्दसरस्वती

अथ पाणिनिमुनिकृतधातुगणऽऽरम्भः ॥

भूमतायाम् । उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः ॥

अथ तवर्गीयान्ता एधादयः कथ्यन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

एध, वृद्धौ । स्पर्द्ध, सङ्घर्षे । गाधृ, प्रतिशालिप्सयोर्ग्रन्थे च । बाधृ, विलोडने । नाधृ, नाधृ, याञ्चोपतापैश्वर्याऽऽशोःषु । दध, धारणे । स्कुदि, आप्रवणे । श्विदि, श्वैत्ये । वदि, अभिवादनस्तुत्योः । भदि, कल्याणे सुखे च । मदि, स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु । स्पर्दि, किञ्चिच्चलने । क्लिदि, परिदेवने । मुद, हर्षे । दद, दाने । ष्वद, स्वर्द, आस्वादने । उर्द, माने क्रीडायाञ्च । कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद, क्रीडायामेव । घूद, क्षरणे । ह्राद, अव्यक्ते शब्दे । ह्लादी, सुखेच । स्वाद, आस्वादने । पर्द, कुत्सिते शब्दे । यती, प्रयत्ने । युतृ, जुतृ, भासने । विथृ, वेथृ, याचने । अथि शैथिल्ये । ग्रथि, कौटिल्ये । कथ्य, श्लाघायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथाऽतादयः शुन्द्धयन्ता षट्त्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

अत, सातत्यगमने । चितो, संज्ञाने । च्युतिर्, आसेचने । अच्युतिर्, क्षरणे । मन्य, विलोडने । कुथि, पुथि, लुथि, मथि, हिंसासंक्लेशनयोः । पिधु, गत्याम् । पिधू, शास्त्रे माङ्गल्येच । खादृ, भक्षणे । खद, स्थैर्ये हिंसायाञ्च । बद, स्थैर्ये । गद, व्यक्तायां वाचि । रद, विलेखने । णद, अव्यक्ते शब्दे । अर्द, गतौ याचने च ।

नर्द, गर्द, शब्दे । तर्द, हिंसायाम् । कर्द, कुत्सिते शब्दे । खर्द, दन्तशूके ।
 अति, अदि, बन्धने । इदि, परमैश्वर्ये । त्रिदि, भिदि, अवयवे । गडि,
 वदनैकदेशे । णिदि, कुत्सायाम् । टुनदि, समृद्धौ । चदि, आह्लादने
 दोप्तौ च । तदि, चेष्टायाम् । कदि, क्रदि, क्लदि, आह्वाने रोदने च ।
 क्लिदि, परिदेवने । शुन्ध, शुद्धौ । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ कवर्गीयान्ताः ॥

शोकादयः श्लाघ्यन्ता द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

शोकृ, सेचने । लोकृ दर्शने । श्लोकृ, संघाते । ट्रेकृ, धेकृ, शब्दो-
 त्साह्वयोः । रेकृ, शंकायाम् । सेकृ, सेकृ, स्रकि, अकि, श्लकि, गत्यर्थाः ।
 शकि, शंकायाम् । अकि, लक्षणे । वकि, कौटिल्ये । मकि, मण्डने ।
 ककि, लौल्ये । कुकृ, षृकृ, आदाने । चकृ, तृप्तौ प्रतिघाते च । ककि,
 वकि, मकि, श्वकि, तकि, ढौकृ, चौकृ, ध्वक्कृ, वस्कृ, मस्कृ, टिकृ
 टीकृ, तिकृ, तोकृ, रघि, लघि, गत्यर्थाः । लघि, भोजननिवृत्तावपि ।
 अघि, वघि, मघि, गत्याक्षेपे । मघि, कैतवेच । राघृ, लाघृ, द्राघृ, धाघृ
 सामर्थ्ये । द्राघृ, आयामे च । श्लाघृ, कथने । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ फक्कादयः शिघ्रयन्ता द्विपञ्चाशत् परस्मैभाषाः ॥

फक्कृ, नोचैर्गतौ । तक्कृ, हसने । तकि, कृच्छ्रजीवने । बुक्कृ, भषणे ।
 कख, हसने । ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, धाखृ, शोषणाऽलमर्थयोः ।
 शाखृ, श्लाघृ, व्याप्तौ । उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, गख,
 णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईख, वल्गु, रगि, लगि,
 अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, शगि, अगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि,
 गत्यर्थाः । रिख, त्रख, त्रखि, शिखि, इत्यपि केचित् । त्वगि, कंपने
 च । युगि, जुगि, बुगि, वर्जने । घघ, हसने । मघि, मण्डने । लघि,
 शोषणे । शिघि, आघ्राणे । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चवर्गीयान्ताः ॥

वर्चादय ईजन्ता एकविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

वर्च, दीप्तौ । पच, सेचने सेवने च । लोच, दर्शने । शच, व्यक्तायां वाचि । श्वच, श्वचि, गतौ । कच, बन्धने । कचि, काचि, दीप्तिवन्धनयोः । मुच, मुचि, कलकने । मचि, धारणोच्छ्रायपूजनेषु । पचि, व्यक्तीकरणे । ष्टुच, प्रसादे । ऋज, गतिस्थानार्जनेपार्जनेषु । ऋजि भृजो, भर्जने । एज, भ्रेज, भ्राज, दीप्तौ । ईज, गतिकुत्सनयोः । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ शुचादयो व्रज्यन्ता द्विसप्ततिः परस्मैभाषाः ॥

शुच, शोके । कुच, शब्दे तारे । कुच, कृञ्च, गतिकौटिल्याल्पीभावयोः । लुञ्च, अपनयने । अञ्चु गतिपूजनयोः । वञ्च, चञ्चु तञ्चु, त्वञ्चु, म्रञ्चु, म्लुञ्चु, म्रुञ्चु, म्लुञ्चु, गत्यर्थाः । गुञ्चु ग्लुञ्चु, कुञ्चु, खुञ्चु स्तेयकरणे । ग्लुञ्चु, पञ्च, गतौ । गुज, गुजि, अव्यक्ते शब्दे । अर्च, पूजायाम् । म्लेच्छ, अव्यक्ते शब्दे । लच्छ, लाच्छि, लक्षणे । वाच्छि, इच्छायाम् । आच्छि, आयामे । ह्रीच्छ, लज्जायाम् । हुच्छा, कौटिल्ये । मुच्छा, मोहममुच्छ्राययोः । स्फुच्छा, विस्तृतौ । युच्छ, प्रसादे । उच्छि, उच्छे । उच्छो, विवासे । धृज, धृजि, धृज, धृजि, ध्वज ध्वजि, गतौ । कूज, अव्यक्ते शब्दे । अर्ज, पर्ज, अर्जने । गर्ज, शब्दे । तर्ज, भर्त्सने । कर्ज, व्यथने । खर्ज, पूजने च । अज, गतिपूजनयोः । तेज, पालने । खज, मन्थे । खजि, गतिवैकल्ये । एज, कंपने । टुओस्फूर्जा वज्रनिर्घोषे । क्षि, क्षये । क्षीज, अव्यक्ते शब्दे । लज, लजि, भर्जने । लाज, लाजि, भर्त्सने च । जज, जजि, युद्धे । तुज, हिंसायाम् । तुजि, पालने च । गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि, शब्दार्थाः । गज, मदे च । वज, व्रज, गतौ । इति क्षिवर्जमुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ टवर्गीयान्ताः ॥

अट्टादयः शाब्ज्यन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

अट्ट, अतिक्रमणहिंसनयोः । वेष्ट, वेष्टने । चेष्ट, चेष्टायाम् । गोष्ट, लोष्ट, संघाते । घट्ट, चलने । स्फुट, विकसने । अटि गतौ । बटि एकचर्यायाम् । मटि कटि शोके । मुटि पालने । हेठ विवाधायाम् । एठ च । हिडि, गत्यनादरयोः । हुडि संघाते । कुडि दाहे । बडि विभाजने । मडि च । भडि परिभाषणे । पिडि संघाते । मुडि मार्जने । तुडि तोडने । हुडि वरणे । चडि कोपे । शडि रुजायां संघाते च । तडि ताडने । पडि गतौ । कडि मदे । खडि मन्ये । हेडु होडु अनादरे । वाडु आप्लाव्ये । द्राडु धाडु विशरणे । शाडु श्लाघायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तैः ॥

अथ शौडादयो गड्यन्ता हाशीतिः परस्मैभाषाः ॥

शौडु, गर्वे । पौडु, बन्धने । म्लेडु, मेडु, म्रैडु, उन्मादे । कटे, वर्पावर्णयोः । चटे, इत्येके । अट, पट गतौ । रट, परिभाषणे । लट, बाल्ये । शट, रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । वट, वेष्टने । क्किट, खिट, तासे । शिट, पिट अनादरे । जट, भट, संघाते । भट, भृतौ । तट, उच्छ्राये । खट, कांक्षायाम् । णट, नृतौ । पिट, शब्दसंघातयोः । हट, दीप्तौ च । षट, अवयवे । लुट, विलोडने । चिट, परप्रैष्ये । बिट, शब्दे । विट, आक्रोशे । हिट, इत्येके । इट, क्किट, कटौ, गतौ । मडि, भूषायाम् । कुडि वैकल्ये । मुट पुट मर्दने । चुडि अल्पीभावे । मुडि खंडने । पुडि चेत्येके । रुटि, लुटि, स्तेये । रुटि लुटि इत्येके । स्फुटि, विशरणे । पट, व्यक्तायां वाचि । बट, स्थौल्ये । मट, मदनिवासयोः । कठकृच्छ्रजीवने । रट, परिभाषणे । हट, प्लुतिशठत्वयोः । बलात्कारे चेत्येके ।

• रुठलुठ, उठ, उपघाते । ऊठ, इत्येके । पिठ, हिंसासंक्लेशनयोः । शठ, कैतवे च । शुठ, प्रतिघाते । शुठीत्येके । कुठि, च । लुठि, आलस्ये प्रतीघाते च । शुठि शोषणे । रुठि लुठि गतौ । चुडु भावकरणे । अड्डा अभियोगे । कडु, कार्कश्ये । क्रीडु, विहारे । तुडु, तोडने । तूडु, इत्येके । हुडु, हूडु होडु, गतौ । रौडु, अनादरे । रोडु लोडु, उन्मादे । अडु उद्यमने । लड, विलासे । कड, मदे । कडि इत्येके । गडि, वदनै-कदेशे ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ पवर्गीयान्तास्तिपादयः पुभ्यन्ताश्चत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

तिपृ, तेपृ, पृपृ, पृपृ, क्षरणार्थाः । थिपृ, थेपृ, इत्यन्ये । तेपृ, कम्पने । ग्लेपृ, दैन्ये । टुवेपृ, कम्पने । केपृ, गेपृ, म्नेपृ च । मेपृ, रेपृ, लेपृ, गतौ । हेपृ, धेपृ च । तपूप, लज्जायाम् । कपि, चलने । रवि, अवि, लवि, शब्दे । लवि, अवसंमने च । कवृ वर्णे । क्लीवृ अधार्ष्ट्ये । क्षीवृ, मदे । शोभृ, कत्यने । चोभृ च । रेभृ, शब्दे । अभि, रभि, शब्दे । ष्टभि-संक्षिप्ति, प्रतिबन्धे । जभो, जृभि, गात्रविनामे । शल्भ, कत्यने । बल्भ, भोजने । गल्भ धार्ष्ट्ये । अस्भु, प्रमादे । षुभु, स्तम्भे । इति तिप्तिवर्जमु-दात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ गुपादयः शुभ्यन्ता एकचत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

गुप्, रक्षणे । धूप, संतापे । जप, जल्प, व्यक्तायां वाचि । जप, मानसे च । चप सांत्वने । षप, समवाये । रप, लप, व्यक्तायां वाचि । चुप, मन्दायां गतौ । तुप, तुस्प, चुप, चुंप, तुफ, तुस्फ, चुफ, चुस्फ, हिंसार्थाः । पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्व, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब, गर्ब, शर्ब, पर्व, चर्ब, गतौ । चर्ब, अदने च । कुवि, आच्छादने । लुवि, तुवि, अर्दने । चुवि, वक्त्रसंयोगे । षृभु, षृम्भु, हिंसार्थी । षिभु, षिम्भु, इत्येके । शुभ, शुम्भ, भाषणे । हिंसायामित्यन्ये । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथाऽनुनासिकांता धिण्यादयो दशात्मनेभाषाः ॥

धिणि, घुणि, घृणि, घृक्षणे । घुण, घूर्ण भ्रमणे । पण व्यवहारे स्तुतौ च । पन, च । भामा क्रोधे । क्षमूष्, सहने । कमु, कान्तौ । इति धिण्यादय उदात्ता अनुदात्ततः ॥

अथाणादयः कर्म्यंतास्त्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

अण, रण, बण, भण, मण । कण कण, व्रण, भ्रण, ध्वण, शब्दार्थाः । ओण, अपनयने । शोण, वर्णगत्योः । ओण, संघाते । श्लोण च । पैण, गतिप्रेरणश्लेषणेषु । ध्रण, बण, शब्दे । कनी, दीप्तिकान्तिगतिषु । ष्टन, वन, शब्दे । वन, पन, संभक्तौ । अम, गत्यादिषु । द्रम, हम्म, मोमृ, गतौ । मोमृ, शब्दे च । चमु, छमु, जमु, भमु, अदने । जिमु, इत्येके । क्रमु, पादविक्षेपे । इत्युदात्ता उदात्ततः ॥

अथायादयो रेवत्यन्ता सप्तत्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय, गतौ । णय, रक्षणे च । दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । गय, गतौ । उयो तन्तुमन्ताने । पूयो विशरणे दुर्गन्धे च । क्रूयो शब्दे उन्दे च । क्षमाद्यो विधूनने । स्फायो ओष्यायो, वृद्धौ । ताय, सन्तानपालनयोः । शल चलनसंवरणयोः । वल वल्ल संवरणे संचलने च । मल मल्ल धारणे । भल भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु । कल शब्दसंख्यानयोः । कल्ल अव्यक्ते शब्दे । तेवृ, देवृ, देवने । पेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ, म्लेवृ, सेवने । शेवृ, खेवृ, केवृ इत्येके । रेवृ पुनवगतौ । इत्युदात्ता अनुदात्ततः ॥

अथ मव्यादयोऽवत्यन्ताः सप्तनवतिः परस्मैभाषाः ॥

सूक्ष्म ईक्ष्म ईर्ष्य ईर्ष्याः । हय गतौ । शुच्य चुच्य अभिषवे । हर्ष्य गतिकान्तयोः । अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु । जिफला विशरणे । मोल श्मोल स्मोल क्षमोल निमेषणे । पोल प्रतिष्ठम्भे । णोल, वर्ण । शील, समाधौ । कील, बन्धने ।

• कूल आवरणे । शूल रुजायाम्, संघाते च । तूल निष्कर्षे । पूल संघाते ।
 मूल प्रतिष्ठायाम् । फल निष्पत्तौ । चुल्ल भावकरणे । फुल्ल विकसने । चिल्ल
 शैथिल्ये भावकरणे च । तिल तिल्ल गतौ । वेलृ चेलृ केलृ खेलृ क्ष्वेलृ
 वेल्ल चलने । पेलृ फेलृ खेलृ षेलृ शेलृ गतौ । खल संचलने । खल संचये
 च । गल अदने । पल गतौ । दल विशरणे । श्वल श्वल्ल आशुगमने । खोलृ
 खोर्त्त गतिप्रतिघाते । धोर्त्त गतिघातुर्य्यं । त्सर छद्मगतौ । क्मर
 हूर्छने । अभ्र बभ्र मभ्र चर गत्यर्थाः । चर भक्षणे च । षिवु निरसने । जि
 जये । जीव प्राणधारणे । पोष मोष तीव णीव स्थौल्ये । क्षिवु क्षेवु निरसने ।
 उर्वी तुर्वी युर्वी दुर्वी धुर्वी हिंसायाः । गुर्वी उद्यमने । मुर्वी बन्धने । पुर्व
 पर्व मर्व पूरणे । चर्व अदने । भर्व हिंसायाम् । कर्व खर्व गर्व
 दर्पे । अर्व शर्व षर्व हिंसायाम् । इवि व्याप्तौ । पिवि मिवि
 णिवि सेवने । सेचने चेत्येके । हिवि दिवि धिवि जिवि प्रोणनार्थाः ।
 रिवि रवि धवि गत्यर्थाः । कृवि हिंसाकरणयोश्च । मध बन्धने ।
 अथ रक्षणगतिकान्तिप्रोतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाभ्यर्थयाचनक्रियेच्छादी-
 प्त्यवाप्त्यालिंगनहिंसादानभागवृद्धिषु । इति जयतिवर्जमुदात्ता उदात्ततः ॥

धातु गतिशुद्ध्योः । उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः ॥

अथोष्मान्ताः ॥

तत्र धुक्षदयो घुष्यन्ता द्विपञ्चाशदात्मनेभाषाः ॥

धुक्ष धिक् सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु । वृक्ष वरणे । शिक् विद्योपादाने ।
 भिक् भिक्षायामलाभे लाभे च । क्लेश अव्यक्तायां वाचि बाधने च ।
 दक्ष वृद्धौ शोधार्थे च । दीक्ष मौढ्योपनयननियमव्रतादेशेषु । ईक्ष
 दर्शने । ईष गतिहिंसादर्शनेषु । भाष व्यक्तायां वाचि । वर्ष स्नेहने ।
 गेष अन्विच्छायाम् । ग्लेष इत्यन्ये ।

पेषु प्रयत्ने । जेषु शेषु एषु प्रेषु गतौ । रेषु हेषु ह्रेषु अव्यक्ते शब्दे ।
 कासु शब्दकुत्सायाम् । भासु दीप्तौ । शासु रासु शब्दे । णस कौटिल्ये ।
 भ्यस भये । आङः शसि इच्छायाम् । ग्रसु ग्लसु अदने । ईह
 चेष्टायाम् । बहि महि वृद्धौ । अहि गतौ । गर्ह गल्ह कुत्सायाम् ।
 बर्ह बल्ह प्राधान्ये । वर्ह बल्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु । प्लिह गतौ ।
 बेह जेह बाह प्रयत्ने । द्राह निद्राक्षये । निक्षेप इत्येके । काशु दीप्तौ ।
 ऊह वितर्के । गाहू विलोडने । गूहू ग्लहू ग्रहणे । घुषि कान्तिकरणे ॥
 इत्युदात्ता अनुदात्तैः ॥

अथ घुषिरादयोऽर्हन्त्यन्ता एकनवतिः परस्मैभाषाः ॥

घुषिर् अविशब्दने । अक्षू व्याप्तौ । तक्षू त्वक्षू तनूकरणे । उक्ष सेचने ।
 रक्ष पालने । णिक्ष चुंबने । तृक्ष पृक्ष णिक्ष गतौ । वक्ष रोषे । संघात
 इत्येके । मृक्ष संघाते । म्रक्ष इत्येके । तक्ष त्वचने । पक्ष परिग्रह
 इत्येके । सूक्ष आदरानादरयोः । काक्षि वाक्षि माक्षि काङ्क्षायाम् ।
 द्राक्षि धाक्षि ध्वाक्षि घोरवासिते च । क्षूष पाने । तूष तुष्टौ । पूष
 वृद्धौ । मूष स्तेये । लूष रूप भूषायाम् । शूष प्रसवे । यूष हिंसायाम् ।
 जूष च । भूष अलंकारे । ऊष रुजायाम् । ईष उंछे । कष खष शिष
 जष भष शष बष मष रूप रिष हिंसार्थाः । भष भर्त्सने । उष
 दाहे । जिषु विषु मिषु सेचने । पुष पुष्टौ । म्रिषु श्लिषु प्रुषु प्लुषु
 दाहे । पृषु बृषु मृषु सेचने । मृषु सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशन-
 योश्च । घृषु संघर्षणे । हृषु अलोके । तुस ह्रस ह्रस रस शब्दे ।
 लष श्लेषशक्तीडनयोः । घस्लृ अदने । जर्ज चर्च भर्भ परिभाषण-
 हिंसातर्जनेषु । पिसृ पेसृ गतौ । हसे हसने । णिश समाधौ । मिश
 मश शब्दे रोषकृते च । शव गतौ । शश प्लुतगतौ । शसु हिंसायाम् ।
 शंसु स्तुतौ ।

• चह परिकलकने । मह पूजायाम् । रह त्यागे । रहि गतौ । टृह टृहि बृह
बृहि बृद्वौ । बृहि शब्दे च । बृहिल् इत्येके । तुहिल् दुहिल् उहिल्
अह्ने । अह् पूजायाम् ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्युतादयः कृपपर्यन्ताः पञ्चविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

द्युत दीप्तौ । श्विता वर्णे । जिमिदा स्नेहने । जिष्विदा स्नेहन-
मोचनयोः । जिच्चिदा चेत्येके । रुच दीप्तावभिप्रोतौ च । घुट
परिवर्तने । रुट लुट लुट उपघाते । शुभ दीप्तौ । लुभ संचलने । शुभ
तुभ हिंसायाम् । संसु ध्वंसु भ्रंसु अवसंसने । ध्वंसु गतौ च । भ्रशु
भ्रंशु अधःपतने । संभु विश्वासे । वृत्तु वर्तने । वृधु वृद्वौ । शृधु शब्द-
कुत्सायाम् । स्यन्दू प्रसवणे । कृप सामर्थ्ये (वृत्) * इति द्युतादय
उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ घटादयस्त्वरत्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ॥

घट चेष्टायाम् । व्यथ भयसंचलनयोः । प्रथ प्रख्याने । प्रस
विस्तारे । म्रद मर्दने । स्रखद स्रखदने । क्षजि गतिदानयोः । दक्ष गतिहिं-
सनयोः । कृप कृपायां गतौ च । कदि कदि क्कदि वैक्लव्ये । वैक्लव्य
इत्येके । कद कद क्कद इत्यन्ये । प्रित्वरा संभ्रमे ॥ इति घटादय
उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

• अथ ज्वरादयः फणाऽन्ताः सप्तपंचाशत् परस्मैभाषाः ॥

ज्वर रोगे । गड सेचने । हेड वेष्टने । बट भट परिभाषणे । णट
नृतौ । ष्टक प्रतीघाते । चक तृप्तौ । कखे हसने । रगे शंकायाम् । लगे संगे ।
हगे हलगे षगे ष्टगे संवरणे । कगे नोच्यते । क्रियासामान्यार्थत्वात् अनेका-
र्थत्वादित्यन्ये । अक अग कुटिलायां गतौ । कण रण गतौ । चण
शण अण दाने च । शण गतावित्यन्ये । अथ कथ कथ क्कथ हिंसार्थाः ।
वन च । वन च नोच्यते ।

* संपूर्णा द्युतादिष्वन्तादिष्वेत्यर्थः ॥

ज्वल दीप्तौ । जल हल संचलने । स्मृ आध्याने । दृ भये । नृ नये ।
 आ पाके । मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा । कंपने चलिः । छदि रुर्जने ।
 जिह्वोन्मथने लडिः । मदी हर्षलेनपयोः । ध्वन शब्दे । दलि बलि
 स्थलि रणि ध्वनि अपि क्षपयश्च । स्वन अवतंसने । घटादयो मितः ।
 जनीजृषृक्तसुरंजोऽमन्ताश्च । ज्वलजलहलनमामनुपसर्गाद्वा । ग्लास्त्रा
 वनुवमां च । न कम्पमिचमाम् । शमो दर्शने । यमो परिवेषणे । खदिर-
 वपरिभ्यां च । फण गतौ । वृत्* । इति ज्वरादय उदात्ता उदात्तेतः ॥

राजृ दीप्तौ । उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः ॥

टुभ्राजृ टुभ्राशृ टुभ्लाशृ दीप्तौ । उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥

अथ स्यमादयःक्षुरत्यन्ताःसप्तविंशतिः परस्मैभाषाः ॥

स्यमु स्वन ध्वन शब्दे । षम ष्टम अवैक्ये । ज्वल दीप्तौ ।

चल कंपने । जल घातने । टल ट्वल वैक्ये । ष्टल स्थाने । हल
 विलेखने । गल गन्धे । बन्धन इत्येके । पल गतौ । बल प्राणने
 धान्यावरोधे च । पुल महत्वे । कुल संस्त्याने बन्धुषु च । शल हुल पत्नृ
 गतौ । कथे निष्पाके । पथे गतौ । मथे विलोडने । टुवम उद्गिरणे ।
 भ्रमु चलने । क्षर संचलने । क्षुर संचये । इति स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ हावनुदात्तेतौ ॥

षह मर्षणे । उदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

रमु क्रीडायाम् । अनुदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

अथ पदादयः कसन्ताः सप्त परस्मैभाषाः ॥

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । शद्लृ शातने । क्रुश आत्राने रोदने
 च । कुच संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्ठमविलेखनेषु । बुध अवगमने ।

•रुह षीजजन्मनि प्रदुर्भावे च । कस गतौ । कुचादय उदात्ता उदात्ते-
तो रुहिस्त्वनुदात्तः ॥ वृत् ॥ इति ज्वलादिर्गणः ॥

अथ हिक्कादयो गूह्यन्ताः पञ्चत्वारिंशदुभयतोभाषाः ॥

हिक्क अव्यक्ते शब्दे । अंचु गतौ याचने च । अचु इत्येके । अचि
इत्यपरे । टुयाचृ याञ्चायाम् । रेटृ परिभाषणे । चते चदे याचने ।
प्रोथृ पर्याप्तौ । मिटृ मेटृ मेधाहिंसनयोः । मेथृ संगमे च । मिथृ
मेथृ मेधाहिंसयोरित्येके । मिथृ मेथृ इत्यन्ये । णिटृ णेटृ
कुत्सासन्निकर्षयोः । शृथु मृथु उन्दने । बुधिर् बोधने । उबुंदिर
निशामने । वेणु गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्वग्रहणेषु । वेनृ इत्येके ।
खनु अवधारणे । चोवृ आदानसंवरणयोः । चावृ पूजानिशामनयोः ।
व्यय गतौ । दावृ दाने । भेवृ भये । गतावित्येके । भ्रेषृ भ्लेषृ गतौ ।
अस गतिदीप्त्यादानेषु । अपेत्येके । स्पश बाधनस्पर्शयोः । लष कान्तौ ।
चष भक्षणे । छप हिंसायाम् । भप आदानसंवरणयोः । भक्ष भ्लक्ष
अदने । प्लक्ष च । दांसृ दाने । माहृ माने । गुहू संवरणे । इति
हिक्कादय उदात्ताः स्वरितेः ॥

अथाऽजन्ताः श्रित्रादयो नयत्यन्ताः पञ्चोभयतोभाषाः ॥

न्त्रिञ् सेवायाम् । उदात्तः स्वरितेत् । भृञ् भरणे । हृञ् हरणे । धृञ्
धारणे । णीञ् प्रापणे । इति भरत्यादयोऽनुदात्ताः स्वरितेः ॥

अथ घेटादयो जयत्यन्ताः षट्चत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

घेट् पाने । ग्लै म्लै हर्षक्षये । द्यै न्यक्करणे । द्वै स्वप्ने । ध्रै तृप्तौ ।
ध्यै चिन्तायाम् । रै शब्दे । स्तयै ष्टयै शब्दसंघातयोः । खै खदने ।
क्षै क्षै क्षये । कै गै शब्दे । जै श्रै पाके । पै ओवै शोषणे । ष्टै वेष्टने ।
ष्णौ वेष्टने शोभायां चेत्येके । दैप् शोधने । पा पाने । घ्रा गन्धोपादाने ।
ध्म शब्दाग्निसंयोगयोः । ष्ठा गतिनिवृत्तौ । म्ना अभ्यासे । दाण् दाने ।
हृ कौटिल्ये । स्मृ शब्दोपतापयोः । स्मृ चिन्तायाम् । हृ संवरणे ।

सृगतौ । ऋ गतिप्रापणयोः । गृ घृ सेचने । धृ हृर्छने । सु गतौ । षु
प्रसवैश्वर्ययोः । अ अवगणे । घु ख्यैर्यै । दु द्रु गतौ । जि जि अभिभवे ।
इति धेटादयोऽनुदात्ताः ॥

अथ स्मिङ्ङादयो ङीङन्ताङितः सप्तविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

स्मिङ् ईषदुसने । गुङ् अव्यक्ते शब्दे । गाङ् गतौ । कुङ् घुङ् उङ्
छुङ् शब्दे । क्रुङ् खुङ् गुङ् ङुङ् चेत्याहुरन्ये । च्युङ् ज्युङ् जुङ्
पुङ् प्लुङ् गतौ । क्लुङ् इत्येके । रुङ् गतिरेषणयोः । धृङ् अवध्वंसने ।
मेङ् प्रणिदाने । देङ् रक्षणे । भ्र्येङ् गतौ । प्येङ् वृद्धौ । ज्येङ् पालने ।
इति स्मिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ताः ॥

पूङ् पवने । मूङ् बन्धने । ङीङ् विहायसागतौ । इति पूङ्गादय
उदात्ताः ॥

तृ प्लवणसंतरणयोः । उदात्तः परस्मैभाषः ॥

अथ गुपादयो दहस्यन्ता अष्टावात्मनेभाषाः ॥

गुप गोपने । तिज निशाने । मान पूजायाम् । बध बन्धने । गुपादयश्च-
त्वार उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

रभ रामस्ये । डुलभस् प्राप्तौ । ष्वञ्ज परिष्वङ्गे । हृद पुरीषोत्सर्गे ।
रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ ष्विदादयो मेहत्यन्ताः पञ्चदश परस्मैभाषाः ॥

अष्विदा अव्यक्ते शब्दे । उदात्तः । स्कन्दिर् गतिशोषणयोः । यभ मैथुने ।
षाम् प्रव्रत्वे शब्दे च । गम्भृ स्रप्लृ गतौ । यम उपरमे । तप सन्तापे ।
त्यज हानौ । षञ्ज संगे । दृशिर् प्रेक्षणे । दंश दशने । कृष विलेखने ।
दह भस्मीकरणे । मिह सेचने । स्कन्दादयोऽनुदात्ताः । इति ष्विदादय
उदात्तेतः ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

कित निवासे रोगापनयने च । उदात्तेत् ॥

अथ हाशुभयतोभाषौ ॥

दान खंडने । शान तेजने । स्वरितेतौ ॥

अथ पचादयो वहल्यन्ता नवोभयतोभाषाः ॥

डुपचष् पाके । पच समवाये । भज सेवायाम् । रंज रागे । शप
आक्रोशे । त्विष दीप्तौ । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । डुवप बीज-
सन्ताने छेदने च । वह प्रापणे ॥ इति पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः
सचतिस्तूदातः ।

अथैकः परस्मैभाषः ॥

वस निवासे । उदात्तेदनुदातः ।

अथ व्येज्रादयस्त्रय उभयतोभाषाः ॥

वेज् तन्तुसन्ताने । व्येज् संवरणे । ह्वेज् स्पर्द्धायां शब्दे च ।
व्येज्रादयोऽनुदात्ताः ।

अथ द्वौ परस्मैभाषौ ॥

वद व्यक्तायां वाचि । टुओश्वि गतिवृद्धयोः इत्युदात्तौ । वृत् । इति
यजादिर्गणः समाप्तः ।

इति शब्दविकरणा भ्वादयः समाप्ताः ॥



अथाऽदादिर्गणः ॥

अथ द्वौ परस्मैभाषौ ॥

अद भक्षणे । हन हिंसागत्योः । अनुदात्ता वुदात्तेतौ ॥

अथ चत्वार उभयतोभाषाः ॥

द्विष अप्रोतौ । दुह प्रपूरणे । दिह उपचये । लिह आस्वादने ।
द्विषादयोऽनुदात्ताः स्वरितेः ।

अथैक आत्मनेभाषः ॥

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अयं दर्शनेऽपि । अनुदात्तेतोऽनुदात्तेत् ॥

अथ पृथ्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ॥

ईर गतौ कंपने च । ईड स्तुतौ । ईश ऐश्वर्ये । आस उपवेशने ।
आडः शासु इच्छायाम् । वस आच्छादने । कसि गतिशासनयोः । कस
इत्येके । कश इत्यन्ये । णिसि चुंबने । णिजि शुद्धौ । शिजि अव्यक्ते शब्दे ।
पिजि वरणे । पृजोत्येके । वृजो वर्जने । पृचो संपर्चने । इतीरादय उदात्ता
अनुदात्तेतः ॥

अथ हावात्मनेभाषौ ॥

षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । शोङ् स्वप्ने । उदात्तौ ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

यु मिश्रणे अमिश्रणे च । गु स्तुतौ । रु शब्दे । टु जु शब्दे । क्षु
तेजने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैक उभयतोभाषः ॥

उर्णुप् आच्छादने । उदात्तः ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

एणु प्रसवणे । द्यु अभिगमने । पु प्रसवैश्वर्ययोः । कु शब्दे । तु गतिवृद्धिर्हिसासु । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्वाभयतोभाषौ ॥

पुप् स्तुतौ । ब्रूप् व्यक्तायां वाचि । इत्यनुदात्तौ ॥

अथैकोनविंशतिः परस्मैभाषा इङ्त्वात्मनेभाषः ॥

इण् गतौ । इङ् अध्ययने । इक् स्मरणे । षी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । या प्रापणे । वा गतिगन्धनयोः भा । दीप्तौ । ष्णा शौचे । आ पाके । द्रा कुत्सायां गतौ च । ष्सा भक्षण्ये । पा रक्षण्ये । रा दाने । ला आदाने । दाप् लवने । खया प्रकथने । प्रा पूरणे । मा माने । वच परिभाषणे । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

विद् ज्ञाने । अस भुवि । मृजृप् शुद्धौ । रुदिर् अश्रुविमोचने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैकः परस्मैभाषाः ॥

जिह्वप् शये । उदात्तेदनुदात्तः

अथ सप्त परस्मैभाषाः ॥

श्वस प्राणने । अन च । लक्ष भक्षहसनयोः । जागृ निद्राक्षये । दरिद्रा दुर्गतौ । चक्रासृ दीप्तौ । शासु अनुशिष्टौ । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः । वेवीङ् वेतिना तुल्ये । इत्युदात्तौ ।

अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

षस षस्ति स्वप्ने । षश कान्तौ । इत्युदात्ता उदात्तेत । चर्करोत्तञ्च ।
तं च ।

अथैक आत्मनेभाषः ॥

ह्नुङ् अपनयने । इत्यनुदात्तः ।

इति लुग्विकरणा अदादयः ॥

अथ जुहोत्यादिर्गणः ॥

अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

हु दानादनयोः । आदाने चेत्येके । जिभी भये । हृ लज्जायाम् ।
जुहोत्यादयो ऽनुदात्ताः ।

अथैकः परस्मैभाषः ॥

पृ पालनपूर्णयोः । उदात्तः । ह्रस्वान्तोऽयमित्येके ।

अथैक उभयतोभाषः ॥

डुभृज् धारणपोषणयोः । अनुदात्तः ॥

अथ हावात्मनेभाषौ ॥

माङ् माने शब्दे च । ओहाङ् गतौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ॥

ओहाक् त्यागे । अनुदात्तः ॥

अथ हावुभयतोभाषौ ॥

डुदाज् दाने । डुधाज् धारणपोषणयोः । अनुदात्तौ ।

अथ त्रय उभयतोभाषाः ॥

णिजिर् शौचपोषणयोः । विजिर् पृथग्भावे । विष्लू व्याप्नौ । इति
णिजादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः ॥

अथ गणान्ताः परस्मैभाषाश्छन्दसाश्चैकादश ॥

घृ चरणदीप्त्योः । हृ प्रसह्यकरणे । ऋ षृ गतौ । इति घादय-
श्चतवारोऽनुदात्ताः ॥

भस भर्त्सनदीप्त्योः । उदात्त उदात्तेत् । कि ज्ञाने । अनुदात्तः ।
तुर त्वरणे । धिष शब्दे । धन धान्ये । जन जनने । तुरादय उदात्ता
उदात्तेतः । गा स्तुतौ । अनुदात्तः । छन्दसि । वृत् । इति श्लुषिकरणा
जुहोत्यादयः ॥

अथ दिवादिर्गणः ॥

अथ दिवादयः षड्विंशतिः परस्मैभाषाः ॥

दिषु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारव्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।
षिवुं तन्तुसन्ताने । सिषु गतिशोषणयोः । शिषु निरसने । स्नुसु अदने ।
आदान इत्येके । अदर्शन इत्यपरे । स्नसु निरसने । कसु चरणदीप्त्योः ।
व्युष दाहे । प्लुष च । नृतो गात्रविक्षेपे । त्रसी उद्वेगे । कुष पूतीभावे ।
पुथ हिंसायाम् । गुध परिवेष्टने । क्षिप प्रेरणे । अनुदात्तः । पुष्प विकसने ।
तिम तीम श्रिम घ्रीम आर्द्रीभावे । व्रीड चोदने लज्जायाञ्च । इष गतौ ।
षह पुह चक्ष्यर्थे । जृष भृष वयोहानौ । इति दिवादय उदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

षूङ् प्राणिप्रसवे । दूङ् परितापे । इत्युदात्तौ ॥

अथ दीङादय एकादश आत्मनेभाषाः ॥

दीङ् चये । डीङ् विहायसा गतौ । धीङ् आधारे । मोङ् हिंसायाम् ।
रीङ् अवगणे । लीङ् श्लेषणे । व्रीङ् वृणोत्यर्थे । (वृत्) स्वादय ओदितः ।
पीङ् पाने । माङ् माने । ईङ् गतौ । प्रीङ् प्रीणने । इति दीङादय
अनुदात्ता डीङ् तूदातः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

शो तनूकरणे । छो छेदने । षो अन्तर्कर्मणि । दो अवखंडने ।
अत्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः ॥

अथ पंचदशात्मनेभाषाः ॥

जनी प्रादुर्भावे । दीपी दीप्तौ । पूरी आप्यायने । तूरी गतित्वरण-
हिंसनयोः । धूरी गूरी हिंसागत्योः । घूरी जूरी हिंसाघयोऽहान्योः । शूरी
हिंसास्तंभनयोः । चूरी दाहे । तप ऐश्वर्ये । वावृतु वरणे । क्लिश उपतापे ।
काश्रु दीप्तौ । वाश्रु शब्दे । इति तपिर्वर्जमुदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

मृष तितिक्षायाम् । ईशुचिर् पूतीभावे । उदात्तौ स्वरितेतौ ।

अथ त्रय उभयतोभाषाः ॥

णह बन्धने । रंज रागे । शप आक्रोशे । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः ।

अथैकादशात्मनेभाषाः ॥

पद् गतौ । खिद् दैन्ये । विद् सतायाम् । बुध अवगमने । युध
संप्रहारे । अनोरुध कामे । अण प्राणने । उदात्तः । मन ज्ञाने । युज
समाधौ । सृज विसर्गे । लिश अलपीभावे । इत्यनुदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ गणांता एकसप्ततिः परस्मैभाषाः ॥

राधोऽकर्मका दृष्ट्वावेव । व्यध ताडने । पुष पुष्टौ । शुष शोषणे ।
तुष प्रीतौ । दुष वैकृत्ये । श्लिष आलिंगने । शक विभाषितो मर्षणे ।
जिष्विदा गात्रप्रक्षरणे । क्रुध क्रोधे । क्षुध बुभुक्षायाम् । शुध शौचे ।
षिधु संराट्टौ । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः । रध हिंसासंराध्योः । णश्च अद-
र्शने । तृष प्रीयने । दृष हर्षणमोहनयोः । द्रुह जिघांसायाम् । मुह वै-
चित्ये । स्नुह उद्गिरणे । णिह प्रीतौ । वृत् । रधादयः । इत्युदात्ता
उदात्तेतस्तुपिदृपीत्वनुदात्तौ ।

अथ शमादयः ॥

शमु उपशमे । तमु कांक्षायाम् । दमु उपशमे । अमु तपसि
खेदे च । भमु अनवस्थाने । क्षमूष् सहने । क्लमु ग्लानौ । मदी हर्षे ।
इत्यष्टौ शमादयः । असु क्षेपणे । यसु प्रयत्ने । जसु मोक्षणे । तसु उपक्षये ।
दसु च । वसु, स्तम्भे । वशादिरित्येके । ओष्ठ्यादिर्दन्त्यांता व्युस् इत्य-
न्ये । अयकारं वुस् इत्यपरे । व्युष विभागे । प्लुष दाहे । विस प्रेरणे ।
कुस संश्लेषणे । वुस उत्सर्गे । मुस खण्डने । मसी परिणामे । समी
इत्येके । लुठ विलोडने । उच समवाये । भृशुभ्रंशु अधःपतने । वृश वरणे ।
कृश तनूकरणे । जितृष पिपासायाम् । हृष तुष्टौ । रुष रिष हिंसायाम् ।
डिप् क्षेपे । कुप क्रोधे । गुप व्याकुलत्वे । युप रुप लुप विमोहने । लुभ
गाध्यै । क्षुभ संचलने । णभ तुभं हिंसायाम् । क्लिदू आर्द्राभावे ।
जिमिदा स्नेहने । जिष्विदा स्नेहनमोचनयोः । ऋधु वृद्धौ । गृधु
अभिकांक्षायाम् । वृत् । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

इति श्यन्विकरणा दिवादयः ॥

अथ स्वादिर्गणः ॥



अथ स्वादयो दशोभयतोभाषाः ॥

षुञ् अभिषवे । पिञ् बन्धने । शिञ् निशाने । डुमिञ् प्रक्षेपणे ।
चिञ् चयने । स्तृञ् आच्छादने । कृञ् हिंसायाम् । वृञ् वरणे धुञ्
कंपने । दीर्घान्तोऽपीत्येके । इति वृञ् वर्जमनुदात्ताः ।

अथ नव परस्मैभाषाः ॥

टुट् उपतापे । हि गतौ वृट् च । पृ प्रोतौ । स्पृ प्रीतिसेवनयोः ।
प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । स्मृ इत्येके । आप्लृ व्याप्तौ । शक् शक्तौ ।
राध साध संसिद्धौ । इत्यनुदात्ताः ।

अथ हावात्मनेभाषौ ॥

अशूङ् व्याप्तौ संघाते च । ष्टिघ आस्कन्दने । इत्युदात्तावनुदात्तेतौ ।

अथागणांताः षोडश परस्मैभाषाः ॥

तिक तिग गतौ च । षघ हिंसायाम् । जिधृषा प्रागल्भ्ये । दंभु
दम्भने । ऋधु वृट् । छन्दसि । तृष प्रीणन इत्येके । अह व्याप्तौ ।
दघ घातने पालने च । चमु भक्षणे । रि चि चिरि जिरि दाश्रु दृ हिंसा-
याम् । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

वृत् । इति श्नुविकरणाः स्वादयः ॥

अथ तुदादिर्गणः ॥

अथ षडुभयतोभाषाः ॥

तुद व्यथने । गुद प्रेरणे । दिश अतिसर्जने । भस्ज पाके । क्षिप प्रेरणे । कृष विलेखने । इत्यनुदाताः स्वरितेः ।

अथैकः परस्मैभाषा ॥

ऋषो गतौ । उदात्त उदात्तेत् ।

अथ चत्वार आत्मनेभाषाः ॥

जुषो प्रीतिसेवनयोः । ओषिजी भयचलनयोः । ओलजी ओलसजी व्रीडायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेः ।

अथ वृश्चादयश्चतुर्दशोत्तरशतं परस्मैभाषाः ॥

ओव्रश्चू छेदने । व्यच व्याजीकरणे । उच्छि उच्छे । उच्छी विवासे । ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभाविषु । मिच्छ उत्क्लेशे । जर्ज चर्च भर्भ परिभाषणभर्त्सनयोः । त्वच संवरणे । ऋच स्तुतौ । उब्ज आर्जवे । उज्भ उत्सर्गे । लुभ विमोहने । रिफ कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु । रिह इत्येके । तृप • तृप तृपौ । तृफतृफेत्येके । तुप तुप तुफतुफ हिंसायाम् । टृफ टृफ उत्क्लेशे । टृफ इत्यन्ये । ऋफ ऋफ हिंसायाम् । गुफ गुंफ ग्रन्थे । उभ उंभ पूरणे । शुभ शुंभ शोभार्थे । दृभी ग्रन्थे । चृती हिंसाग्रन्थनयोः । विध विधाने । जुड गतौ । जुन इत्येके । मृड सुखने । पृड च । पूषा प्रीणने । वृषा च । मृड हिंसायाम् । तुषा कौटिल्ये । पुषा कर्मणि शुभे मुषा प्रतिज्ञाने । कुषा शब्दोपकरणयोः । शुन गतौ । द्रुषा हिंसागतिकौटिल्येषु । घुषा घूर्ण भ्रमणे । घुर शेषव्य्यदीप्तयोः । कुर शब्दे खुरछेदने ।

मुर संचेष्टने । क्षुर विलेखने । घुर भीमार्थशब्दयोः । पुर गमने । वृहू उद्यमने ।
 षृहू इत्येके । तृहू षृहू तृहू हिंसार्थाः । इषु इच्छायाम् । मिष स्पृष्टायाम् ।
 किल श्रवैत्यक्रीडनयोः । तिल स्नेहे । चिल वसने । चल विलसने । इल
 स्वप्नक्षेपणयोः विल संवरणे । बिल भेदने । शिल गह्वने । हिल भाव-
 करणे । शिल षिल उज्ज्हे । मिल श्लेषणे । लिख अक्षरविन्यासे । कुट
 कौटिल्ये । पुट संश्लेषणे । कुच संकोचने । गुज शब्दे । गुड रक्षायाम् ।
 डिप क्षेपे । कुर छेदने । स्फुट विकसने । मुट आक्षेपप्रमर्दनयोः । षुट छेदने ।
 तुट कलहकर्मणि । चुट छुट छेदने । जुड बन्धने । कड मदे । लुठ
 संश्लेषणे । लुठ इत्येके । कृड घनत्वे । कुड बाल्ये । पुड उत्सर्गे । घुट
 प्रतिघाते । तुड तोडने । युड स्फुड संवरणे । खुड छुड इत्येके । स्फुर
 स्फुरणे । स्फुर इत्येके । स्फुल संचलने । स्फुड चुड ब्रुड संवरणे । क्रुड भृड
 निमज्जने । इत्युदात्ता उदात्तैः ॥

अथैक आत्मनेभाषः ॥

गुरी उद्यमने । इत्युदातोऽनुदात्तैः ।

अथ पंच परस्मैभाषाः ॥

गू स्तवने । धू बिधूनने । गु पुरीषोत्सर्गे । धु गतिस्थैर्ययोः । धुव
 इत्येके । इत्याद्यावुदात्तावन्त्याश्चानुदात्ताः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ । कूड शब्दे कुड । शब्द इत्येके । इत्युदात्तौ ।

(वृत्) इति कुटादिगणः समाप्तः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

पृड् व्यायामे । मृड् प्राणत्यागे । इत्यनुदात्तौ ॥

अथ सप्त परस्मैभाषाः ॥

रि पि गतौ । धि धारणे । क्षि निवासगत्योः । इत्यनुदात्ताः ॥
षू प्रेरणे । कृ वित्तेपे । गृ निगरणे । इत्युदात्ताः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

दृङ् आदरे । धृङ् अनवस्थाने । इत्यनुदात्तौ ॥

अथ षोडश परस्मैभाषाः ॥

प्रच्छ ज्ञापसायाम् । वृत् । किरादयो वृतः ॥
सृज विसर्गे । टुमस्जो शुद्धौ । रुजो भङ्गे । भुजो कौटिल्ये । क्लुप
स्पर्शे । रुश् रिश् हिंसायाम् । लिश् गतौ । स्पृश् संस्पर्शने । विच्छ गतौ ।
विश् प्रवेशने । मृश् आमर्शने । गुद प्रेरणे । पद्लृ विशरणागत्यवसादनेषु ।
शद्लृ शातने । इत्यनुदात्ता उदात्तेतो विच्छिस्तूदात्तः ॥

अथ षड्भयतोभाषाः ॥

मिल संगमे । मुच्लृ मोचने । लुप्लृ छेदने । विद्लृ लाभे । लिप
उपदेहे । पिच चरणे । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतो मिलिस्तूदात्तः ॥

अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

कृतो छेदने । खिद परिघातने । पिश् अवयवे । इत्युदात्ता उदा-
त्तेतः खिदिस्त्वनुदात्तः । वृत् ।

इति शविकरणास्तुदादयः ॥

अथ रुधादिर्गणः ॥

अथ नवोभयतोभाषाः ॥

रुधिर् आवरणे । भिदिर् विदारणे । छिदिर् द्वैधीकरणे । रिचिर्
विरेचने । विचिर् पृथग्भावे । क्षुदिर् संप्रेषणे । युजिर् योगे । उच्छृ-
दिर् दीप्तिदेवनयोः । उत्तृदिर् हिंसानादरयोः । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः
छृदितृदी तूदात्तौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

कृतो क्लेदने । इत्युदात्त उदात्तेत् ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

जिह्वन्थी दीप्तौ । उदात्तोऽनुदात्तेत् ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

खिद दैन्ये । विद विचारणे । इत्यनुदात्तावनुदात्तेतौ ।

अथ द्वादश परस्मैभाषाः ॥

शिष्टृ विशेषणे । पिष्टृ संचूर्णने । भंजो आमर्दने । भुज पालना-
भ्यवहारयोः । तृह हिसि हिंसायाम् । उन्दी क्लेदने । अऽजू व्यक्तिमू-
क्षणकान्तिगतिषु । तंचू संकोचने । ओविजी भयचलनयोः । वृजी वर्जने ।
पृची संपर्के । इत्युदात्ता उदात्तेतः । आद्याश्चत्वारस्त्वनुदात्ताः । वृत् ।

इति शनभिवकरणा रुधादयः ॥

अथ तनादिर्गणः ॥

अथ सप्तोभयतोभाषाः ।

तनु विस्तारे । षणु दाने । क्षणु हिंसायाम् । विणु च । ऋणु गतौ ।
तृणु अदने । घृणु दोषौ । इत्युदात्ताः स्वरितेतः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

वनु याचने । मनु अवबोधने । इत्युदात्तावनुदात्तौ ।

अथैक उभयतोभाषः ।

डुकृञ् करणे । अनुदातः । वृत् ।

इत्युविकरणास्तनादयः ॥

अथ क्यादिर्गणः ।

अथ सप्तोभयतोभाषाः ।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च । श्रीञ् पाके । मीञ्
हिंसायाम् । पिञ् बन्धने । स्फुञ् आप्रवणे । युञ् बन्धने । इत्यनुदात्ताः ।

अथ नवोभयतोभाषाः ।

क्रूञ् शब्दे । द्रूञ् हिंसायाम् । पूञ् पवने । मूञ् बन्धने । लूञ् छेदने ।
स्तूञ् आच्छादने । कृञ् हिंसायाम् । वृञ् वरणे । धूञ् कम्पने ।
इत्युदात्ताः ।

अथ आदयो गृणात्यन्तास्त्रयोदश परस्मैभाषाः ।

शृ हिंसायाम् । पृ पालनपूरणयोः । वृ वरणे । स्तृ हिंसायाम् । भृ भरणे । भृ भर्त्सने । जृ वयोहानौ । भृ इत्येके । दृ विदारणे । धृ इत्यन्ये । नृ नये । मृ हिंसायाम् । ऋ गतौ । गृ शब्दे । इति आदय उदात्ताः ।

अथ दश परस्मैभाषाः ।

ज्या वयौहानौ । व्री वरणे । री गतिरेषणयोः । ली श्लेषणे । व्ली वरणे । प्ली गतौ । वृत् । इति ष्वादयः ॥

क्षीप् हिंसायाम् । भ्री भये । ज्ञा अवबोधने । बन्ध बन्धने । इति ज्यादयोऽनुदात्ताः ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

वृङ् संभक्तौ । इत्युदात्तः । इति ल्वादयः ।

अथ पञ्चविंशतिः परस्मैभाषाः ।

अन्य विमोचनप्रतिहर्षयोः । मन्थ विलोडने । अन्य ग्रन्थ संदर्भे । कुन्थ संश्लेषणे । मृद क्षोदे । मृड च । मृड सुखे च । गुध रोषे । कुत्र निष्कर्षे । क्षुभ सञ्चलने । णभ तुभ हिंसायाम् । क्रिषू विबाधने । अश भोजने । उधस उच्छे । ईष आभीक्ष्ये । विष विप्रयोगे । प्रुष प्लुष स्नेहनसेचन-पूरणेषु । पुष पुष्टौ । मुष स्तेये । खच भूतप्रादुर्भावे । खव इत्येके । ह्रिठ च । इति अन्यादय उदात्ता उदात्तैः ।

अथैक उभयतोभाषः ।

ग्रह उपादाने । इत्युदात्तः स्वरितेत् । वृत् ।

इति शनाविकरणाः क्रयादयः ॥

अथ चुरादिगणः ।

अथ चुरादयस्तुप्यन्तास्त्रिषष्ट्युत्तरमकशतमुदासेतः

परस्मैभाषाः ॥

चुर स्तेये । चिति स्पृत्याम् । यति सङ्कोचने । स्फुडि परिहासे ।
लज दर्शनाङ्कनयोः । कुट्टि अनृतभाषणे । लड उपसेवायाम् । मिदि स्ने-
हने । ओलडि उत्क्षेपणे । जल अपवारणे लजीत्येके । पीड अवगाहने ।
नट अवस्पन्दने । अय प्रयत्ने प्रस्थान इत्येके । वध संयमने । उज्ज
बलप्राणनयोः । पच परिग्रहे । वर्ण वर्णने । वर्ण चूर्णे प्रेरणे । प्रथ प्रख्याने ।
पृथ प्रक्षेपे । पथ इत्येके । षम्ब संबन्धने । शम्ब च । साम्ब इत्येके ।
भञ्ज अदने । कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः । पूरण इत्येके । युट्ट चुट्ट अलपीभावे ।
अट्ट पुट्ट अनादरे । लुण्ट स्तेये । शट श्वट असंस्कारगत्योः । श्वटि
इत्येके । पिज वुजि तुजि पिजि लजि लुजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु ।
पिस गतौ । पान्त्व सामप्रयोगे । श्वल्क वल्क परिभाषणे । षिण्ह स्नेहने ।
स्फिट इत्येके । स्मिट अनादरे । घिमड् अनादर इत्येके । श्लिष श्लेषणे ।
पशि गतौ । पिच्छ कुट्टने । छदि संवरणे । अण दाने । तड आघाते । खड
खडि कडि भेदने । कुडि रक्षणे । गुडि वेष्टनेच । कुठि गुठि चेत्यन्ये ।
खुडि खंडने । वटि विभाजने । वडि इत्येके । चडि कोपे । मडि
भूषायाम् हर्षे च । भडि कल्याणे । छर्द वमने । पुस्त वुस्त आदराना-
दरयोः । चुद संचोदने । नक्क धक्क नाशने । चक्क चुक्क व्यथने । चल
शौचकर्मणि । तल प्रतिष्ठायाम् । तुल उन्माने । दुल उत्क्षेपे । पुल महत्त्वे ।
चूल समुच्छ्राये । मूल रोहणे । वुल निमज्जने । कल विल क्षेपे ।

विल भेदने । तिल स्नेहने । चल भृतौ । पाल रक्षणे । तूष हिंसा-
याम् । शुल्व माने । शूर्पच । चुट छेदने । मुट संचूर्णने । पिश नाशने ।
पडि पसि नाशने । वज मार्गसंस्कारगत्योः । शुलक अतिस्पर्शने । चपि ग-
त्याम् । क्षपि क्षान्त्याम् । क्षजि कृच्छ्रजीवने । श्वर्त गत्याम् । श्वभ्र च । जप
मिच्च । जप मारणतोषणनिशामनेषु । यम च परिवेषणे । चह परिकल्कने ।
बल प्राणने । चिञ् चयने । रह त्यागे । घट चलने । मुस्त संघाते । खट्ट
संवरणे । खट्ट स्फिट्ट चुबि हिंसायाम् । पूल सङ्घाते । पूर्ण इत्येके ।
पुंस अभिवर्द्धने । टकि बन्धने । धूम कान्तिकरणे । कोट वरणे । चूर्ण
संकोचने । पूज पूजायाम् । अर्क स्तवने । शुठ आलस्ये । शुठि शोषणे ।
जुड प्रेरणे । गज मार्ज शब्दाद्यौ । मर्च्च च । धृ प्रस्रवणे । पचि विस्तार-
वचने । तिज निशाने । कृत संशब्दे । ऊर्द्वं वर्द्वं छेदनपूरणयोः । कुबि
आच्छादने । कुभिइ त्येके । लुबि तुबि अदर्शने । अर्द्दन इत्यन्ये । ह्लप
व्यक्तायां वाचि । क्लपु इत्येके । चुठि छेदने । इलप्रेरणे । म्रच्छ म्लेच्छने ।
म्लेच्छ मृच छेदने । म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि । व्रूस वर्ह हिंसायाम् ।
गर्द गर्ज शब्दे । गर्ध अभिकांक्षायाम् । गुर्द पूर्वनिर्गतने । जसि रक्षणे ।
ईड स्तुतौ । जसु हिंसायाम् । पिडि संघाते । रुष रोषे । रुड इत्येके ।
डिप क्षेपे । षुप समुच्छ्राये ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ आकुस्माद् द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

चित संचेतने । दशि दंशदर्शनयोः । दसि दस इत्येके । डप डिप
संघाते । तचि कुटुम्बधारणे । मचि गुप्तपरिभाषणे । स्पृश ग्रहणसंश्लेष-
णयोः । तर्ज भर्त्स तज्जने । वस्त गन्ध अर्दने । विष्क हिंसायाम् ।
हिष्क इत्येके । निष्क परिमाणे । लल ईप्सायाम् । कूण संकोचने ।
तूण पूरणे । भूण आशाविशंकयोः । शठ प्रलाघायाम् । यक्ष पूजायाम् ।
स्यम वितर्के ।

गूर उद्यमने । शम लक्ष आलोचने । चुट छेदने । कुठ इत्येके । कुत्स
अवक्षेपणे । गल श्रवणे । भल आभण्डने । कूट आप्रदाने । अवसादन
इत्येके । कुट्ट प्रतापने । वञ्चु प्रलम्भने । वृष शक्तिबन्धने । मद तृप्तयोगे ।
दिवु परिकूजने । गृ विज्ञाने । विद चेतनास्थाननिवासेषु । मन स्तम्भे ।
यु जुगुप्सायाम् । कुस्म नाम्नोवा ॥ इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथोभयतोभाषाः ।

चर्च अध्ययने । बुक्क भाषणे । शब्द उपसर्गादाविष्कारे च । कण
निमीलने । जभि नाशने । घृद क्षरणे । जसु ताडने । पश बन्धने ।
अम रोगे । चट स्फुट भेदने । घट संघाते । हन्त्यथश्चि । दिवु
मर्दने । अर्ज प्रतियत्ने । घुषिर् विशब्दने । आडः क्रन्दसातत्ये ।
लस शिल्पयोगे । तसि भूष अलङ्कारे । अर्ह पूजायाम् । ज्ञा नियोगे ।
भज विश्राणने । शृधु प्रसहने । यत निकारोपस्कारयोः । कल गल
आस्वादने । रथ इत्येके । रगेत्यन्ये । अञ्चु विशेषणे । लिगि चित्रीकरणे ।
मुद संसर्गे । तस धारणग्रहणवारणेषु । उधस उञ्छे । मुच प्रमोचनमोदन-
योः । वस स्नेहच्छेदापहरणेषु । चर संशये । च्यु हसनसहनयोः । भुवो
अवकलकने । मिश्रीकरण इत्येके । चिन्तन इत्यन्ये । कृपेश्च ।

आस्वदः सकर्मकात् ।

यस ग्रहणे । पुष धारणे । दल विदारणे । पट पुट लुट तुजि मिजि पिजि
भजि लघि चसि पिसि कुसि दसि कुशि घट घटि बृहि वह वल्ह
गुप धूप विच्छ चीव पुथ लोकृ लोचृ गाद कुप तर्क वृतु वृधु भाषार्याः ।
रुट लजि अजि दसि भृसि रुषि शीक नट पुटि जिवि रघि लघि
अहि रहि महि च । लडि तड नल च । पूरी आप्यायने । रुज हिंसा-
याम् । ष्वद आश्वादाने ॥

आधृषादा

युज पृच संयमने । अर्च पूजायाम् । षह मर्षणे । ईर क्षये । लो द्रवो-
 करणे । वृजो वर्जने । वृज् आवरणे । जृ वयोहानौ । जिच रिच वियोजन-
 संपर्चनयोः । शिष असर्वोपयोगे । तप दाहे । तृप तृप्तौ । छृदी सन्दी-
 पने । चृप छृप दृप सन्दीपने । दृभी भये । दृभ सन्दर्भे । छद संवरणे ।
 अथ मोक्षणे । मो गतौ । ग्रन्थ बन्धने । क्रथ हिंसायाम् । स्वरितेदित्ये-
 के । शोक आमर्षणे । चीक च । अर्द हिंसायाम् । अर्ह पूजायाम् । आङः
 षद पदार्थे । शून्य शौचकर्मणि । छद अपवारणे । स्वरितेत् । जुष परि-
 तर्कणे । धूज् कंपने । प्रोज् तर्पणे । अन्य ग्रन्थ सन्दर्भे । आप्लृ लंभने ।
 तनु अट्टोपकरणयोः । उपसर्गाच्चादैर्घ्ये । वद सन्देशवचने । स्वरितेत् ।
 वच परिभाषणे । मान पूजायाम् । भू प्राप्तावात्मनेपदी । गर्ह विनि-
 न्दने । मार्ग अन्वेषणे । कठि शोके । मृज् शौचालंकरणयोः । मृष तिति-
 क्षायाम् । धृष प्रसहने । इत्याधृषीयाः ॥

अथादन्ताः ।

कथ वाक्यप्रबन्धे । वर ईप्सायाम् । गण संख्याने । शठ श्वठ सम्य-
 गवभाषणे । पट वट ग्रन्थे । रह त्यागे । रङ्ग गतौ । स्तन गदो देव-
 शब्दे । पत गतौ । पष अनुपसर्गात् । स्वर आक्षेपे । रच प्रतियत्ने ।
 कल गतौ संख्याने च । चह परिकलकने । मह पूजायाम् । सार कृप
 अथ दौर्बल्ये । स्पृह ईप्सायाम् । भाम क्रोधे । सूच पैशुन्ये । खेट भक्षणे ।
 खोट इत्येके । क्षोट क्षेपे । गोम उपलेपने । कुमार क्रोडायाम् । शील
 उपधारणे । साम सान्त्वप्रयोगे । बेल कालोपदेशे । काल च । पल्पूल
 लवनपवनयोः । वात सुखसेवनयोः । गवेष मार्गणे । वास उपसेवायाम् ।
 निवास आच्छादने । भाज पृथक्कर्मणि । समाज प्रीतिदर्शनयोः ।

उन परिहाने । ध्वन शब्दे । कूट परितापे । कूट परिदाह इत्येके । संके-
त ग्राम कुण गुण चामन्त्रणे । कूण संकोचने । स्तेन चौर्ये ॥

आगर्वादात्मनेभाषाः ।

पद गतौ । गृह ग्रहणे । मृग अन्वेषणे । कुह विस्मापने । शूर वीर
विक्रान्तौ । स्थूल परिवृंहणे । अर्थ उपयांचायाम् । सच्च सन्तान-
क्रियायाम् । गर्व माने । इत्यागर्वायाः । सूत्र वेष्टने । विमोचन इत्यन्ये ।
मूच प्रसवणे । रुक् पाशुष्ये । पार तीर कर्मसमाप्तौ । पुट संसर्गे । धेक्
दर्शने इत्येके । कच्च शैथिल्ये कर्तृत्यप्येके ।

प्रातिपदिकाद्वात्वर्थं बहुलमिष्टवच्च ॥ तत्करोति तदाचष्टे ॥
तेनातिक्रामति ॥ धातुरुपंच ॥ कर्तृ करणाद्वात्वर्थं ॥

वष्क दर्शने । चिच्च चिचीकरणे । कदाचिद्दर्शने । अंस समाघाते
वट विभाजने । वटि लजि इत्येके । लज प्रकाशे । मिश्र सम्पर्के । सङ्ग्राम-
युद्धे । अयमनुदात्तेत् । स्तोम श्लाघायाम् । छिद्र कर्णभेदने । अन्ध दृष्ट्यु-
पधाते । उपसंहार इत्यन्ये । दण्ड दण्डनिपातने । अङ्ग पदे लक्षणे च
अङ्ग च । सुख दुःख तत्क्रियायाम् । रस आस्वादनस्नेहनयोः । व्य-
वित्तसमुत्सर्गे । रूप रूपक्रियायाम् । छेद द्वैधीकरणे । छद अपवारणे
लाभ प्रेरणे । व्रण गात्रविचूर्णने । वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु । बहु-
लमेतन्निदर्शनम् । शिङ्ङ्गाच्चिरसने । श्वेता श्वाश्वतरगालोडिताश्चरक-
णामश्वतरे तकलोपपञ्च । पुच्छादिषु धात्वर्थ इत्येव सिद्धम् ॥

इति चुरादयः ॥

अथ कण्डादयः

कण्डूज् गात्रविघर्षणे । मन्तु अपराधे । वल्गु पूजामाधुर्ययोः ।
 असु उपतापे । असू असूज् इत्येके । लेट् लोट् धौत्ये पूर्वभावे स्वप्ने च
 लेला दीप्तौ । इरस् इरज् इरज् ईर्ष्यायाम् । उषस् प्रभातभावे । वेढ्
 धैत्ये स्वप्ने च । मेधा आशुग्रहणे । कुषुभ क्षये । मगध परिवेषने नीच-
 दास्य इत्यन्ये । तन्तस् पम्पस् दुःखे । सुख दुःख तत्क्रियायाम् । सपर
 पूजायाम् । अरर आराकर्मणि । भिषज् चिकित्सायाम् । भिषाज् उप-
 सेवायाम् । इषुध शरधारणे । चरण दरण गतौ । चुरण चौर्ये । तुरण
 त्वरायाम् । भुरण धारणपोषणयोः । गद्गद वाक्स्खलने । एला केला
 खेला विलासे । वेला श्रेला इलेत्यन्ये । खेला स्खलने च । अदन्तोयमि-
 त्येके । लिट् अल्पकुत्सनयोः । लाट् जीवने । हृणीङ् रोषणे लज्जा-
 याञ्च । महीङ् पूजायाम् । रेखा श्लाघासादनयोः । दुवस् परिताप-
 परिचरणयोः । तिरस् अन्तर्द्वौ । अगद नीरोगत्वे । उरस् बलार्थे ।
 तरण गतौ । पयस् प्रसृतौ । संभूयस् प्रभूतभावे । अम्बर संवर संभरणे ।
 आकृतिगणोऽयम् ॥

इति धातुपाठे कण्डादिगणः समाप्तः ॥

इति श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिनाऽकारादिक्रमसूचीपत्रेण

सह धातुपाठो यन्त्रयितः ।

पौषवदि १० गुरुवारे

संवत् १९३९

सूचीपत्रम् ॥

अकारादयः	गणादयः	पृ० पं०	अकारादयः	गणादयः	पृ० पं०
अक ...	भ्वा० प० से०	११ २२	अण ...	दि० आ० से०	२० २३
अकि ...	,, आ० ,,	४ १०	अत ...	भ्वा० प० ,,	३ १७
अक्ष ...	,, प० ,,	१० ११	अति ...	,, ,, ,,	४ २
अग ...	,, ,, ,,	११ २२	अद ...	अ० ,, ,,	१६ ३
अगद ...	कं० ,, ,,	३४ १५	अदि ...	भ्वा० ,, ,,	४ २
अगि ...	भ्वा० ,, ,,	४ २१	अन ...	अ० ,, ,,	१७ २०
अघि ...	,, आ० ,,	४ १३	अन्ध ...	चु० उ० ,,	३३ १६
अङ्ग ...	चु० उ० ,,	३३ १७	अबि ...	भ्वा० आ० ,,	७ १२
अङ्ग ...	,, ,, ,,	३३ १७	अभ्र ...	,, प० ,,	८ ८
अचि ...	भ्वा० उ० ,,	१३ ४	अभि ...	,, आ० ,,	७ १३
अचु ...	,, उ० ,,	१३ ४	अम ...	,, प० ,,	८ ८
अज ...	,, प० ,,	५ २०	अम ...	चु० उ० ,,	३१ १०
अजि ...	चु० उ० ,,	३१ २३	अम्बर ...	कं० प० ,,	३४ १६
अञ्चु ...	भ्वा० प० ,,	५ ११	अय ...	भ्वा० आ० ,,	८ १३
अञ्चु ...	,, उ० ,,	१३ ४	अकं ...	चु० प० ,,	३० १०
अञ्चु ...	चु० ,, ,,	३१ १५	अखं ...	भ्वा० ,, ,,	५ १४
अञ्चू ...	क० प० ,,	२६ १५	अखं ...	चु० उ० ,,	३२ ९
अट ...	भ्वा० ,, ,,	६ १५	अज्जं ...	भ्वा० प० ,,	५ १८
अट ...	,, आ० ,,	६ ३	अज्जं ...	चु० उ० ,,	३१ ११
अट ...	चु० प० ,,	२८ १२	अर्धं ...	,, ,, ,,	३३ ५
अटि ...	भ्वा० आ० ,,	६ ४	अर्धं ...	भ्वा० प० ,,	३ २१
अड्ड ...	,, प० ,,	७ ४	अर्धं ...	चु० उ० ,,	३२ ८
अठ ...	,, ,, ,,	७ ६	अरर ...	कं० प० ,,	३४ ७
अण ...	भ्वा० प० ,,	८ ६	अवं ...	भ्वा० ,, ,,	८ १३

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	इकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अव ...	भा० प० से०	७	२१	इट ...	भा० प० से०	६	२०
अहं ...	" " "	११	३	इण् ...	अ० " अ०	१७	८
अहं ...	बु० उ० "	३१	१२	इदि ...	भा० " से०	४	२
अहं ...	" " "	३२	८	इन्वी ...	रु० आ० "	२६	१०
अल ...	भा० प० "	८	२४	इरज् ...	कां० " "	३४	४
अव ...	" " "	८	१६	इरज् ...	" " "	३४	४
अशु ...	क्र्या० " "	२८	१६	इरस् ...	" " "	३४	४
अशुङ् ...	स्वा० आ० "	२२	१२	इल ...	तु० " "	२४	४
अष ...	भा० उ० "	१३	१२	इल ...	बु० " "	३०	१५
अस ...	" " "	१३	१२	इला ...	कां० " "	३४	११
अस ...	अ० प० "	१७	१५	इवि ...	भा० प० "	८	१३
अंस ...	बु० उ० "	३३	१३	इष ...	दि० " "	१८	२०
असु ...	दि० प० "	२१	१२	इषु ...	तु० प० "	२४	२
असु ...	कां० " "	३४	३	इषुध ...	कां० " "	३४	८
असु ...	कां० प० "	३४	३	ई ...	अ० " अ०	१७	८
असुज् ...	" " "	३४	३	ईत्त ...	भा० आ० से०	८	२५
अह ...	स्वा० " "	२२	१६	ईख ...	" प० "	४	२०
अहि ...	भा० आ० "	१०	४	ईङ् ...	दि० आ० अ०	२०	६
अहि ...	बु० उ० "	३१	२४	ईज ...	भा० " से०	५	७
आछि ...	भा० प० "	५	१५	ईड ...	अ० आ० "	१६	१०
आमृ ...	स्वा० " अ०	२२	८	ईड ...	बु० प० "	३०	१८
आमृ ...	बु० उ० अ०	३२	११	ईर ...	अ० आ० "	१६	१०
आस ...	अ० आ० "	१६	१०	ईर ...	बु० उ० "	३२	१
इक् ...	अ० प० अ०	१७	८	ईर्य ...	भा० प० "	८	३३
इख ...	भा० " से०	४	२०	ईर्य ...	भा० " "	८	३३
इखि ...	" " "	४	२०	ईश ...	अ० आ० "	१६	१०
इगि ...	" " "	४	३२	ईष ...	भा० प० "	८	३५
इङ् ...	अ० आ० अ०	१७	८	ईष ...	" " "	१०	१८
				ईष ...	क्र्या० प० "	२८	१६

उकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	उकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
ईह ...	भ्वा० ञ्वा० से०	१०	४	ऊर्णुञ् ...	अ० उ० ,,	१७	२
उक्ष ...	,, प० ,,	१०	१२	ऊर्णु ...	चु० प० से०	३०	१३
उख ...	,, ,, ,,	४	१६	ऊष ...	भ्वा० ,, ,,	१०	१८
उखि ...	,, ,, ,,	४	१६	ऊह ...	,, ञ्वा० ,,	१०	७
उङ् ...	,, ञ्वा० ञ्वा०	१४	६	ऊ ...	भ्वा० ञ्वा० ञ्वा०	१४	१
उघ ...	दि० प० से०	२१	१७	ऊच ...	चु० प० ,,	१६	५
उक्कि ...	भ्वा० ,, ,,	५	१७	ऊचच ...	तु० ,, ,,	२४	१३
उक्कि ...	तु० ,, ,,	२३	११	ऊक्क ...	,, ,, ,,	२३	१२
उक्की ...	भ्वा० ,, ,,	५	१७	ऊज ...	भ्वा० ञ्वा० ,,	५	६
उक्की ...	तु० ,, ,,	२३	११	ऊजि ...	,, ,, ,,	५	६
उक्कुदिर् ...	ह० उ० ,,	२६	५	ऊजु ...	त० उ० ,,	२७	४
उग्ग ...	तु० प० से०	२३	१४	ऊधु ...	दि० प० ,,	२१	२२
उठ ...	भ्वा० ,, ,,	७	१	ऊधु ...	स्वा० ,, ,,	२२	१६
उठुदिर् ...	ह० उ० ,,	२६	५	ऊफ ...	तु० ,, ,,	२३	१७
उदी ...	ह० प० ,,	२६	१५	ऊम्फ ...	,, ,, ,,	२३	१७
उब्ज ...	तु० ,, ,,	२३	१४	ऊषी ...	,, ,, ,,	२३	६
उम ...	,, ,, ,,	२३	१८	ऊ ...	त्रया० ञ्वा० ,,	८	२४
उम्भ ...	,, ,, ,,	२३	१८	एजृ ...	भ्वा० ञ्वा० ,,	५	७
उह् ...	भ्वा० ञ्वा०	३	१०	एजृ ...	,, प० ,,	५	२१
उर्वी ...	,, प० ,,	६	१०	एठ ...	,, ञ्वा० ,,	६	६
उरस् ...	का० ,, ,,	३४	१५	एध ...	,, ,, ,,	३	५
उष ...	भ्वा० ,, ,,	१०	२०	एला ...	का० प० ,,	३४	१०
उषस् ...	का० ,, ,,	३४	५	एषु ...	भ्वा० ञ्वा० ,,	१०	१
उहिर ...	भ्वा० ,, ,,	११	३	ओखृ ...	,, प० ,,	४	१८
ऊठ ..	भ्वा० प० ,,	७	१	ओणृ ...	भ्वा० ,, ,,	८	७
ऊन ...	चु० उ० ,,	३३	१	ककि ..	भ्वा० ञ्वा० ,,	४	१०
ऊयी ...	भ्वा० ञ्वा०	८	१४	ककि ...	,, ,, ,,	४	११
ऊर्ज ...	चु० प० ,,	२६	८				

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
कख ...	भ्वा० य० से०	४	१८	कज्ज	भ्वा० य० से०	५	१६
कखे ...	" " "	११	२०	कर्त्त	सु० उ० "	३३	८
कगे ...	" " "	११	२१	कर्द	भ्वा० य० "	४	१
कघ ...	" ञा० "	५	४	कर्व	" " "	६	१३
कचि ...	" " "	५	४	कर्व	" " "	७	२२
कटी ...	" य० "	६	२१	कल	भ्वा० ञा० "	८	१८
कटे ...	" " "	६	१५	कल	सु० " "	२६	२४
कठ ...	" " "	६	२४	कल	" उ० "	३१	१४
कठि ...	" ञा० "	६	५	कल	" " "	३२	२०
कठि ...	सु० उ० "	३२	१३	कल्ल	भ्वा० ञा० "	८	१६
कड ...	भ्वा० य० "	७	६	कव	" " "	७	१२
कड ...	सु० " "	२४	१०	कग्र	अ० ञा० "	१६	१२
कडु ...	भ्वा० " "	७	४	कघ	भ्वा० य० "	१०	१८
कडि ...	" ञा० "	६	१०	कस	" " "	१३	१
कडि ...	" य० "	७	६	कस	अ० ञा० "	१६	१२
कडि ...	सु० " "	२६	१८	कसि	" " "	१६	११
कण्य	भ्वा० " "	११	२३	कात्ति	भ्वा० य० "	१०	१५
कण्य ...	" " "	८	६	काचि	" ञा० "	५	४
कण्य ...	सु० उ० "	३१	६	काल	सु० उ० "	३२	२४
कांडूक	का० य० "	३४	२	कासृ	भ्वा० ञा० "	१०	२
कात्थ	भ्वा० ञा० "	३	१४	काशृ	" " "	१०	७
कच	सु० उ० "	३३	८	काशृ	दि० ञा० "	१०	१५
कच	सु० उ० "	३२	१७	कि	सु० य० अ०	१६	७
कद	भ्वा० ञा० "	११	१६	किट	भ्वा० " से०	६	१०
कदि	" य० "	४	४	किट	भ्वा० " "	६	११
कदि	" ञा० "	११	१५	कित	" " "	१५	२
कनी	" य० "	८	८	किल	सु० " "	२४	३
कपि	" ञा० "	७	११	कीट	सु० " "	३०	६
कम	" ञा० "	८	३	कील	भ्वा० " "	८	२६

ककारादयः	गयादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गयादयः	पृ०	पं०
कु ...	अ० प० अ०	१७	४	कुबि ...	बु० प० से०	३०	१३
कुक ...	भ्वा० आ० से०	४	११	कुभि ...	" " "	३०	१३
कुङ् ...	" " अ०	१४	५	कुमार ...	बु० उ० "	३२	२३
कुङ् ...	तु० " "	२४	२०	कुर ...	तु० प० "	२३	२३
कुच ...	भ्वा० प० से०	५	१०	कुर ...	" " "	२४	८
कुच ...	" " "	१२	२५	कुर्द ...	भ्वा० आ० "	३	११
कुच ...	तु० " "	२४	७	कुल ...	" प० "	१२	१६
कुञ्च ...	भ्वा० " "	५	१०	कुप्रि ...	बु० उ० "	३१	२१
कुञ्च ...	" " "	५	१२	कुष ...	क्रया० प० "	२८	१५
कुट ...	तु० " "	२४	६	कुषुभ ...	क० " "	३४	५
कुट ...	बु० " "	२६	११	कुम ...	दि० " "	२१	१५
कुट ...	" आ० "	३१	३	कुमि ...	बु० उ० "	३१	२१
कुठ ...	" " "	३१	१	कुस्म ...	" आ० "	३१	६
कुठि ...	भ्वा० प० "	७	२	कुह ...	बु० उ० "	३३	४
कुठि ...	बु० " "	२६	१८	कूङ् ...	तु० आ० "	२४	२०
कुड ...	तु० " "	२४	१०	कूज ...	भ्वा० प० "	५	१८
कुडि ...	भ्वा० आ० "	६	७	कूट ...	बु० आ० "	३१	२
कुडि ...	" प० "	६	२१	कूट ...	" उ० "	३३	१
कुडि ...	बु० " "	२६	१८	कूण ...	बु० आ० "	३०	२५
कुय ...	तु० प० "	२३	२१	कूण ...	" उ० "	३३	२
कुय ...	बु० उ० "	३३	२	कूल ...	भ्वा० प० "	६	१
कुत्स ...	" आ० "	३१	२	कृञ् ...	स्वा० उ० आ०	२२	४
कुय ...	दि० प० "	१६	१७	कृञ् ...	त० उ० "	२७	८
कुम्भ ...	क्रया० " "	२८	१४	कृड ...	तु० प० से०	२४	१०
कुयि ...	भ्वा० प० "	३	१८	कृती ...	" " "	२५	१८
कुद्रि ...	बु० " "	२६	५	कृती ...	त० " "	२६	८
कुप ...	दि० " "	२१	१६	कृप ...	बु० उ० "	३२	२१
कुप ...	बु० उ० "	३१	२२	कृपू ...	भ्वा० आ० "	११	१०
कुबि ...	भ्वा० प० "	७	२३	कृपेश्च ...	बु० उ० "	३१	१८

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
कवि	भ्वा० प० से०	६	१५	कलमु	दि० प० से०	२१	११
कश	दि० ,, ,,	२१	१७	कण	भ्वा० ,, ,,	८	६
कष	भ्वा० ,, अ०	१४	२३	कथे	,, ,, ,,	१२	१७
कष	तु० उ० अ०	२३	४	कजि	,, अ० ,,	११	१४
कृ	,, प० से०	२५	३	कजि	तु० प० ,,	३०	४
कृञ्	क्या० उ० से०	२७	१७	कणु	त० उ० ,,	२७	३
कृत	तु० प० ,,	३०	१२	कपिः	भ्वा० प० ,,	१२	४
केष्ट	भ्वा० अ० ,,	७	१०	कपि	तु० ,, ,,	३०	४
केवृ	भ्वा० ,, ,,	८	२०	कमूष्	भ्वा० अ० ,,	८	३
केला	क० प० ,,	३४	१०	कर	,, प० ,,	१२	१८
केलृ	भ्वा० ,, ,,	६	४	कल	तु० ,, ,,	२६	२२
कै	,, ,, ,,	१३	२३	कमायी	भ्वा० प० ,,	८	१५
कथ	,, ,, ,,	११	२४	कलिदि	,, अ० ,,	३	६
कसु	,, ,, ,,	१२	५	कलिदि	,, प० ,,	४	५
कसु	दि० ,, ,,	१६	१६	कलिदू	दि० ,, ,,	२१	२१
कसर	भ्वा० ,, ,,	६	८	कलिश	,, अ० ,,	२०	१५
कथ	,, ,, ,,	११	२४	कलिशू	क्या० प० ,,	२८	१६
कथ	तु० उ० ,,	३२	७	क्ति	भ्वा० ,, अ०	५	२२
कद	भ्वा० अ० ,,	११	१६	क्ति	स्वा० ,, अ०	२२	१७
कदि	,, प० ,,	४	४	क्ति	तु० ,, अ०	२५	३
कदि	,, अ० ,,	११	१५	क्तिणु	त० उ० से०	२७	३
कन्द	तु० उ० ,,	३१	११	क्तिप	दि० प० अ०	१६	१८
कप	भ्वा० अ० ,,	११	१५	क्तिप	तु० उ० ,,	२३	४
कमु	,, प० ,,	८	११	क्तिवदा	भ्वा० अ० से०	११	६
कलय	,, ,, ,,	११	२४	क्तिवदा	दि० प० ,,	२१	२१
कलद	,, अ० ,,	११	१६	क्तिवृ	भ्वा० ,, ,,	६	१०
कलिदि	भ्वा० प० ,,	४	४	क्तीन्	क्या० उ० ,,	२७	१२
कलिदि	,, अ० ,,	११	१५	क्तीट्	भ्वा० प० ,,	७	४
कल्प	तु० प० ,,	३०	१४	क्लीट्	,, अ० ,,	७	१२

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	खकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
चीज ...	भ्वा० प० से०	५	२२	खट ...	भ्वा० प० से०	६	१८
चमोख ...	" " "	८	२५	खट्ट ...	सु० " "	२०	७
चीव ...	" आ० "	७	१३	खड ...	" " "	२६	१७
चीव् ...	क्रया० प० "	२८	८	खडि ...	भ्वा० आ० "	६	१०
कुस् ...	भ्वा० आ० "	१४	६	खडि ...	सु० प० "	२६	१७
कुञ्च ...	" प० "	५	१०	खद ...	भ्वा० " "	२	२०
कुड ...	" तु० "	२४	१२	खनु ...	" उ० "	१३	१०
कुध ...	दि० " ख०	२१	४	खर्ज ...	" प० "	५	१६
कुश ...	भ्वा० प० से०	१२	२४	खर्द ...	" " "	४	१
कुलु ...	भ्वा० आ० ख०	१४	७	खर्व ...	" " "	७	२२
कु ...	ख० प० से०	१६	१८	खर्व ...	" " "	६	१३
कु ...	" " "	१६	१६	खव ...	क्रया० " "	२८	१८
कुदिर ...	ह० उ० ख०	२६	४	खल ...	भ्वा० " "	६	५
कुध ...	दि० प० "	२१	४	खष ...	" " "	१०	१८
कुम ...	भ्वा० ख० से०	११	७	खादृ ...	" " "	३	१६
कुम ...	दि० प० "	२१	२०	खिट ...	" " "	६	१७
कुम ...	क्या० " "	२८	१५	खिद ...	दि० आ० ख०	२०	२२
कुर ...	भ्वा० " "	१२	१८	खिद ...	तु० प० से०	२५	१८
कुर ...	तु० " "	२३	२३	खिद ...	ह० आ० ख०	२६	१२
कूज ...	क्रया० उ० " "	२७	१६	खुजु ...	भ्वा० प० से०	५	१३
कूश ...	भ्वा० आ० "	६	२२	खुड ...	तु० " "	२४	१२
कुवु ...	" प० "	६	१०	खुडि ...	सु० " "	२६	१६
कुवु ...	" " "	६	४	खुर ...	तु० " "	२३	२३
कु ...	" " "	१३	२३	खुर्द ...	भ्वा० आ० "	३	११
कोध ...	" आ० "	८	३	खेट ...	सु० उ० "	२२	२२
कोट ...	सु० उ० "	२२	२५	खेजा ...	कं० प० "	२४	११
खच ...	क्रया० प० "	२८	१८	खेलृ ...	भ्वा० " "	६	४
खज ...	भ्वा० " "	५	२०	खेलृ ...	" " "	६	५
खजि ...	" " "	५	२१	खेवृ ...	" आ० "	८	२०

गकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	गकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
खे ...	भ्वा० प० अ०	१३	२२	गल ...	बु० आ० से०	३१	२
खोट ...	बु० उ० से०	३२	२२	गल ...	„ उ० „	३१	१४
खोर्क ...	भ्वा० प० „	६	७	गवह ...	भ्वा० आ० „	१०	५
खोल ...	„ „ „	६	७	गल्भ ...	„ „ „	७	१५
ख्या ...	अ० „ अ०	१७	१२	गवेष ...	बु० उ० „	३२	२५
खुड ...	भ्वा० आ० अ०	१४	६	गा ...	बु० प० अ०	१६	६
गज	„ प० से०	५	२४	गाड ...	भ्वा० आ० अ०	१४	५
गज ...	बु० प० „	३०	११	गाष्ट ...	„ „ से०	३	५
गजि ...	भ्वा० „ „	५	२४	गाह ...	„ „ „	१०	८
गड ...	„ „ „	११	१६	गु ...	बु० प० अ०	२४	१८
गडि ...	„ „ „	४	३	गुड ...	भ्वा० आ० „	१४	५
गडि ...	„ „ „	७	७	गुड ...	„ „ „	१४	६
गण ...	बु० उ० „	३२	१७	गुज ...	„ प० से०	५	१३
गद ...	भ्वा० प० „	३	२०	गुज ...	बु० „ „	२४	७
गदगद ...	क० „ „	३४	१०	गुजि ...	भ्वा० „ „	५	१३
गदी ...	बु० उ० „	३२	१६	गुठि ...	बु० „ „	२६	१८
गन्ध ...	„ आ० „	३०	२३	गुड ...	बु० „ „	२४	७
गम्बु ...	भ्वा० प० अ०	१४	२१	गुडि ...	बु० „ „	२६	१८
गर्ज ...	„ „ से०	५	१६	गुण ...	„ उ० „	३३	२
गर्ज ...	बु० „ „	३०	१७	गुद ...	भ्वा० आ० „	३	११
गर्द ...	भ्वा० „ „	४	१	गुध ...	दि० प० „	१६	१८
गर्द ...	बु० „ „	३०	१७	गुध ...	क्रया० „ „	२८	१५
गर्द ...	„ „ „	३०	१७	गुप ...	भ्वा० आ० „	१४	१५
गर्व ...	भ्वा० „ „	७	२२	गुप ...	दि० प० „	२१	१६
गर्व ...	„ „ „	६	१३	गुप ...	बु० उ० „	३१	२२
गर्व ...	बु० उ० „	३३	६	गुप ...	भ्वा० प० „	७	१८
गर्ह ...	भ्वा० आ० „	१०	५	गुफ ...	बु० „ „	२३	१७
गर्ह ...	बु० उ० „	३२	१३	गुम्फ ...	„ „ „	२३	१७
गल ...	भ्वा० प० से०	६	६	गुरी ...	बु० आ० „	२४	१६

गकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	घकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
गुह ...	भ्वा० आ० से०	३	११	गलह ...	भ्वा० आ० से०	१०	५
गुह ...	बु० य० ,,	३०	१७	गलहू ...	,, ,, ,,	१०	८
गुर्वी ...	भ्वा० ,, ,,	६	११	ग्राम ...	बु० उ० ,,	३३	२
गुहू ...	,, उ० ,,	१३	१५	गला ...	भ्वा० य० आ०	१२	६
गूर ...	बु० आ० ,,	३१	१	गुबु ...	,, ,, से०	५	१२
गूरी ...	दि० ,, ,,	२०	१३	ग्लुबु ...	,, ,, ,,	५	१२
गृ ...	भ्वा० ,, आ०	१४	१	ग्लुब्बु ...	,, ,, ,,	५	१३
गृज ...	,, य० से०	५	२४	ग्लेष्ट ...	,, आ० ,,	७	१०
गृजि ...	,, ,, ,,	५	२४	ग्लेष्ट ...	,, ,, ,,	८	१६
गृधु ...	दि० य० ,,	२१	२२	ग्लेष्टृ ...	,, ,, ,,	६	२६
गृह ...	बु० उ० ,,	३३	४	ग्लै ...	,, य० आ०	१३	२१
गृहू ...	भ्वा० आ० ,,	१०	८	घघ ...	,, य० से०	४	२३
गृ ...	बु० य० ,,	२५	३	घट ...	,, आ० ,,	११	१३
गृ ...	क्रया० य० ,,	२८	४	घट ...	बु० उ० ,,	३१	१०
गृ ...	बु० आ० ,,	३१	४	घट ...	,, ,, ,,	३१	२१
गेष्ट ...	भ्वा० ,, ,,	७	१०	घटि ...	,, ,, ,,	३१	२१
गेष्ट ...	,, ,, ,,	८	१६	घट्ट ...	भ्वा० आ० ,,	६	४
गेष्टृ ...	,, ,, ,,	६	२६	घट्ट ...	बु० य० ,,	३०	७
गै ...	,, य० आ०	१३	२३	घस्लृ ...	भ्वा० ,, आ०	१०	२३
गोम ...	बु० उ० से०	३२	२३	घिणि ...	,, आ० से०	८	२
गोह ...	भ्वा० आ० ,,	६	४	घुङ् ...	,, ,, आ०	१४	६
ग्रथ ...	क्रया० य० ,,	२८	१३	घुट ...	,, ,, से०	११	७
ग्रथ ...	बु० उ० ,,	३२	१०	घुट ...	बु० य० ,,	२४	११
ग्रथ ...	,, ,, ,,	३२	७	घुण ...	भ्वा० आ० ,,	८	२
ग्रथि ...	भ्वा० आ० ,,	३	१४	घुण ...	बु० य० ,,	२३	२२
ग्रस ...	बु० उ० ,,	३१	२०	घुणि ...	भ्वा० आ० ,,	८	२
ग्रसु ...	भ्वा० आ० ,,	१०	३	घुर ...	बु० य० ,,	२४	१
ग्रह ...	क्रया० उ० ,,	२८	२१	घुघि ...	भ्वा० आ० ,,	१०	८
गलसु ...	भ्वा० आ० ,,	१०	४	घुघिर् ...	,, य० ,,	१०	११

चकारादयः	गद्यादयः	पृ० पं०	चकारादयः	गद्यादयः	पृ० पं०
घुघिर् ...	सु० उ० से०	२१ ११	चमु ..	स्वा० प० से०	२२ १७
घूर्ण ..	भ्रा० आ० ,,	८ २	चय ..	भ्रा० आ० ,,	८ १३
घूर्ण ..	तु० प० ,,	२३ २२	चर ..	,, प० ,,	६ ६
घूर्णी ..	दि० आ० ,,	२० १३	चर ..	सु० उ० ,,	३१ १७
घृ ..	भ्रा० ,, आ०	१४ २	चर्करीतच ..	अ० प० ,,	१८ ३
घृ ..	सु० प० से०	१६ ५	चर्च ..	भ्रा० प० ,,	१० २४
घृणि ..	भ्रा० आ० ,,	८ २	चर्च ..	सु० ,, ,,	३१ ८
घृणु ..	त० उ० ,,	२७ ४	चर्च ..	तु० ,, ,,	२३ १३
घृषु ..	भ्रा० प० ,,	१० २२	चरण ..	कं० ,, ,,	२४ ६
घ्रा ..	,, ,, अ०	१३ २५	चर्भ ..	भ्रा० ,, ,,	७ २२
ङुङ् ..	,, आ० ,,	१४ ६	चर्व ..	,, ,, ,,	६ १२
चक ..	,, आ० से०	४ ११	चल ..	,, ,,	१२ १४
चक ..	,, प० ,,	११ २०	चल ..	तु० ,, ,,	२४ ४
चकासु ..	अ० ,, से०	१७ २१	चल ..	सु० ,, ,,	३० १
चक्षिद् ..	,, आ० ,,	१६ ८	चलिः ..	भ्रा० ,, ,,	१२ २
चक ..	सु० प० से०	२६ २१	चष ..	,, उ० ,,	१३ १३
चंचु ..	भ्रा० ,, ,,	५ ११	चह ..	,, प० ,,	१० २६
चट ..	सु० उ० ,,	३१ १०	चह ..	सु० प० ,,	३० ६
चटे ..	भ्रा० प० ,,	६ १५	चह ..	,, उ० ,,	३२ २०
चडि ..	,, आ० ,,	६ ६	चायु ..	भ्रा० उ० ,,	१३ १०
चडि ..	सु० प० ,,	२६ १६	चिज् ..	सु० प० ,,	३० ६
चण ..	भ्रा० ,, ,,	११ २३	चिज् ..	स्वा० उ० अ०	२२ ४
चते ..	,, ,, ,,	१३ ५	चिट ..	भ्रा० प० से०	६ २०
चदि ..	,, प० ,,	४ ३	चित ..	सु० आ० ,,	३० २१
चदे ..	,, उ० ,,	१३ ५	चिति ..	,, ,, ,,	२६ ४
चन ..	,, प० ,,	११ २४	चिती ..	भ्रा० प० ,,	३ १७
चप ..	,, ,, ,,	७ १६	चित्र ..	सु० उ० ,,	३३ १३
चपि ..	सु० प० से०	३० ३	चिरि ..	स्वा० प० ,,	२२ १७
चमु ..	भ्रा० ,, ,,	८ १०	चिल ..	तु० ,, ,,	२४ ३

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
चिक्क ...	भ्वा० य० से०	६	३	चेलू ..	भ्वा० य० से०	६	४
चीक ...	सु० उ० "	३२	८	चेष्ट ..	" आ० से०	६	३
चीव ...	" " "	३१	२२	च्यु ..	सु० उ० "	३१	१७
चीव्व ...	भ्वा० य० "	१३	१०	च्युस् ..	भ्वा० आ० "	१४	७
चीमू ...	" आ० "	७	१३	च्युतिर् ..	" य० "	३	१७
चुक्क ...	सु० य० "	२६	२१	छक्क ..	सु० उ० "	३२	६
चुक्क्य ...	भ्वा० " "	८	२३	छद ..	" " "	३२	६
चुट ...	सु० " "	३०	२	छद ..	" " "	३३	१
चुट ...	तु० " "	२४	६	छदिः ..	भ्वा० य० "	१२	३
चुट्ट ...	सु० " "	२६	११	छदि ..	सु० " "	२६	१७
चुठि ...	" " "	३०	१५	छदि ..	भ्वा० " "	८	१०
चुड ...	तु० " "	२४	१३	छमु ..	सु० " "	२६	२०
चुडि ...	भ्वा० " "	६	२२	छर्द ..	भ्वा० उ० "	१३	१३
चुड्ड ...	" " "	७	३	छघ ..	तु० " आ०	२६	३
चुद ...	सु० " "	२६	२१	छिदिर् ..	सु० " से०	३३	१६
चुप ...	भ्वा० " "	७	२०	छिद्र ..	तु० य० "	२४	६
चुत्रि ...	" " "	७	२३	छुट ..	" " "	२४	१२
चुर ...	सु० " "	२६	४	छुड ..	" " आ०	२५	६
चुरण ...	कं० " "	३४	६	छुप ..	तु० उ० से०	२६	५
चुवि ...	सु० " "	३०	८	छुदिर् ..	सु० " "	३२	५
चुल ...	" " "	२६	२३	छुदी ..	" " "	३२	५
चुल्ल ...	भ्वा० " "	६	२	छुप ..	" " "	३३	१६
चूरी ...	दि० आ० "	२०	१४	छो ..	दि० य० आ०	२०	६
चूर्ण ...	सु० य० "	२६	६	जक्ष ..	आ० " से०	१७	२०
चूर्ण ...	" " "	३०	१०	जज ...	भ्वा० " "	५	२३
चूर्ण ...	भ्वा० य० "	१०	१६	जजि ...	" " "	५	२३
चूती ...	तु० " "	२३	१८	जट ...	" " "	६	१७
चूप ...	सु० " "	३२	५	जन ...	जु० " "	१६	८

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अनी ...	भ्वा० ष० से०	१२	५	जुल ...	सु० " से०	३०	११
अनी ...	दि० षा० "	२०	१२	जुतु ...	भ्वा० षा० "	३	१३
अय ...	भ्वा० ष० "	७	१८	जुन ...	तु० ष० "	२३	१६
अय ...	" " "	७	१६	जुघ ...	सु० उ० "	३२	१०
अमि ...	सु० उ० "	३१	६	जुघी ...	तु० षा० "	२३	८
अमी ...	भ्वा० षा० "	७	१४	जूरी ...	दि० " "	२०	१३
अमु ...	" ष० "	८	११	जूघ ...	भ्वा० ष० "	१०	१७
अञ ...	" " "	१०	२३	जूभि ...	" षा० "	७	१४
अर्ज ...	तु० " "	२३	१३	जू ...	क्या० ष० "	२८	३
अल ...	सु० " "	२६	६	जू ...	सु० उ० "	३२	३
अल ...	भ्वा० " "	१२	१४	जूघ ...	भ्वा० ष० "	१२	५
अरय ...	" " "	७	१८	जूघ ...	दि० " "	१६	२०
अव ...	" " "	१०	१६	जेष्ट ...	भ्वा० षा० "	१०	६
असि ...	सु० " "	३०	१७	जेष्ट ...	" " "	१०	१
असु ...	" " "	३०	१८	जे ...	" ष० षा०	१३	२३
असु ...	" उ० "	३१	६	ज्ञप ...	सु० " से०	३०	५
असु ...	दि० ष० "	२१	१२	ज्वर ...	भ्वा० " "	११	१६
अगृ ...	षा० " "	१७	२०	ज्वल ...	" " "	१२	५
जि ...	भ्वा० " षा०	६	६	ज्वल ...	" " "	१२	१
जि ...	" षा० "	१४	३	ज्वल ...	" " "	१२	१३
जिषि ...	भ्वा० ष० "	६	१५	ज्ञा ...	" " षा०	१२	२
जिरि ...	स्वा० " "	२२	१७	ज्ञा ...	क्या० " "	२८	८
जिषु ...	भ्वा० " "	१०	२०	ज्ञा ...	सु० उ० "	३१	१३
जीव ...	" " "	६	६	ज्या ...	क्या० ष० "	२८	६
जुवु ...	" " षा०	१४	७	जि ...	भ्वा० षा० "	१४	३
जुगि ...	" " से०	४	२३	जि ...	सु० उ० से०	३२	४
जुवु ...	तु० " "	२३	१६	ज्यु ...	भ्वा० ष० षा०	१४	७
जुवु ...	तु० ष० से०	२४	६	भट ...	" ष० से०	६	१७
				भमु ...	" " "	८	११

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अर्भा ...	भ्वा० प० से०	१०	२४	गभ	दि० प० से०	२१	२०
अर्भा ...	पृ० ,, ,,	२३	१३	गभ	भ्वा० ,, अ०	१४	२१
भाष	भ्वा० ,, ,,	१०	१६	गथ	भ्वा० आ० से०	८	१३
भाष	,, उ० ,,	१३	१३	गथ	,, ,, ,,	८	१३
भृ	क्या० प० ,,	२८	३	गल	,, ,, ,,	१२	१५
भृष	दि० ,, ,,	१६	२०	गश	दि० प० ,,	२१	६
टकि	पु० ,, ,,	३०	६	गम	भ्वा० आ० ,,	१०	३
टल	भ्वा० ,, ,,	१२	१४	गह	दि० उ० अ०	२०	२०
टिक्त	,, आ० ,,	४	१३	गासु	भ्वा० आ० से०	१०	२
टीक्त	,, ,, ,,	४	१२	गित	,, प० ,,	१०	१२
टूल	भ्वा० प० ,,	१२	१४	गिजि	अ० आ० ,,	१६	१२
उप	पु० आ० ,,	३०	२१	गिजिर्	जु० उ० अ०	१६	२
डिप	,, ,, ,,	३०	२२	गिदि	भ्वा० प० से०	४	३
डिप	,, प० ,,	३०	१६	गिट	,, उ० ,,	१३	७
डिप	पु० ,, ,,	२४	८	गिदि	,, प० ,,	६	१४
डिप	दि० ,, ,,	२१	१६	गिल	पु० ,, ,,	२४	५
हीड	भ्वा० आ० ,,	१४	११	गिश	भ्वा० ,, ,,	१०	२५
हीड	दि० ,, ,,	२०	४	गिसि	अ० आ० ,,	१६	१२
ढौक	भ्वा० ,, ,,	४	१२	गीज्	भ्वा० उ० अ०	१३	१८
एक्ष	,, प० ,,	१०	१२	गीत्र	भ्वा० प० से०	६	१०
खल	,, ,, ,,	४	२१	गील	,, ,, ,,	८	२६
खलि	,, ,, ,,	४	२१	गु	अ० ,, से०	१६	१८
खट	,, ,, ,,	६	१८	गुद	पु० उ० अ०	२३	३
खट	,, ,, ,,	११	२०	गुद	,, प० ,,	२५	१०
खद्	,, ,, ,,	३	२१	गू	,, ,, से०	२४	१८
खद्	पु० उ० ,,	३१	२२	गेद्	भ्वा० उ० ,,	१३	७
गभ	क्या० प० से०	२८	१५	गेषु	,, अ० ,,	१०	१
गभ	भ्वा० आ० ,,	११	८	तक	,, प० ,,	४	१७
				तकि	,, ,, ,,	४	१७

तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
तच्च ...	भ्वा० ष० से०	१०	१४	तिग ...	स्वा० ष० से०	२२	१५
तच् ...	” ” ”	१०	११	तिज ...	भ्वा० ष्वा० ”	१४	१५
तगि ...	” ” ”	४	२२	तिष ...	चु० ष० ”	३०	१२
तञ्चु ...	” ” ”	५	१२	तिष्ट ...	भ्वा० ष्वा० ष्वा०	७	८
तञ्चु ...	ख० ” ”	२६	१६	तिम ...	दि० ष० से०	१८	१८
तट ...	भ्वा० ” ”	६	१८	तिरस् ...	कं० ” ”	३४	१४
तड ...	चु० उ० ”	३१	२४	तिज ...	भ्वा० ” ”	८	३
तड ...	” ष० ”	२८	१७	तिज ...	तु० ” ”	२४	३
तडि ...	भ्वा० ष्वा० ”	६	८	तिज ...	चु० ” ”	२८	२४
तधि ...	चु० ” ”	३०	२२	तिक्ल ...	भ्वा० ” ”	८	४
तनु ...	त० उ० ”	२७	३	तीक ...	” ष्वा० ”	४	१३
तनु ...	चु० ” ”	३२	११	तीम ...	दि० ष० ”	१८	१८
तन्तस् ...	कं० ष० ”	३४	६	तीर ...	चु० उ० ”	३३	७
तग ...	दि० ष्वा० ष्वा०	२०	१४	तीव ...	भ्वा० ष० ”	८	१०
तप ...	भ्वा० ष० ”	१४	२२	तु ...	ष्वा० ” ”	१७	५
तप ...	चु० उ० से०	३२	५	तुज ...	भ्वा० ” ”	५	२३
तमु ...	दि० ष० ”	२१	१०	तुजि ...	” ” ”	५	२३
तय ...	भ्वा० ष्वा० ”	८	१३	तुजि ...	चु० ” ”	२८	१३
तर्क ...	चु० उ० ”	३१	२३	तुजि ...	” उ० ”	३१	२०
तर्ज ...	भ्वा० ष० ”	५	१८	तुट ...	तु० ष० ”	२४	८
तर्ज ...	चु० ष्वा० ”	३०	२३	तुड ...	” ” ”	२४	११
तर्द ...	भ्वा० ष० ”	४	१	तुडि ...	भ्वा० ष्वा० ”	६	८
तरय ...	कं० ” ”	३४	१५	तुडृ ...	” ष० ”	७	४
तज ...	चु० ” ”	२८	२२	तुण ...	तु० ” ”	२३	२०
तसि ...	” उ० ”	३१	१२	तुद ...	” उ० ष्वा०	२३	३
तसु ...	दि० ष० ”	२१	१३	तुप ...	भ्वा० ष० से०	७	२०
ताय ...	भ्वा० ष्वा० ”	८	१६	तुम्प ...	” ” ”	७	२०
तिक ...	स्वा० ष० ”	२२	१५	तुप ...	तु० ” ”	२३	१६
तिक् ...	भ्वा० ष्वा० ”	४	१२	तुम्प ...	” ” ”	३२	१६

तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
तक ...	भ्वा० य० से०	७	२०	तम्भ ...	तु० य० से०	२३	१५
तम्भ ...	" " "	७	२१	तृक ...	" " "	२३	१६
तृक ...	त० " "	२३	१६	तृम्भ ...	" " "	२३	१६
तृम्भ ...	" " "	२३	१६	तृप ...	दि० " "	२१	१८
तृवि ...	चु० " "	३०	१४	तृह ...	तु० " "	२६	१५
तृवि ...	भ्वा० " "	७	२३	तृहू ...	तु० " "	२४	२
तृवी ...	" " "	८	११	तृहू ...	" " "	२४	२
तृभ ...	" आ० "	११	८	तृ ...	भ्वा० " "	१४	१३
तृभ ...	का० य० "	२८	१५	तृज ...	" " "	५	२०
तृभ ...	दि० " "	२१	२०	तृष्ट ...	" आ० "	७	८
तृर ...	जु० " "	१८	८	तृष्ट ...	" " "	७	८
तृल ...	चु० " "	२८	२२	तृष्ट ...	" " "	८	१८
तृष ...	दि० " "	२१	३	तृऊ ...	" " "	४	१२
तृष ...	भ्वा० " से०	१०	२२	तृज ...	" य० आ०	१४	२२
तृर ...	का० " "	३४	८	तृकि ...	" आ० से०	४	११
तृहृ ...	भ्वा० " "	११	२	तृख ...	" य० "	४	२२
तृड् ...	" " "	७	५	तृखि ...	" " "	४	२२
तृण ...	चु० आ० "	३०	२५	तृदि ...	" " "	४	४
तृरी ...	दि० " "	२०	१२	तृपि ...	" " "	१२	४
तृल ...	भ्वा० य० "	८	१	तृपूष् ...	" आ० "	७	११
तृष ...	" " "	१०	१६	तृस ...	चु० उ० "	२१	१५
तृह ...	भ्वा० " "	१०	१२	तृसि ...	" " "	२१	२१
तृण ...	त० उ० "	२७	४	तृसी ...	दि० य० "	१८	१७
तृहृ ...	तु० " "	२६	५	तृलू ...	भ्वा० " "	१०	११
तृप ...	दि० य० "	२१	६	तृमि ...	" " "	४	२१
तृप ...	आ० " "	२२	१६	तृमि ...	" " "	४	२४
तृप ...	चु० उ० से०	३२	५	तृच ...	तु० " "	२३	१३
तृप ...	तु० य० "	२३	१५	तृचु ...	भ्वा० " "	५	१२
				तृरा ...	" आ० "	११	१६

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	दकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
त्वरा ...	कं० प० से०	३४	६	दसि ..	चु० आ० से०	३०	२१
त्सर ...	भ्वा० प० ,,	६	८	दसि ..	,, उ० ,,	३१	२३
त्विष ...	,, उ० ,,	१५	७	दसि ..	,, ,, ,,	३१	२१
चुट ...	चु० आ० ,,	३१	१	दसु ..	दि० प० ,,	२१	१३
चुप ...	भ्वा० प० ,,	७	२०	दह ..	भ्वा० ,, अ०	१४	२३
चुम्प ...	,, ,, ,,	७	२०	दाञ् ..	जु० उ० ,,	१८	२०
चुफ ...	,, ,, ,,	७	२१	दाण् ..	भ्वा० प० अ०	१३	२६
चुम्फ ...	,, ,, ,,	७	२१	दान ..	,, उ० से०	१५	४
चैङ् ...	भ्वा० आ० अ०	१४	६	दाप् ..	अ० प० अ०	१७	१२
थिष्ट ...	,, ,, से०	७	६	दाष्ट ...	स्वा० ,, से०	२२	१८
दुड ...	तु० प० ,,	२४	११	दाष्ट ..	भ्वा० उ० ,,	१३	११
दुर्वी ...	भ्वा० ,, ,,	६	११	दासृ ..	,, ,, ,,	१३	१४
द्वेष्ट ...	,, आ० ,,	७	६	दिवु ..	चु० आ० ,,	३१	४
दक्ष ...	,, ,, ,,	११	१४	दिवि ..	भ्वा० प० ,,	६	१४
दक्ष ...	,, ,, ,,	६	२४	दिवु ..	दि० ,, ,,	१६	१३
दघ ...	स्वा० प० अ०	२२	१७	दिवु ..	चु० उ० ,,	३१	११
दण्ड ...	चु० उ० से०	३३	१६	दिश्र ..	तु० ,, अ०	२३	३
दद ...	भ्वा० आ० ,,	३	१०	दिह ..	अ० ,, ,,	१६	५
दध ...	,, ,, ,,	३	७	दीक्ष ..	भ्वा० आ० से०	६	२४
दम्भु ...	स्वा० प० ,,	२२	१६	दीङ् ..	दि० आ० अ०	२०	४
दमु ...	दि० ,, ,,	२१	१०	दीधीङ् ..	अ० ,, से०	१७	२४
दय ...	भ्वा० आ० ,,	८	१४	दीपी ..	दि० ,, ,,	२०	१२
दरिद्रा ...	अ० ए० ,,	१७	२१	दु ..	भ्वा० प० अ०	१४	३
दल ...	चु० उ० ,,	३१	२०	दु ..	स्वा० ,, ,,	२२	८
दल ...	भ्वा० प० ,,	६	६	दुःख ..	चु० उ० से०	३३	१७
दलिः ...	,, ,, ,,	१२	४	दुःख ..	कं० प० ,,	३४	७
दंश ...	भ्वा० प० अ०	१४	२३	दुर्वी ..	भ्वा० ,, ,,	६	११
दशि ...	चु० आ० से०	३०	२१	दुल ..	चु० ,, ,,	२६	२३
दस ...	,, ,, ,,	३०	२१	दुवस् ..	कं० ,, ,,	३४	१४

दकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	धकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
दुष ...	दि० प० अ०	२१	३	द्राक्षि ...	भ्वा० आ० से०	१०	१५
दुह ...	अ० उ० "	१६	५	द्राख्य ...	" प० "	४	१८
दुहिर् ...	भ्वा० प० से०	११	२	द्राघृ ...	" आ० "	४	१४
दूङ् ...	दि० आ० "	२०	२	द्राघृ ...	" " "	४	१५
दृङ् ...	तु० " अ०	२५	५	द्राङ् ...	" " "	६	११
दृप ...	दि० प० "	२१	६	द्राङ् ...	" " "	१०	७
दृप ...	चु० उ० से०	३२	५	द्विष ...	अ० उ० अ०	१६	५
दृफ ...	तु० प० "	२३	१६	द्र ...	भ्वा० प० "	१४	३
दृफ ...	" " "	२३	१६	द्रुगा ...	तु० " से०	२३	२२
दृभी ...	" " "	२३	१६	द्रुह ...	दि० " "	२१	७
दृम ...	चु० उ० "	३२	६	द्रुज् ...	क्या० उ० अ०	२७	१६
दृभी ...	" " "	३२	६	द्रुज् ...	भ्वा० आ० से०	४	८
दृभी ...	तु० प० "	२३	१८	द्रु ...	" प० अ०	१३	२१
दृशिर ...	भ्वा० " अ०	१४	२२	धक्र ...	चु० " से०	२६	२१
दृह ...	" " से०	११	१	धन ...	चु० " "	१६	८
दृहि ...	" " "	११	१	धत्रि ...	भ्वा० " "	६	१५
दृ ...	" " "	१२	१	धाज् ...	चु० उ० अ०	१८	२०
दृ ...	स्वा० " "	२२	१८	धावु ...	भ्वा० " से०	६	१६
दृ ...	क्या० " "	२८	३	धि ...	तु० प० अ०	२५	२
दृफ ...	तु० " "	२३	१७	धिक्ष ...	भ्वा० आ० से०	६	२२
देङ् ...	भ्वा० आ० अ०	१४	८	धित्रि ...	" प० "	६	१४
देव ...	" " से०	८	१६	धिष ...	चु० " "	१६	८
दैप् ...	" प० अ०	१३	२४	धीङ् ...	दि० आ० अ०	२०	४
दो ...	दि० " "	२०	६	धुक्ष ...	भ्वा० " से०	६	२२
दु ...	अ० " "	१७	४	धुर्वी ...	" प० "	६	११
दुत ...	भ्वा० आ० से०	११	५	धुज् ...	स्वा० उ० अ०	२२	५
दु ...	" प० अ०	१३	२१	धू ...	तु० प० से०	२४	१८
द्रम ...	" " से०	८	१०	धूज् ...	स्वा० उ० "	२२	५
द्रा ...	अ० प० अ०	१७	११				

अकारादयः	गणनादयः	पृ०	पं०	नकारादयः	गणनादयः	पृ०	पं०
धूज ...	सु० उ० से०	३२	१०	ध्वन ...	सु० उ० से०	३३	१
धूज ...	क्या० प०	२०	१८	ध्वनिः ...	भ्या० प०	१२	४
धूप ...	भ्या० " "	७	१८	ध्वंशु ...	" क्या०	११	८
धूप ...	सु० " "	३१	२२	ध्वंशु ...	" " "	११	६
धूरी ...	दि० आ०	२०	१३	धमा ...	" प० आ०	१३	२५
धूम ...	सु० प०	३०	६	ध्राक्षि ...	" " से०	१०	१५
धृङ् ...	भ्या० आ० आ०	१४	८	ध्राखु ...	" " "	४	१६
धृङ् ...	तु० आ० आ०	२५	५	ध्राडु ...	" आ०	६	११
धृज ...	" प० से०	५	१८	ध्राष्टु ...	" " "	४	१५
धृजि ...	भ्या० " "	५	१८	ध्राक्षि ...	" प०	१०	१५
धृञ् ...	" उ० आ०	१३	१८	ध्रु ...	" आ० आ०	१४	३
धृष ...	सु० " से०	३२	१४	ध्रु ...	तु० प०	२४	१८
धृषा ...	खा० प०	२२	१५	ध्रुव ...	" " से०	२४	१६
धृ ...	क्या० " "	२८	३	ध्रु ...	भ्या० " आ०	१४	२
धृ ...	सु० " "	३०	११	ध्रु ...	" आ० से०	४	८
धृक् ...	" उ०	३३	८	ध्रु ...	" प० आ०	१३	२२
धेट् ...	भ्या० प०	१४	२१	ध्रु ...	" " "	१३	२१
धेष्टु ...	" आ०	७	११	नक् ...	सु० " से०	२६	२४
धोक् ...	" प०	६	७	नट ...	" " "	३१	२१
धज ...	" " "	५	१७	नट ...	" उ०	२६	७
धजि ...	" " "	५	१७	नदि ...	भ्या० प०	१४	३
धण ...	" " "	८	८	नद् ...	" " "	३	२१
धस ...	क्या० " "	२८	१६	नल ...	सु० उ०	३१	२५
धस ...	सु० उ०	३१	१६	नाधु ...	भ्या० आ०	३	६
ध्वज ...	भ्या० प०	५	१८	नाधु ...	" " "	३	६
ध्वजि ...	" " "	५	१८	निवास ...	सु० उ०	३२	२६
ध्वण ...	" " "	८	६	निष्क ...	" आ०	३०	२४
ध्वन ...	" " "	१२	३	नृती ...	दि० प०	१६	१७
ध्वन ...	" " "	१२	१३				

पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
नृ ...	भ्वा० प० से०	१६	१७	पल ...	भ्वा० प० से०	१२	१५
नृ ...	क्रा० " "	२८	४	पलपूल ...	चु० उ० " "	३२	२४
पक्ष ...	भ्वा० " "	१०	१४	पश ...	" " "	३१	६
पक्ष ...	चु० " "	२६	८	पष ...	" " "	३२	१६
पक्ष ...	भ्वा० उ० अ०	१५	६	पसि ...	" प० "	३०	२
पक्षि ...	" अ० से०	५	५	पा ...	भ्वा० " अ०	१३	२४
पक्षि ...	चु० प० "	३०	१२	पा ...	अ० " "	१७	११
पट ...	भ्वा० " "	६	१५	पार ...	चु० उ० से०	३३	७
पट ...	चु० उ० "	३१	२०	पाल ...	" प० "	३०	१
पट ...	" " "	३२	१८	पि ...	तु० " अ०	२५	२
पठ ...	भ्वा० प० "	६	२३	पिचकृ ...	चु० " से०	२६	१६
पडि ...	" अ० "	६	६	पिज ...	" " "	२६	१३
पडि ...	चु० प० "	३०	५	पिजि ...	अ० अ० "	१६	१३
पण ...	भ्वा० अ० "	८	१	पिजि ...	चु० प० "	२६	१३
पत ...	चु० उ० "	३२	१६	पिजि ...	" उ० "	३१	२१
पतलृ ...	भ्वा० प० "	१२	१७	पिट ...	भ्वा० प० "	६	१८
पथ ...	चु० " "	२६	१०	पिठ ...	" " "	७	१
पथि ...	" " "	२६	१६	पिडि ...	" अ० "	६	८
पथे ...	भ्वा० " "	१२	१७	पिडि ...	चु० प० "	३०	१८
पद ...	दि० अ० अ०	२०	२२	पिडि ...	भ्वा० " "	६	१४
पद ...	चु० उ० से०	३३	४	पिश ...	तु० " "	२५	१८
पन ...	भ्वा० अ० "	८	३	पिश ...	चु० " "	३०	२
पम्पस ...	क्रा० प० "	३४	६	पिषलृ ...	रु० " "	२६	१४
पय ...	भ्वा० अ० "	८	१३	पिस ...	चु० " "	२६	१४
पयस ...	क्रा० प० "	३४	१५	पिसि ...	" उ० "	३१	२१
पह ...	भ्वा० अ० "	३	१२	पिसृ ...	भ्वा० प० "	१०	२४
पयि ...	" प० "	७	२१	पीड ...	द० अ० अ०	२०	६
पयि ...	" " "	७	२१	पीड ...	चु० प० से०	२६	७
पयि ...	" " "	६	१२	पीव ...	भ्वा० " "	६	१०

प्रकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	प्रकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
मील ...	भ्वा० प० से०	८	२६	पूरी ...	सु० उ० से०	३१	२५
पुट ...	" " "	६	२१	पूरी ...	सु० प० "	३०	८
पुट ...	तु० " "	२४	७	पूरी ...	भ्वा० " "	६	२
पुट ...	सु० उ० "	३१	२०	पूरी ...	सु० " "	३०	८
पुट ...	" " "	३३	८	पूरी ...	भ्वा० " "	१०	१६
पुटि ...	" " "	३१	२४	पूरी ...	स्वा० " अ०	२२	८
पुट ...	" प० "	२६	१२	पूरी ...	तु० अ० "	२४	२३
पुट ...	तु० " "	२४	११	पूरी ...	सु० उ० से०	३२	२
पुडि ...	भ्वा० " "	६	२२	पूरी ...	अ० अ० "	१६	१४
पुण ...	तु० " "	२३	२१	पूरी ...	सु० प० "	२६	१७
पुथ ...	दि० " "	१६	१७	पूरी ...	अ० अ० "	१६	१३
पुथ ...	सु० उ० "	३१	२२	पूरी ...	तु० प० "	२३	२०
पुथि ...	भ्वा० प० "	३	१८	पूरी ...	" " "	२३	२०
पुर् ...	तु० " "	२४	१	पूरी ...	सु० " "	२६	६
पुर्व ...	भ्वा० " "	६	१२	पूरी ...	भ्वा० " "	१०	२१
पुल ...	" " "	१२	१६	पूरी ...	सु० " "	१८	१२
पुल ...	सु० " "	२६	२३	पूरी ...	क्रा० " "	२८	२
पुष ...	भ्वा० " "	१०	२०	पूरी ...	भ्वा० अ० "	८	१६
पुष ...	दि० " अ०	२१	२	पूरी ...	" प० "	६	५
पुष ...	क्रा० " से०	२८	१७	पूरी ...	" अ० "	१०	१
पुष ...	सु० उ० "	३१	२०	पूरी ...	" प० "	१०	२४
पुष ...	दि० प० "	१६	१८	पूरी ...	" " अ०	१३	२३
पुस ...	सु० " "	३०	८	पूरी ...	" " से०	८	८
पुत्त ...	" " "	२६	२०	पूरी ...	" " "	६	१४
पूड ...	भ्वा० " "	१४	११	पूरी ...	तु० " अ०	२७	७
पूज ...	सु० " "	३०	१०	पूरी ...	भ्वा० अ० से०	११	१३
पूज ...	क्रा० उ० "	२७	१६	पूरी ...	सु० प० "	२६	६
पूरी ...	भ्वा० अ० "	८	१५	पूरी ...	भ्वा० अ० "	११	१३
पूरी ...	दि० " "	२०	१२	पूरी ...	" उ० "	१३	१४

प्रकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	प्रकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
प्याथी ...	भ्वा० आ० से०	८	१६	वद ...	भ्वा० प० से०	३	२०
प्रा ...	अ० प० अ०	१७	१२	वध ...	” आ० ”	१४	१५
प्सा ...	” ” ”	१७	११	बन्ध ...	क्रा० ” ”	२८	८
प्रिह ...	भ्वा० आ० से०	१०	६	बभ्र ...	भ्वा० ” ”	८	८
प्रोङ् ...	दि० आ० अ०	२०	७	बर्ब ...	” ” ”	७	२२
प्रोज् ...	क्या० उ० अ०	२७	१२	बर्ह ...	” आ० ”	१०	५
प्रोज् ...	सु० उ० से०	३२	१०	वल ...	” ” ”	१२	१५
ब्री ...	क्या० प० अ०	२८	७	बल ...	” प० ”	८	१७
मुङ् ...	भ्वा० आ० ”	१४	७	बल ...	सु० ” ”	३०	६
मुष ...	क्रा० प० से०	२८	१७	बल्भ ...	भ्वा० आ० ”	७	१५
मुषु ...	भ्वा० ” ”	१०	२१	बल्ल ...	” ” ”	८	१७
प्लुङ् ...	” आ० अ०	१४	७	बल्ह ...	” ” ”	१०	५
प्लुष ...	दि० प० से०	१६	१६	बसु ...	दि० प० ”	२१	१३
प्लुष ...	भ्वा० ” ”	१०	२१	बष ...	भ्वा० ” ”	१०	१६
प्रेष ...	” आ० ”	१०	१	बहि ...	” आ० ”	१०	४
प्यैङ् ...	” ” ”	१४	८	बाधु ...	” ” ”	३	६
प्रोष्टु ...	” उ० ”	१३	६	बाहु ...	” ” ”	१०	६
फक्क ...	” प० ”	४	१७	बिट ...	” प० ”	६	२०
फण ...	” ” ”	१२	७	बिदि ...	” ” ”	४	२
फल ...	” ” ”	८	२	बिल ...	तु० ” ”	२४	५
फला ...	” ” ”	८	२५	बिषु ...	भ्वा० ” ”	१०	२०
फल्ल ...	” ” ”	८	३	बिस ...	दि० ” ”	२१	१५
फिलृ ...	” ” ”	८	५	बुक्क ...	भ्वा० ” ”	४	१७
वज ...	” ” ”	५	२५	बुक्क ...	सु० ” ”	३१	८
वट ...	” आ० ”	११	१६	बुगि ...	भ्वा० ” ”	४	२३
वटि ...	” ” ”	६	५	बुध ...	” ” ”	१२	२५
वठ ...	” प० ”	६	२४	बुध ...	दि० आ० अ०	२०	२२
वडि ...	” आ० ”	६	७	बुधिर ...	भ्वा० उ० से०	१३	८
वड ...	” प० ”	८	८	बुन्दिर ...	” ” ”	१३	८

भकारादयः	गण्यदयः	पृ०	पं०	भकारादयः	गण्यदयः	पृ०	पं०
बुस ...	दि० प० से०	२१	१४	भल्ल ...	भ्वा० आ० से०	८	१८
बुस ...	" " "	२१	१५	भघ ...	" प० "	१०	१६
बुल्ल ...	बु० " "	२६	२०	भस ...	बु० " "	१६	७
बृषु ...	भ्वा० " "	१०	२१	भा ...	अ० " अ०	१७	१०
बृह ...	" " "	११	२	भाज ...	बु० उ० से०	३२	२६
बृहि ...	" " "	११	२	भाम ...	भ्वा० आ० "	८	३
बृहि ...	बु० उ० "	३१	२२	भाम ...	बु० उ० "	३२	२२
बृहिर ...	भ्वा० प० "	११	२	भाघ ...	भ्वा० आ० "	६	२५
बृहू ...	तु० " "	२४	१	भासृ ...	" " "	१०	१
बेह ...	भ्वा० आ० "	१०	६	भिल्ल ...	" " "	६	२३
ब्रज ...	" प० "	५	२५	भिदि ...	" प० "	४	१
ब्रज ...	" " "	८	६	भिदिर् ...	बु० उ० अ०	२६	३
ब्रीड ...	दि० " "	१७	१६	भिघज् ...	कां० प० से०	३४	८
ब्रूज् ...	अ० " "	१७	७	भिघणज् ...	" " "	३४	८
भक्ष ...	बु० " "	२६	१०	भी ...	बु० " अ०	१८	६
भज ...	भ्वा० उ० "	१५	६	भुज ...	बु० " से०	२६	१४
भज ...	बु० " "	३१	१३	भुरग ...	कां० प० "	३४	१०
भजि ...	" " "	३१	२१	भुवः ...	बु० उ० "	३१	१७
भंजो ...	बु० प० "	२६	१४	भू ...	भ्वा० प० "	३	३
भट ...	भ्वा० " "	६	१८	भू ...	बु० उ० "	३२	१३
भट ...	" " "	११	१६	भूष ...	भ्वा० प० "	१०	१८
भडि ...	" आ० "	६	७	भूष ...	बु० उ० "	३१	१२
भडि ...	बु० प० "	२६	२०	भृजी ...	भ्वा० आ० "	५	७
भब ...	भ्वा० " "	८	६	भृज् ...	भ्वा० उ० अ०	१३	१७
भदि ...	भ्वा० आ० "	३	८	भृज् ...	बु० " "	१८	१४
भर्त्स ...	बु० " "	३०	२३	भृड ...	तु० प० से०	२४	१३
भर्ष ...	भ्वा० प० "	६	१२	भृश ...	दि० " "	२१	१७
भल्ल ...	भ्वा० आ० "	८	१८	भृषि ...	बु० उ० "	३१	२३
भल्ल ...	बु० आ० "	३१	२				

मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
मृ ...	क्रा० प० से०	२८	२	मघि ...	भ्वा० षा० से०	४	१४
मृ ...	" " "	२८	३	मघि ...	" " "	४	१५
मेघृ ...	भ्वा० उ० "	१३	११	मघि ...	" " "	४	२४
भ्यस ...	" षा० "	१०	३	मघि ...	" षा० "	५	५
भ्रय ...	" प० "	८	६	मठ ...	" प० "	६	२४
भ्रमु ...	भ्वा० " "	१२	१८	मठि ...	" षा० "	६	५
भ्रमु ...	दि० " "	२१	११	मडि ...	" " "	६	७
भ्रशु ...	" षा० "	११	८	मडि ...	" प० "	६	२१
भ्रशु ...	भ्वा० " "	११	८	मडि ...	चु० " "	२६	१६
भ्रशु ...	दि० प० "	२१	१७	मण ...	भ्वा० " "	८	६
भ्रसु ...	भ्वा० षा० "	११	८	मत्रि ...	चु० " "	३०	२२
भ्रस्ज ...	तु० उ० षा०	२३	३	मथि ...	भ्वा० " "	३	१८
भ्रक्ष ...	भ्वा० " से०	१३	१४	मथे ...	" " "	१२	१७
भ्रलक्ष ...	" " "	१३	१४	मद ...	चु० षा० "	३१	४
भ्राजृ ...	" षा० "	५	७	मदि ...	भ्वा० " "	३	८
भ्राजृ ...	" " "	१२	१०	मदौ ...	" प० "	१२	३
भ्राशृ ...	" " "	१२	१०	मदौ ...	दि० " "	२१	१२
भ्रलाशृ ...	" " "	१२	१०	मन ...	" षा० षा०	२०	२३
भ्री ...	क्रा० प० षा०	२८	८	मन ...	चु " से	३१	५
भ्रय ...	चु० षा० से०	३०	२५	मनु ...	त० " "	२७	६
भ्रजृ ...	भ्वा० " "	५	७	मन्तु ...	कां० प० "	३४	३
भ्रेषृ ...	" उ० "	१३	१२	मन्थ ...	भ्वा० " "	३	१८
भ्रलेषृ ...	" " "	१३	१२	मन्थ ...	क्या० " "	२८	१३
मकि ...	" षा० "	४	११	मन्थ ...	भ्वा० " "	८	२४
मकि ...	" " "	४	१२	मभ्र ...	" " "	८	८
मख ...	" प० "	४	२०	मय ...	" षा० "	८	१३
मखि ...	" " "	४	२१	मर्च ...	चु० प० "	३०	११
मखध ...	कां० " "	३४	६	मर्व ...	भ्वा० " "	७	२२
मयि ...	भ्वा० प० "	४	२२	मर्व ...	" " "	८	१२

मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
मल ...	भ्रा० छा० से०	८	१७	मिद् ...	भ्रा० उ० से०	१३	६
मल्ल ...	" " "	८	१७	मिधु ...	" " "	१३	७
मव ...	" प० "	६	१६	मिद्रि ...	" प० "	६	७
मश ...	" " "	१०	२५	मिल ...	तु० " "	२४	६
मष ...	" " "	१०	१६	मिल ...	" उ० "	२५	१४
मसी ...	दि० " "	२१	१६	मिश ...	भ्रा० प० "	१०	१५
मस्क ...	भ्रा० छा० "	४	१३	मिश्र ...	चु० उ० "	२३	१४
मत्तो ...	तु० प० अ०	२५	८	मिष ...	तु० प० से०	२४	३
मह ...	भ्रा० " से०	११	१	मिषु ...	भ्रा० " "	१०	२०
मह ...	चु० उ० "	३२	२०	मिह ...	" " अ०	१४	२३
महि ...	भ्रा० छा० "	१०	४	मी ...	चु० उ० से०	३२	७
महि ...	चु० उ० "	३१	२४	मीड् ...	दि० छा० अ०	२०	४
महीड् ...	कं० छा० "	३४	१३	मीज् ...	क्रा० उ० अ०	२७	१३
मा ...	अ० प० अ०	१७	१३	मीमृ ...	भ्रा० प० से०	८	१०
मादि ...	भ्रा० प० से०	१०	१५	मील ...	" " "	८	२५
मड् ...	चु० छा० अ०	१८	१६	मीव ...	" " "	६	१०
माड् ...	दि० " "	२०	६	मुच ...	" छा० "	५	५
मान ...	भ्रा० " से०	१४	१५	मुच ...	चु० उ० "	३१	१६
मान ...	चु० उ० "	३२	१२	मुचि ...	भ्रा० छा० "	५	५
मार्ग ...	" " "	३२	१३	मुचलृ ...	तु० उ० अ०	२५	१४
मार्ज ...	" प० "	३०	११	मुज ...	भ्रा० प० से०	५	२४
माह ...	भ्रा० उ० "	१३	१५	मुजि ...	" " "	५	२४
मिच्छ ...	तु० प० "	२३	१२	मुट ...	" " "	६	२१
मिजि ...	चु० उ० "	३१	२१	मुट ...	तु० " "	२४	८
मिज् ...	खा० " छा०	२२	३	मुट ...	चु० " "	२०	२
मिधु ...	भ्रा० " से०	१३	७	मुठि ...	भ्रा० छा० "	६	५
मिदा ...	" छा० "	११	५	मुडि ...	" " "	६	८
मिदा ...	दि० प० "	२१	२१	मुड ...	" प० "	६	२२
मिदि ...	चु० " "	२६	६	मुण ...	तु० " "	२३	२१

मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
मुद ...	भ्वा० व्या० से०	३	६	मृष ...	चु० उ० से०	३२	१४
मुद ...	चु० उ० "	३१	१५	मृषु ...	भ्वा० य० "	१०	२१
मुद ...	तु० य० "	२३	२३	मृ ...	क्रया० " "	२८	४
मुच्छ्वा ...	भ्वा० " "	५	१६	मेद् ...	भ्वा० व्या० "	१४	८
मुर्वी ...	" " "	६	११	मेडु ...	" य० "	६	१४
मुष ...	क्रया० " "	२८	१८	मेष्टु ...	" उ० "	१३	७
मुस ...	दि० " "	२१	१६	मेदु ...	" " "	१३	६
मुस्त ...	चु० " "	३०	७	मेधा ...	कं० य० "	३४	५
मुह ...	दि० " "	२१	७	मेधु ...	भ्वा० उ० "	१३	६
मृद् ...	भ्वा० व्या० "	१४	११	मेधु ...	" " "	१३	७
मृज् ...	क्रया० उ० "	२७	१६	मेष्टु ...	" व्या० "	७	१०
मृज् ...	चु० " "	३३	७	मेष्टु ...	" व्या० "	८	२०
मृल ...	भ्वा० य० "	६	२	मृक्ष ...	" य० "	१०	१३
मृल ...	चु० " "	२६	२३	मृक्ष ...	चु० " "	३०	१६
मृष ...	भ्वा० " "	१०	१६	मृच्छ ...	" " "	३०	१५
मृक्ष ...	" " "	१०	१३	मृक्ष ...	भ्वा० व्या० "	११	१४
मृग ...	चु० व्या० "	३३	४	मृ ...	" य० व्या०	१३	२६
मृद् ...	तु० " व्या०	२४	२३	मृचुचु ...	" " से०	५	१२
मृज् ...	चु० " से०	३२	१४	मृचुचु ...	" " "	५	१२
मृज् ...	व्या० य० व्या०	१७	१५	मृष्टु ...	" " "	६	१४
मृह ...	तु० " से०	२३	१६	मृलुचु ...	" " "	५	१२
मृह ...	क्रया० " "	२८	१४	मृलुचुचु ...	" " "	५	१२
मृह ...	" " "	२८	१४	मृलच्छु ...	" " "	५	१४
मृथ ...	तु० " "	२३	२०	मृलच्छु ...	चु० " "	३०	१५
मृद ...	क्रया० " "	२८	१४	मृलच्छु ...	" " "	३०	१६
मृधु ...	भ्वा० उ० "	१३	८	मृलेडु ...	भ्वा० " "	६	१४
मृधु ...	तु० य० व्या०	२५	१०	मृलेष्टु ...	" व्या० "	७	१०
मृध ...	भ्वा० " से०	१०	२१	मृलेष्टु ...	" " "	८	२०
मृध ...	दि० उ० "	२०	१८	मृलै ...	" " "	१३	२१

यकादयः	गयादयः	पृ०	पं०	रेफादयः	गयादयः	पृ०	पं०
यक्ष ...	बु० आ०से०	३०	२६	रगि ...	भ्रा० प०से०	४	२२
यज ...	भ्रा० उ० अ०	१५	७	रघ ...	बु० उ० ,,	३१	१४
मत ...	बु० ,, से०	३१	१३	रघि ...	भ्रा० आ० ,,	४	१३
यती ...	भ्रा० आ० ,,	३	१३	रघि ...	बु० प० ,,	३१	२४
यम ...	भ्रा० प० अ०	१४	२१	रङ्ग ...	,, उ० ,,	३२	१८
यम ...	भ्रा० प० ,,	१४	२१	रच ...	,, ,, ,,	३२	२०
यम ...	भ्रा० प०से०	१२	७	रज्ज ...	दि० उ० अ०	२०	२०
यम ...	बु० ,, ,,	३०	५	रज्ज ...	भ्रा० ,, ,,	१५	६
यस ...	दि० ,, ,,	२१	१२	रट ...	,, प० से०	६	१५
यत्रि ...	बु० ,, ,,	२६	४	रठ ...	,, ,, ,,	६	२५
या ...	अ० ,, ,,	१७	१०	रण ...	,, ,, ,,	८	६
याचु ...	भ्रा० उ० ,,	१३	५	रण ...	,, ,, ,,	११	२३
यु ...	अ० प० ,,	१६	१८	रणि ...	,, ,, ,,	१२	४
यु ...	बु० आ० ,,	३१	५	रद ...	,, ,, ,,	३	२१
युगि ...	भ्रा० प० ,,	४	२४	रध ...	दि० ,, ,,	२१	५
युक्क ...	,, ,, ,,	५	१७	रप ...	भ्रा० ,, ,,	७	१६
युज ...	दि० आ० अ०	२०	२३	रफ ...	,, ,, ,,	७	२१
युज ...	बु० उ० से०	३२	२	रफि ...	,, ,, ,,	७	२१
युजिर् ...	बु० ,, अ०	२६	४	रवि ...	,, आ० ,,	७	१२
यज् ...	क्रया० ,, ,,	२७	१४	रवि ...	,, प० ,,	६	१५
यट्ट ...	बु० प० से०	२६	११	रभ ...	,, आ० ,,	१४	१७
यतृ ...	भ्रा० आ० ,,	३	१३	रभि ...	,, ,, ,,	७	१४
युध ...	दि० ,, अ०	२०	२२	रमु ...	,, ,, अ०	१२	२१
युपु ...	,, प० से०	२१	१६	रय ...	,, ,, से०	८	१४
यूष ...	भ्रा० आ० ,,	१०	१७	रस ...	,, प० ,,	१०	२३
रक्ष ...	,, प० ,,	१०	१२	रस ...	बु० उ० ,,	३३	१८
रक्ष ...	,, ,, ,,	४	२१	रह ...	भ्रा० प० ,,	११	१
रक्षि ...	,, ,, ,,	४	२१	रह ...	बु० उ० ,,	३०	७
रम ...	बु० ,, ,,	३१	१४	रह ...	बु० ,, ,,	३२	१८

रेफारादयः	गयादयः	पृ०	पं०	रेफारादयः	गयादयः	पृ०	पं०
रहि ...	म्वा० प० से०	११	१	रट ...	सु० उ० से०	३१	२३
रहि ...	सु० " "	३१	२४	रटि ...	म्वा० प० "	६	२२
रा ...	अ० " अ०	१७	१२	रठ ...	" " "	७	१
राखु ...	म्वा० " से०	४	१६	रठि ...	" " "	६	२३
राघु ...	" अ० "	४	१५	रठि ...	" " "	७	३
राजु ...	" उ० "	१२	६	रड ...	सु० " "	३०	१६
राध ...	दि० प० अ०	२१	२	रदिर् ...	अ० " "	१७	१५
राध ...	स्वा० " "	२२	१०	रध ...	दि० अ० अ०	२०	२३
रासु ...	म्वा० अ० से०	१०	२	रधिर ...	र० उ० "	२६	३
रि ...	तु० प० अ०	२५	१	रपु ...	दि० प० से०	२१	१६
रि ...	म्वा० " "	२२	१७	रप्र ...	तु० " अ०	२५	६
रिख ...	म्वा० " से०	४	२३	रष ...	म्वा० " से०	१०	१६
रिगि ...	" " "	४	२३	रष ...	" " "	१०	१७
रिष ...	सु० उ० "	३२	४	रष ...	दि० " "	२१	१८
रिचिर ...	र० उ० अ०	२६	४	रष ...	सु० " "	३०	१८
रिफ ...	तु० प० से०	२३	१४	रषि ...	" " "	३१	२३
रिवि ...	म्वा० " "	६	१५	रह ...	म्वा० " अ०	१३	१
रिप्र ...	तु० " अ०	२५	६	रह ...	सु० उ० से०	३३	७
रिष ...	म्वा० " से०	१०	१६	रप ...	सु० " "	२३	१६
रिष ...	दि० " "	२१	१८	रेक ...	म्वा० अ० "	४	६
रिह ...	तु० " "	२३	१५	रेखा ...	कं० प० "	३४	१३
री ...	क्रा० " अ०	२८	६	रेटु ...	म्वा० उ० "	१३	५
रीड ...	दि० अ० से०	२०	५	रेपु ...	" अ० "	७	११
र ...	अ० प० "	१६	१८	रेभु ...	" " "	७	१३
रकु ...	म्वा० अ० अ०	१४	७	रेव ...	" " "	८	२०
रष ...	" " से०	११	६	रेव ...	" " "	१०	१
रष ...	सु० उ० "	३१	२५	रै ...	म्वा० प० अ०	१३	२३
रजो ...	तु० प० "	२५	८	रोडु ...	" " से०	७	५
रट ...	म्वा० अ० "	११	७	रीडु ...	" " "	७	५

लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
लल	सु० आ० से०	३१	१	लर्व	„ प० से०	७	२१
लल	„ प० „	२६	५	लल	सु० आ० „	३०	२४
लल	भ्वा० „ „	४	२१	लल	भ्वा० उ० से०	१३	१३
ललि	„ „ „	४	२१	लल	„ „ „	१०	२३
ललि	„ „ „	४	२२	लल	सु० उ० „	३१	१२
लले	„ „ „	११	२१	लल	तु० आ० „	२३	८
ललि	„ आ० „	४	१३	लल	अ० प० अ०	१०	१३
ललि	„ „ „	४	१४	लल	भ्वा० „ से०	४	१८
ललि	„ प० „	४	२५	लल	„ आ० „	४	१५
ललि	सु० उ० „	३१	२१	ललि	„ प० „	५	१४
ललि	„ „ „	३१	२४	ललि	„ „ „	५	२२
लल्ल	भ्वा० प० „	५	१४	ललि	„ „ „	५	२३
लल	„ „ „	५	२२	लल	कं० „ „	३४	१२
लल	सु० उ० „	३३	१४	लल	सु० उ० „	३३	१८
ललि	भ्वा० प० „	५	२२	ललि	तु० प० „	२४	६
ललि	सु० „ „	२६	१३	ललि	भ्वा० „ „	४	२३
ललि	„ उ० „	३१	२३	ललि	सु० उ० „	३१	१५
लली	तु० आ० „	२३	८	ललि	कं० प० „	३४	१२
लली	सु० प० „	२६	७	ललि	तु० उ० अ०	२५	१५
लल	भ्वा० „ „	६	१६	ललि	दि० आ० „	२०	२४
लल	„ „ „	७	६	ललि	तु० प० „	२३	८
लल	सु० „ „	२६	५	ललि	अ० उ० „	१६	५
ललि	भ्वा० „ „	१२	३	ली	क्रया० प० „	२८	६
ललि	सु० „ „	२६	६	ली	सु० उ० से०	३३	३
ललि	„ उ० „	३१	२४	ली	दि० आ० अ०	२०	५
लप	भ्वा० प० „	७	१६	लुजि	सु० प० से०	२८	१३
लवि	„ आ० „	७	१२	लुज्व	भ्वा० „ „	५	११
लवि	„ „ „	७	१२	लुट	„ „ „	६	१८
लमव	„ „ आ०	१४	१७	लुट	भ्वा० आ० „	११	७

लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
लुट ...	तु० प० से०	२४	१०	लोट ...	कां० प० से०	२४	३
लुट ...	लु० उ० " "	२१	२०	लोट्टु ...	भा० " "	७	५
लुटि ...	भा० प० " "	६	२३	लोट्टु ...	" भा० " "	६	४
लुठ ...	" " " "	७	१	वक्ष	" प० " "	१०	१३
लुठ ...	" भा० " "	११	७	वकि ...	" भा० " "	४	१०
लुठ ...	तु० प० " "	२४	१०	वकि ...	" " " "	४	१२
लुठ ...	दि० " " "	२१	१६	वख ...	" प० " "	४	२०
लुठि ...	भा० " " "	६	२३	वखि ...	" " " "	४	२०
लुठि ...	" " " "	७	२	वगि ...	" " " "	४	२२
लुठि ...	" " " "	७	३	वघि ...	" भा० " "	४	१४
लुठ ...	लु० " " "	२६	१२	वच ...	भा० प० भा०	१७	१३
लुधि ...	भा० " " "	३	१८	वच ...	लु० उ० से०	२२	१२
लुपु ...	दि० " " "	२१	१६	वज ...	" प० " "	३०	३
लुम् ...	तु० उ० भा०	२५	१४	वञ्च ...	भा० " " "	५	११
लुबि ...	भा० प० से०	७	२३	वञ्चु ...	लु० भा० " "	२१	३
लुबि ...	लु० " " "	३०	१४	वट ...	भा० प० " "	६	१६
लुभ ...	दि० " " "	२१	२०	वट ...	लु० उ० " "	३२	१८
लुभ ...	तु० " " "	२३	१४	वट ...	" " " "	३३	१७
लूञ् ...	भा० उ० " "	२७	१७	वटि ...	" प० " "	२६	१६
लूष ...	भा० प० " "	१०	१७	वटि ...	" उ० " "	३३	१४
लूष ...	लु० " " "	३०	१	वडि ...	" प० " "	२६	१६
लोट ...	कां० " " "	३४	३	वख ...	भा० " " "	८	६
लोट्टु ...	भा० भा० " "	७	११	वद ...	" " " "	१५	१६
लेला ...	कां० प० " "	३४	४	वद ...	लु० उ० " "	३२	१३
लोल्ल ...	भा० भा० " "	४	८	वदि ...	भा० भा० " "	३	७
लोल्ल ...	लु० उ० " "	३१	२२	वध ...	लु० प० " "	२६	८
लोल्ल ...	भा० भा० " "	५	३	वम ...	भा० " " "	८	६
लोल्ल ...	लु० उ० " "	३१	२२	वन ...	" प० " "	८	६
लोल्ल ...	लु० उ० " "	३१	२२	वनु ...	" " " "	११	१४

वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
बनु ...	भ्वा०प०से०	१२	६	वसु ...	दि०प०से०	२१	१३
बनु ...	त०आ०	२०	६	वह ...	भ्वा०उ०अ०	१५	८
वप ...	भ्वा०उ०	१५	८	वह ...	तु०	३१	२२
वम ...	प०	१२	६	वा ...	अ०प०अ०	१०	१०
वम ...	"	१२	१८	वाञ्चि ...	भ्वा०से०	१०	१५
वय ...	आ०	८	१३	वाञ्चि ...	"	५	१५
वर ...	तु०उ०	३२	१०	वाह ...	आ०	६	११
वसु ...	भ्वा०आ०	५	३	वात ...	तु०उ०	३२	२५
वसु ...	तु०प०	२८	८	वाहृतु ...	दि०आ०	२०	१५
वसु ...	"	२८	८	वायु ...	"	२०	१५
वसु ...	उ०	३३	२०	वास ...	तु०उ०से०	३२	२५
वरस ...	कं०	३४	८	विच्छ ...	तु०प०	२५	१०
वह ...	तु०प०	३०	१३	विच्छ ...	तु०उ०	३१	२२
वसु ...	भ्वा०आ०	८	२६	विचिर् ...	क०	२६	६
वह ...	"	१०	५	विजिर् ...	तु०	१८	२
वह ...	तु०उ०	३०	१६	विजो ...	तु०आ०से०	२३	८
वदक ...	प०	२८	१५	विजो ...	क०प०	२६	१६
बलि ...	भ्वा०	१२	४	विट ...	भ्वा०	६	२०
बसुगु ...	"	१२	४	विश्रु ...	आ०	३	१३
बसुगु ...	कं०	२४	२	विद ...	अ०प०	१०	१५
बसुह ...	भ्वा०आ०	१०	५	विद ...	दि०आ०अ०	२०	२२
बसुह ...	तु०उ०	३१	२२	विद ...	क०	२६	१२
वस ...	अ०प०	१८	२	विद ...	तु०	३१	५
वसक ...	तु०उ०	३३	१३	विदलृ ...	तु०उ०अ०	२५	१४
वस ...	भ्वा०प०अ०	१५	११	विध ...	प०से०	२३	१८
वस ...	अ०आ०	१६	११	विल ...	"	२४	४
वस ...	तु०उ०से०	३१	१६	विल ...	तु०	२८	२४
वदक ...	भ्वा०आ०	४	१३	विल ...	"	२८	२४
वसु ...	तु०	३०	२३	विश ...	तु०	२५	१०

वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
विष	क्या० प० से०	२८	१७	वेष्ट	भ्वा० आ० से०	३	१३
विष्ट	जु० उ० अ०	१८	२	वेद	कां० प०	३४	५
विष्क	सु० आ० से०	३०	२४	वेलु	भ्वा० उ०	१३	८
विस	दि० प०	२१	१५	वेष्ट	आ०	७	१०
वी	अ०	१७	८	वेल	सु० उ०	३२	२४
वीर	सु० उ० से०	३३	५	वेल्ल	भ्वा० प०	८	४
वुजि	प०	२८	१३	वेला	कां०	३४	११
वुल	"	२८	२४	वेल्ल	भ्वा०	८	४
वृक	भ्वा० आ०	४	११	वेवीड्	अ०	१७	२४
वृक्ष	"	८	२२	वेष्ट	भ्वा० आ०	६	३
वृड्	क्या० आ०	२८	११	वे	प० अ०	१३	२३
वृली	अ०	१६	१३	व्यच	तु० से०	२३	११
वृजी	रु० प०	२६	१७	व्यथ	भ्वा० आ०	११	१३
वृजी	सु० उ०	३२	२	व्यध	दि० प०	२१	२
वृज्	स्वा०	२२	५	व्यय	भ्वा० उ०	१३	११
वृज्	सु०	३२	२	व्यय	सु०	३३	१८
वृण	तु० प०	२३	२०	व्रण	सु०	३३	२०
वृत्तु	भ्वा० आ०	११	८	व्रश्चू	प०	२३	११
वृत्तु	सु० उ०	३१	१३	व्री	क्या० अ०	२८	६
वृधु	भ्वा० आ०	११	१०	व्रीड्	दि० आ०	२०	५
वृधु	सु० उ०	३१	२३	वृली	क्या० प०	२८	७
वृग	दि० प०	२१	१७	वृष	दि० से०	१८	१६
वृष	सु० आ०	३१	३	वृष	"	२१	१४
वृहि	उ०	३१	२२	वृष	"	२१	१४
वृह	तु० प०	२४	१	वृष	तु०	२४	१३
वृज्	क्या०	२८	२	वृष	सु०	३०	१६
वृज्	उ०	२७	१७	वृष	भ्वा० उ० अ०	१५	१३
वृज्	भ्वा० अ०	१५	१३	शक	दि० प० प०	२१	३
वृष्ट	" से०	१३	८	शकि	भ्वा० आ० से०	४	१०

शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
शक्तृ ...	स्वा० प० अ०	२२	१०	शंसु ..	भ्वा० प० से०	१०	२६
शगि ...	भ्वा० „ से०	४	२२	शाखृ ..	„ „ „	४	२०
शच ...	„ आ० „	५	३	शाडृ ..	„ आ० „	६	११
शट ...	„ प० „	६	१६	शान ..	„ „ „	१५	४
शट ...	„ „ „	६	१८	शासु ..	अ० „ „	१६	११
शठ ...	„ „ „	७	१	शासु ..	„ „ „	१७	२१
शठ ...	चु० „ „	२८	१२	शिक्ष ..	भ्वा० „ „	८	२२
शठ ...	„ आ० „	३०	२६	शिखि ..	„ प० „	४	२३
शठ ...	„ उ० „	३२	१७	शिषि ..	„ „ „	४	२५
शडि ...	भ्वा० आ० „	६	८	शिजि ..	अ० आ० „	१६	१३
शण ...	„ प० „	११	२३	शिज् ..	स्वा० उ० अ०	२२	३
शण ...	„ „ „	११	२३	शिट ..	भ्वा० प० से०	६	१७
शदल ...	„ आ० „	१२	२४	शिल ..	तु० „ „	२४	५
शदल ...	तु० प० „	२५	११	शिप ..	भ्वा० „ „	१०	१८
शप ...	भ्वा० उ० अ०	१५	७	शिप ..	चु० उ० „	३२	४
शप ...	दि० „ „	२०	२०	शिष्ल ..	रु० प० अ०	२६	१४
शम्ब ...	चु० प० „	२८	१०	शीक ..	चु० उ० से०	३१	२३
शम ...	„ आ० से०	३१	१	शीक ..	„ „ „	३२	८
शय्द ...	„ उ० „	३१	८	शीक ..	भ्वा० आ० „	४	८
शमु ...	दि० प० „	२१	१०	शीङ् ..	अ० „ „	१६	१६
शर्ष ...	भ्वा० „ „	७	२२	शीभृ ..	भ्वा० „ „	७	१३
शर्ष ...	„ „ „	८	१३	शील ..	„ प० „	८	२६
शल ...	„ आ० „	१२	१७	शील ..	चु० उ० „	३३	२३
शलभ ...	„ „ „	७	१५	शुच ..	भ्वा० प० „	५	१०
शव ...	„ प० „	१०	२५	शुचिर् ..	दि० उ० „	२०	१८
शश ...	„ „ „	१०	२६	शुच्य ..	भ्वा० प० „	८	२३
शष ...	„ „ „	१०	१८	शुठ ..	„ „ „	७	२
शसि ...	„ आ० „	१०	३	शुठ ..	चु० „ „	३०	१०
शसु ...	„ प० से०	१०	२६	शुठि ..	भ्वा० „ „	७	३

शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
शुठि ...	भ्वा० प० से०	७	३	शौड ...	भ्वा० प० से०	६	१४
शुठि ...	चु० " "	३०	११	शक ...	" आ० "	४	८
शुध ...	दि० " अ०	२१	५	शगि ...	" प० "	४	२२
शुन्य ...	भ्वा० " से०	४	५	शण ...	" " "	११	२३
शुन्व ...	चु० उ० "	३२	८	शण ...	चु० " "	२७	१७
शुन ...	तु० प० "	२३	२२	शथ ...	क्या० " "	११	२४
शुभ ...	भ्वा० आ० "	११	७	शथ ...	चु० " "	२८	७
शुभ ...	" प० "	७	२४	शथ ...	" उ० "	३२	६
शुभ ...	त० " "	२३	१८	शथ ...	" " "	३२	२१
शुम्भ ...	भ्वा० " "	७	२४	शथि ...	भ्वा० आ० "	३	१४
शुम्भ ...	त० " "	२३	१८	शन्थ ...	क्या० प० "	२८	१३
शुल्क ...	चु० " "	३०	३	शन्थ ...	चु० उ० "	३२	१०
शुषव ...	" " "	३०	१	शसु ...	दि० प० "	२१	१०
शुष ...	दि० " अ०	२१	२	शम्भु ...	भ्वा० आ० "	७	१५
शूर ...	चु० आ० से०	३३	५	शकि ...	" " "	४	१०
शूरी ...	दि० " "	२०	१४	शगि ...	" प० "	४	२२
शूर्प ...	चु० प० "	३०	२	शथ ...	" " "	११	२४
शूल ...	भ्वा० " "	८	१	शकि ...	" आ० "	४	१२
शूष ...	" " "	१०	१७	शच ...	" " "	५	४
शृधु ...	भ्वा० आ० "	११	१०	शचि ...	" " "	५	४
शृधु ...	" उ० "	१३	८	शठ ...	चु० " "	२८	१२
शृधु ...	चु० " "	३१	१३	शठ ...	" उ० "	३२	१८
शृ ...	क्या० प० "	२८	२	शठि ...	" प० "	२८	१३
श्रीला ...	कं० " "	३४	११	शभ्र ...	" " "	३०	५
श्रील ...	भ्वा० " "	८	५	शत ...	" " "	३०	४
श्रीव ...	" आ० "	८	२०	शल ...	भ्वा० " "	८	६
श्री ...	" प० अ०	१३	२३	शल्ल ...	चु० " "	२८	१४
श्री ...	दि० " "	२०	८	शल्ल ...	भ्वा० " "	८	६
श्रीण ...	भ्वा० " से०	८	७	शल्ल ...	अ० " "	१७	२०

षकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
आ ...	भ्वा० ,, अ०	१२	२	षच ..	भ्वा० आ० से०	५	३
आ ...	अ० ,, ,,	१७	११	षच ..	" उ० "	१५	६
आखृ ...	भ्वा० ,, से०	४	२०	षञ्ज ..	" आ० अ०	१४	२२
आखृ ...	" आ० ,,	४	१६	षट् ..	" प० से०	६	१८
अिञ् ...	" उ० ,,	१३	१७	षणु ..	त० उ० "	२७	३
अिषु ..	" प० ,,	१०	२०	सत्र ..	तु० आ० "	३३	५
अिष ..	दि० ,, अ०	२१	३	षद् ..	" उ० "	३२	८
अिष ..	तु० ,, से०	२८	१६	षदलृ ..	भ्वा० प० अ०	१२	२४
अिषु ..	भ्वा० ,, ,,	१०	२०	षदलृ ..	तु० " "	२५	११
अिख ..	" " "	१५	१६	षन ..	भ्वा० " से०	८	८
अिवता ..	" " "	११	५	षप ..	" " "	७	१८
अिवदि ..	" आ० "	३	७	सपर ..	कं० " "	३४	७
अमौल ..	" " "	८	२५	सभाज ..	तु० उ० "	३२	२६
अीञ् ..	क्या० उ० अ०	२७	१२	षम ..	भ्वा० प० "	१२	१३
अच्युतिर् ..	भ्वा० प० से०	३	१८	समी ..	दि० " "	२१	१६
अु ..	" " अ०	१४	२	षम्ब ..	तु० " "	२८	१०
अ्यैङ् ..	" आ० ,,	१४	८	सम्भूयस् ..	कं० " "	३४	१६
अ्यै ..	" प० ,,	१३	२३	षर्ज ..	भ्वा० " "	५	१८
अ्योक्त ..	" आ० से०	४	८	षर्व ..	" " "	७	२२
अ्योणृ ..	" प० ,,	८	७	षर्व ..	" " "	८	१३
अ्योणृ ..	" " "	८	८	संवर ..	कं० " "	३४	१६
अ्यस्क ..	" आ० ,,	४	१३	षल ..	भ्वा० " "	८	१६
अिवु ..	" प० ,,	८	८	षल ..	" " "	८	६
अिवु ..	दि० ,, ,,	१८	१४	षस्ज ..	" " "	५	१३
षगे ..	भ्वा० ,, ,,	११	२१	षस ..	" " "	१८	२
षघ ..	स्वा० ,, ,,	२२	१५	षस्ति ..	" " "	१८	२
सङ्केत ..	तु० उ० ,,	३३	२	षह ..	" आ० "	१२	२१
सङ्ग्राम ..	" " "	३३	१५	सह ..	दि० प० "	१८	२०
				षह ..	तु० उ० से०	३२	९

प्रकाशदयः	गणादयः	पृ०	पं०	प्रकाशदयः	गणादयः	पृ०	पं०
साध ...	स्वा० प० अ०	२२	१०	षूद ...	चु० उ० से०	३१	८
षान्त ...	चु० " से०	२८	१४	सूच ...	भ्वा० आ०	१०	१४
साम ...	" उ० "	३२	२३	सूर्य ...	" प० "	८	२३
साम्ब ...	" प० "	२८	१०	सृ ...	" " अ०	१४	१
सार ...	" उ० "	३२	२१	सृ ...	चु० " "	१८	५
षिच ...	तु० " "	२५	१५	सृज ...	दि० आ० "	२०	२४
षिज् ...	स्वा० " अ०	२२	३	सृज ...	तु० प० से०	२५	८
षिज् ...	क्या० " "	२७	१३	सृष्ट ...	भ्वा० " "	१४	२१
षिट ...	भ्वा० प० से०	६	१७	पृभु ...	" " "	७	२३
षिधु ...	" " "	३	१८	पृभु ...	" " "	७	२४
षिधु ...	दि० " "	२१	५	सेक ...	" आ० "	४	८
षिधू ...	भ्वा० " "	३	१८	षेल् ...	" प० "	८	५
षिभु ...	" " "	७	२४	षेव ...	" आ० "	८	१८
षिभु ...	" " "	७	२४	षे ...	" प० अ०	१३	२३
षिल ...	तु० " "	२४	५	षो ...	दि० " "	२०	८
षिवु ...	दि० " "	१८	१४	स्कन्दि ...	भ्वा० प०	१४	२०
षु ...	भ्वा० " अ०	१४	२	स्कभि ...	" आ० से०	७	१४
षु ...	अ० " "	१७	४	खद ...	" " "	११	१४
षुज् ...	भ्वा० उ०	२२	३	खल ...	" प० "	८	५
सुख ...	चु० " से०	३३	१७	खलि ...	" " "	१२	४
सुख ...	कां० प०	३४	७	एक ...	" " "	११	२०
सुर ...	तु० " "	२३	२२	एगे ...	" " "	११	२१
सुह ...	दि० " "	१८	२०	एन ...	" " "	८	८
सू ...	तु० " "	२५	३	एभि ...	" आ० "	७	१४
षूड् ...	अ० आ० "	१६	१६	एम ...	" प० "	१२	१३
षूड् ...	दि० " "	२०	२	छल ...	" " "	१२	१४
सूच ...	चु० उ० "	३२	२२	रुन ...	चु० उ० "	३२	१८
सूत्र ...	" " "	३३	६	रुन ...	दि० प० "	१८	१६
षूद ...	भ्वा० आ० "	३	११	सब ...	भ्वा० अ०	३	५

सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	षकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
स्पदि ...	भ्वा० आ० से०	३	८	स्फिट् ...	बु० आ० से०	३०	८
स्पश ...	,, उ० ,,	१३	१२	स्मिङ् ...	भ्वा० ,, अ०	१४	५
स्फर ...	तु० प० ,,	२४	१२	स्मिङ् ...	बु० प० ,,	२८	१६
स्थन्दू ...	भ्वा० आ० ,,	११	१०	स्मिट् ...	,, ,, से०	२८	१५
स्यम ...	बु० ,, ,,	३०	२६	स्त्रिबु ...	दि० ,, ,,	१८	१४
स्यसु ...	भ्वा० प० ,,	१२	१३	स्त्रिदा ...	भ्वा० आ० ,,	११	५
स्त्रकि ...	,, आ० ,,	४	८	स्त्रिदा ...	,, प० ,,	१४	२०
स्त्रम्भु ...	,, ,, ,,	७	१४	स्त्रिदा ...	दि० ,, ,,	२१	४
स्त्रम्भु ...	,, ,, ,,	११	८	ष्टीम ...	,, ,, ,,	१८	१८
स्त्रंसु ...	,, ,, ,,	११	८	स्मील ...	भ्वा० ,, ,,	८	२५
त्वञ्ज ...	,, ,, अ०	१४	१७	स्कुञ् ...	क्या० उ० अ०	२७	१३
त्वद् ...	भ्वा० ,, से०	३	१०	स्कुदि ...	भ्वा० आ० से०	३	७
त्वद् ...	बु० उ० ,,	३१	२५	ष्टुच ...	,, ,, ,,	५	६
स्वन ...	भ्वा० प० ,,	१२	४	ष्टुज् ...	अ० उ० अ०	१७	७
स्वन ...	,, ,, ,,	१२	१३	ष्टुप् ...	बु० प० से०	३०	१८
त्वप ...	अ० ,, अ०	१७	१८	ष्टुभ ...	भ्वा० आ० ,,	७	१६
स्वर ...	बु० उ० से०	३२	१८	ष्णु ...	अ० प० अ०	१७	४
स्वर्द ...	भ्वा० आ० ,,	३	१०	स्तुसु ...	दि० ,, से०	१८	१५
ष्ठा ...	,, प० अ०	१३	२५	स्तुह ...	,, ,, ,,	२१	७
ष्णा ...	अ० ,, ,,	१७	११	स्फुट ...	भ्वा० आ० ,,	६	४
स्ना ...	भ्वा० ,, ,,	१२	६	स्फुट ...	तु० प० ,,	२४	८
स्फायी ...	,, आ० से०	८	१६	स्फुट ...	बु० उ० ,,	३१	१०
स्वाद ...	,, ,, ,,	३	१२	स्फुटिर् ...	भ्वा० प० ,,	६	२३
ष्टिष ...	स्वा० ,, ,,	१२	१२	स्फुड ...	तु० ,, ,,	२४	१३
ष्टिष्ट ...	भ्वा० ,, ,,	७	८	स्फुडि ...	बु० ,, ,,	२८	४
ष्टिम ...	दि० प० ,,	१८	१८	स्फुर ...	तु० ,, ,,	२४	१२
ष्णिह ...	,, ,, ,,	२१	७	स्फुर्का ...	भ्वा० ,, ,,	५	१६
ष्णिह ...	बु० ,, ,,	२८	१५	स्फुल ...	तु० ,, ,,	२४	१२
स्फिट ...	,, ,, ,,	२८	१५	स्सु ...	भ्वा० ,, अ०	१४	२

हकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	हकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
स्थूल ...	चु० उ० से०	३३	५	हय ...	भ्वा० प० से०	८	२३
स्फूर्जा ...	भ्वा० प०	५	२१	हयं ...	" " "	८	२४
ष्ट्व ...	" " "	१०	१२	हल ...	" " "	१२	१५
ष्टृह् ...	तु० " "	२४	२	हसे ...	" " "	१०	२४
स्टब्ज् ...	स्वा० उ० अ०	२२	४	हाक् ...	चु० " अ०	१८	१८
स्पृ ...	" प० "	२२	८	हाङ् ...	" आ० "	१८	१६
स्पृश ...	तु० " "	२५	८	हि ...	स्वा० प० "	२२	८
स्पृश ...	चु० आ० से०	३०	२२	हिक्र ...	भ्वा० उ० से०	१३	४
स्पृह ...	" उ० "	३२	२१	हिट ...	" प० "	६	२०
स्मृ ...	भ्वा० प० अ०	१२	१	हिठ ...	क्या० " "	२८	१८
स्मृ ...	" " "	१४	१	हिडि ...	भ्वा० आ०	६	६
स्मृ ...	स्वा० " "	२२	८	हिल ...	तु० प० "	२४	५
स्पृ ...	भ्वा० " "	१३	२६	हिवि ...	भ्वा० " "	८	१४
स्तृ ...	क्या० " से०	२८	२	हिक्र ...	चु० उ० "	३०	२४
स्तृब्ज् ...	" उ० "	२७	१७	हिसि ...	र० प० "	२६	१५
स्टेपृ ...	भ्वा० आ०	७	८	हु ...	चु० " अ०	१८	८
स्तेन ...	चु० उ० "	३३	२	हुडि ...	भ्वा० आ० से०	६	६
स्तेक ...	भ्वा० आ०	४	८	हुडि ...	" " "	६	८
स्त्यै ...	" प० अ०	१३	२२	हुडृ ...	" प० "	७	५
स्तै ...	" " "	१३	२३	ह्नुङ् ...	अ० आ० अ०	१८	५
स्त्यै ...	" " "	१३	२२	हुर्का ...	भ्वा० प० से०	५	१६
स्त्यै ...	" " "	१३	२४	हुल ...	" " "	१२	१७
स्तीम ...	चु० उ० से०	३३	१५	हुल ...	" " "	७	५
हट ...	भ्वा० प०	६	१८	हुडि ...	" " "	६	१०
हठ ...	" " "	६	२५	हु ...	" " अ०	१४	१
हद ...	" आ० अ०	१४	१७	हु ...	चु० " "	१८	५
हन ...	अ० प० "	१६	३	हुब्ज् ...	भ्वा० उ०	१३	१८
हम्म ...	भ्वा० " से०	८	१०	हुणीङ् ...	कं० आ० से०	३४	१३
				हृष ...	दि० प० "	२१	१८

हकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	हकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
हृषु ...	भ्वा०प०से०	१०	२२	ह्रगे ...	भ्वा०प०से०	११	२१
हेठ ...	" आ० "	६	६	ह्रस ...	" " "	१०	२३
हेड ...	" प० "	११	१८	ह्रल ...	" " "	१२	१
हेडृ ...	" आ० "	६	१०	ह्रल ...	" " "	१२	६
हेष्ट ...	" " "	७	११	ह्राद ...	" आ० "	३	१२
हेष्टृ ...	" " "	१०	१	ह्रादी ...	" " "	३	१२
होडृ ...	" प० "	७	५	ह्री ...	जु०प० अ०	१८	८
ह्रल ...	" " "	१२	१	ह्रीच्छ ...	भ्वा० "से०	५	१५
ह्रल ...	" " "	१२	६	ह्रनुड् ...	अ०आ०अ०	१८	५
ह्रप ...	उ० " "	३०	१४	ह्र ...	भ्वा०प०से०	१३	२६
ह्रगे ...	भ्वा० " "	११	२१	ह्रष्ट ...	" आ० "	१०	१
ह्रस ...	" " "	१०	२२	ह्रज् ...	" उ० "	१५	१३

इति ॥

वेदाङ्गप्रकाशः ।



ये पुस्तकें “वैदिकयन्त्रालय” अजमेर में रोक दाम भेजने से मिल सकती हैं:—

१	वर्णोच्चारणशिक्षा	७
२	संधिविषय	१३७॥
३	नामिक	१३७॥
४	कारकीय	१७७॥
५	सामासिक	१३७॥
६	स्त्रैशताद्वित	१३७
७	अव्ययार्थ	१३७॥
८	आख्यातिक	१३३७
९	सौवर	१३७॥
१०.	पारिभाषिक	१३७॥
११	धातुपाठ	१
१२	गणपाठ	१७७
१३	उणादिकोष	१३७
१४	निघंटु	१३७
	योग	६३३७॥

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावे (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० व इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमौशन के पुस्तक अधिक भेजे जायगे (३) डाकमहसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जायगे

(४) मूल्य नापालख पत स भज आर पता तथा आग्रय स्पष्टालख ॥

		मू० डा०	
ऋग्वेदभाष्य अ० १—१४७	४८)		
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	३८)		
	मू० डा०		
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका			
विना जिल्द की	३)	१)	१)
" जिल्द की	३॥)	१)	१)
वर्णोच्चारणशिक्षा	१)	१)	१)
सन्धिविषय	११)	१)	१)
नामिक	११)	१)	१)
कारकीय	११)	१)	१)
सामासिक	११)	१)	१)
स्वैयतादित	११)	१)	१)
अव्ययार्थ	११)	१)	१)
सौवर	१)	१)	१)
आख्यातिक	१॥)	१)	१)
पारिभाषिक	११)	१)	१)
धातुपाठ	११)	१)	१)
गणपाठ	११)	१)	१)
उणादिकोष	११)	१)	१)
निघण्टु	११)	१)	१)
अष्टाध्यायी मूल	११)	१)	१)
संस्कृतवाक्यप्रबोध	१)	१)	१)
हवनमन्त्र	१॥)	१)	१)
		मू० डा०	
		व्यवहारभानु	१)
		भ्रमोच्छेदन	१)
		अनुभ्रमोच्छेदन	१)
		मेलालंकारपुर	१)
		आर्योद्दिश्यरत्नमाला	१)
		गोकर्णानिधि	१)
		स्वामीनारायणमतखण्डन	
		गुजराती	१)
		वेदविस्मृतखण्डन	१)
		स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१)
		शास्त्रार्थ फीरोजावाद	१)
		शास्त्रार्थकाशी	१)
		आर्याभिविनय	१)
		" जिल्द की	१)
		वेदान्तिध्वान्तनिवारण	१)
		भ्रान्तिनिवारण	१)
		पञ्चमहायज्ञविधि	१)
		" जिल्द की	१)
		आर्यसमाज के नियमो-	
		पनियम	१)
		सत्यार्थप्रकाश	१॥)
		" जिल्दका	१॥)
		संस्कारविधि	१॥)

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—अजमेर

॥ अथ वदः प्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्दशो भागः ॥

ग ण पा ठः ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम्

एकादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर

में मुद्रित हुआ

—*○*—

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्ट्री कराई गई है ॥

—*○:○:○*—

दूसरी बार १०००

}

संवत् १९५५ वि०

}

मूल्य १८

अथ गणानां सूचीपत्रम् ॥

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
अ			उञ्छादयः	५०	१६
अनृत्तादयः	३६	१९	उत्करादयः	२८	२३
अङ्गुल्यादयः	४७	२६	उत्सादयः	१७	४
अजादयः	१४	९	उत्संगादयः	३६	१०
अजिरादयः	५४	५	उद्गात्रादयः	४२	६
अध्यात्मादयः	३२	१६	उपकादयः	१२	७
अनुप्रवचनादयः	४०	८	उरःप्रभृतयः	५०	४
अनुशक्त्यादयः	५५	३	ऊ		
अपूपादयः	३८	१२	ऊर्यादयः	३	५
अर्द्धादयः	६	११	ऋ		
अर्शनादयः	४६	११	ऋगयनादयः	३२	५
अरीहणादयः	२६	८	ऋरयादयः	२६	१८
अश्मादयः	२७	६	ऐ		
अश्वादयः	२०	१	ऐषुकार्यादयः	२४	१७
अश्वादयः	५३	१९	क		
अश्वदयः	३९	३	कच्छादयः	३१	४
अश्वपत्यादयः	१७	४	कडारादयः	८	११
आ			कणवादयः	३०	६
आकर्षादयः	४४	१६	कठ्यादयः	२६	११
आचितादयः	५३	५	कथादयः	३७	१६
आहिताग्न्यादयः	८	४	कक्यादयः	५२	८
उ					
उक्थादयः	२५	१			

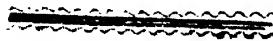
गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
वर्णादयः	२८	१२	ग		
कर्णादयः	४३	१२	गम्यादयः	१३	१३
कल्याण्यादयः	२१	१३	गगादयः	१६	१३
कंषोजादयः	२३	६	गवादयः	३८	४
कस्कादयः	५६	५	गवाश्वप्रभृतयः	८	२१
क्रत्वादयः	५२	१५	गहादयः	३१	१०
क्रमादयः	२५	६	गुडादयः	३७	२४
कार्तिकौजपादयः	५१	४	गृष्ट्यादयः	२१	१८
काशादयः	२६	२६	गोपवनादयः	११	१५
काश्यादयः	३०	११	गोपदादयः	४४	१०
काष्ठादयः	५५	१६	गौरादयः	१५	७
किशरादयः	३७	४	गौरादयः	५३	२४
किशुलादयः	५४	१०	घ		
कुञ्जादयः	१८	८	घोषादयः	५२	१
कुम्भपदीप्रभृतयः	५०	७	च		
कुमुदादयः	२८	६	चतुर्वर्णादयः	४१	२०
कुमुदादयः	२६	२२	चादयः	२	११
कुर्वादयः	२२	३	चिहणादयः	५२	१८
कुलालादयः	३४	६	चूर्णादयः	५२	२३
कुभ्नादयः	५६	२२	छ		
कृतापकृतादयः	५	२१	छत्रादयः	३७	८
कृशाशवादयः	२६	१४	छेदादयः	३९	१३
कोटरादयः	५४	१०	त		
क्रोडादयः	१६	७	तक्षादयः	३३	२१
क्रौञ्चादयः	१६	२१	तारकादयः	४३	१७
ख					
खारिकादयः	२३	२२			

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
तालादयः	३४	१	प		
तिकाकितवादयः	१२	१	पक्षादयः	२७	१७
तिकादयः	२२	१३	प्रगदिनादयः	२७	२७
तिष्ठद्गुप्रभृतयः	४	७	प्रकृत्यादयः	८	१६
मुन्दादयः	४६	७	प्रज्ञादयः	४६	११
तृणादयः	२७	१	प्रतिजनादयः	३७	१४
तौल्वत्यादयः	१०	२२	परिमुखादयः	३२	१४
द			पर्पादयः	३५	२३
दण्डादयः	३६	१८	पश्वादयः	४८	११
दधिष्यआदयः	६	३	पलद्यादयः	२६	२३
दामन्यादयः	४८	७	पलाशादयः	३४	१७
दासीभारादयः	५१	१८	स्रक्षादयः	३५	११
द्वारादयः	५४	२२	प्रवृद्धादयः	५३	९
दिगादयः	३२	२६	पात्रेसम्मितादयः	४	२१
द्विदण्डादयः	४६	१९	पामादयः	४५	१६
हठादयः	४०	२१	पाशादयः	२४	४
देवषथादयः	४७	१९	प्रादयः	३	८
ध			पिच्छादयः	४५	१६
धूमादयः	३०	१६	प्रियादयः	५४	४
न			पील्वादयः	४३	११
नडादयः	१८	१३	पुरोहितादयः	४१	२४
नडादयः	९६	७	पुष्करादयः	४७	१
नद्यादयः	२६	१६	पृथ्वादयः	४०	१४
न्यङ्कादयः	५५	६	प्रैक्षादयः	२७	३
निरुक्तादयः	५३	१३	पैलादयः	१०	१५
निष्कादयः	३८	१६	व		
			नडादयः	२७	१५

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
बलादयः	४७	७	यौधेयादयः	२३	१२
ब्राह्मणादयः	४१	४	यौधेयादयः	४८	१५
ब्रिदादयः	१६	४४	र		
बिल्वादयः	३४	१२	रजतादयः	३५	६
ब्रीह्यादयः	४६	१	रसादयः	४४	२३
भ			राजदन्तादयः	७	१४
मर्गादयः	२३	११	राजन्यादयः	२४	९
मस्त्रादयः	३६	१४	रेवत्यादयः	२१	२३
भिन्नादयः	२३	१७	ल		
भिदादयः	१३	१८	लोमादयः	४५	१६
भीमादयः	१५	३	लोहितादयः	१३	९
भृशादयः	१३	३	व		
भौरिक्यादयः	२४	१६	वनस्पत्यादयः	५२	२७
म			वरणादयः	२८	११
मध्वादयः	२८	१६	वराहादयः	२८	३
मनोज्ञादयः	४३	३	वंशादयः	३६	८
मयूरव्यंसकादयः	६	८	वसंतादयः	२५	१०
महिष्यादयः	३६	२४	वह्नादयः	१५	२३
मालादयः	५२	१२	व्याघ्रादयः	५	१०
य			वाकिनादयः	१	२३
यवादयः	५५	२३	वाह्नादयः	१७	१९
यस्कादयः	११	६	विनयादयः	४६	५
याजकादयः	७	८	विमुक्तादयः	४४	३
यावादयः	४८	२४	व्युष्टादयः	३६	२३
युक्तारोह्यादयः	५१	२२	वृषादयः	५०	२५
युवादयः	४२	१७	वेतनादयः	३६	४

गणाना सूचापत्रम् ॥

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
श			संधिवेलादयः	३१	२१
शण्डिकादयः	३३	१३	संपदादयः	१३	२३
शर्करादयः	४७	२१	सर्वादयः	१	६
शरादयः	३४	२२	सवनादयः	५६	१७
शरादयः	५४	१८	स्वरादयः	१	१३
शाकपार्थिवादयः	६	३	स्वस्त्रादयः	१५	३
शाखादयः	४७	१७	साक्षात्प्रभृतयः	३	२२
शार्ङ्गरवादयः	१६	१३	स्वागतादयः	५४	२६
शिवादयः	२०	१३	सिध्मादयः	४५	४
शुण्डिकादयः	३३	८	सिंध्वादयः	३३	१६
शुभ्रादयः	२१	१	सुखादयः	४६	१६
श्रेण्यादयः	५	१५	सुतंगमादयः	२७	२४
शौण्डादयः	४	१७	सुवास्त्वादयः	२५	२४
शौनकादयः	३३	२७	सुषामादयः	५६	१०
स			स्थूलादयः	४८	१६
संकलादयः	२५	१६	ह		
संकाशादयः	२७	१२	हरीतक्यादयः	३५	१७
सरूयादयः	२७	८	हस्त्यादयः	५०	४
संतापादयः	४०	१			



भूमिका ।

इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस लिये है कि एकत्र मिला के बहुत २ शब्दों का समुदाय पठित है । यह पुस्तक पाणिनि मुनि जी का बनाया है इस के कार्यकर अष्टाध्यायी के सूत्र हैं यद्यपि काशिकादि पुस्तकों में तत्तत् सूत्र पर गणपाठ भी छप गया है तथापि बीच २ सूत्रों के दूर २ होने से गण भी दूर २ हैं इस से कण्ठस्थ करना विचारना वा अनुवृत्तिकरना कठिन होता था इस लिये उस २ गणकार्य सूत्र को सार्थक लिख कर एक दो उदाहरण देके जहां २ एक ऐमा (:-) चिन्ह बना के लिखा है वहां २ से गण पाठ का आरम्भ समझना चाहिये और जिस २ शब्द की विशेष व्याख्या अपेक्षित थी उस २ पर एक आदि अङ्क लिख और रेखा देकर नीचे विवरण (जिस को नोट कहते हैं) लिखा है । उस को भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये इन के अर्थ अष्टाध्यायी निरुक्त निघण्टु और उणादिकोप तथा प्रकृति प्रत्ययादि की ऊहां से समझ लेना योग्य है । यद्यपि भ्वादि और उणादि भी एक २ सूत्र पर गण हैं तो भी उन के बड़े और विलक्षण (१) होने से पृथक् श्रीपाणिनि मुनि जी ने लिखे हैं और सूत्र के समान वार्त्तिक गण हैं उन को भी वार्त्तिक के आगे लिख दिया है जो साधारणता से व्याकरण के बोध युक्त हैं वे भी इन का रूप और अर्थ पढ़ पढ़ा सकते हैं ॥

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमाणेषु ॥

स्थान महाराणाजी का उदयपुर
मिति माघ शुक्ला १० सं० १९३६ }

दयानन्द सरस्वती

(१) भ्वादि धातु अनुबन्ध सहित और उणादि में प्रकृतिप्रत्ययसाधुत्व पूर्वक लेख है और सर्वादि में सिद्ध शब्दों का पाठ अनुक्रम से है इसी लिये उन दोनों गणों से यह और इस से वे पृथक् २ रखे हैं ।

अथ गणपाठः ।

—(0)—

१—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ अ० ॥ १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि प्रतिपदिकानि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । सर्वे । सर्वस्मै । सर्वेषां नामानि सर्वनामानीति समासेनान्वर्थसंज्ञाविज्ञानात् सर्वो नाम कश्चिन् मनुष्यविशेषस्तस्मै सर्वाय देहीति सर्वनामसंज्ञा न भवति । अत एव विशेषणवाचकानि सर्वादीनि प्रादिपदिकानि विज्ञेयानि—

सर्व । विश्व । उभ । उभय । डतर । डतम । इतर । अन्य । अन्यतर । त्व । त्वत् । नेम । सम (१) सिम (२) पूर्वपरावरदाक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायाम-
संज्ञायाम् ॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ अन्तरम्बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । युष्मद् । अस्मद् । भवतु । किम् । इति सर्वादिर्गणः ॥

२—स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयश्च निपाताश्चैषां समाहारः स्वरादिनिपातमव्ययसंज्ञं भवति । निपाताश्चादयो वक्ष्यन्ते—

स्वर । अन्तर । प्रातर । एते अन्तोदात्ताः । पुनर् । आद्युदात्तः । सनुतर् । उच्चैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् । आरात् । ऋते । युगपत् । पृथक् । अन्तोदात्ताः । ह्यस् । श्वस् । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् । ईषत् । जोषम् । तूष्णीम् । बहिस् । आविस् । अवस् । अधस् । समया । निकषा । स्वयम् । मृषा । नक्तम् । नञ् । हेतौ । अद्धा । इद्धा । सामि । ह्यस्प्रभृतयोऽप्यन्तोदात्ताः । वत् (३) सन् । सनात् । सनत् ।

(१) सूत्रान्तरे समानामिति निर्देशात्सर्वपर्यायस्यैव समशब्दस्य सर्वनामसंज्ञेप्यते तेन तुल्यवाचकस्य न भवति ॥

(२) इमानि त्रीणि सूत्राण्यष्टाध्याय्यामपि पठ्यन्ते । तत्र जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञा । अत्र तु सामान्येन ॥

(३) वदिति तदन्तस्य वतिप्रत्ययान्तस्य ग्रहणम् । ब्राह्मणवत् । क्षत्रियवत् । स्थानिवत् । इत्यादि ॥

तिरस् । एत आद्युदात्ताः । अन्तरा । अयमन्तोदात्तः । अन्तरेण । ज्योक् । कम् । शम् । सना । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् । वषट् । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दोषा । मुधा । मिथ्या । (१) क्त्वातोऽनुकसुनः । कृ-
न्मेकारान्तः सन्ध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च ॥ पुरा । मिथो । मिथस् । प्रबाहुकम् । आर्य-
हलम् । अभीक्षणम् । साकम् । सार्द्धम् । समम् । नमस् । हिरूक् । (२) तसिलादयः
प्राक्पाशवः । शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । मान्तः । कृत्वर्थः । तसिः । आच्यालौ ।
प्रतान् । प्रशान् । इति स्वरादिर्गणः ॥

३—चादयोऽसत्त्वे ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यवाचकाश्चादयो निपातसंज्ञा भवान्त । असत्त्व इति किम् । पशुर्वैपुरुषः ।
अत्र पशुशब्दस्य द्रव्यवाचकत्वादव्ययसंज्ञा न भवति—

च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् । युगपत् । सूपत् । कूपत् ।
कुषित् । नेत् । चेत् । चण् । कचित् । यत्र । नह । हन्त । माकिम् । नकिम् । माङ् ।
नज् । यावत् । तावत् । त्वा । त्वै । द्वै । रै । श्रौषट् । वौषट् । स्वाहा । वषट् । स्वधा ।
ओम् । किल । तथा । अथ । सु । स्म । अस्मि । अ । इ । उ । ऋ । लृ । ए । ऐ ।
ओ । औ । अम् । तक् । उज् । उकज् । वेलायाम् । मात्रायाम् । यथा । यत् । यम् ।
तत् । किम् । पुरा । अद्धा । धिक् । हाहा । हे । है । प्याट् । पाट् । थाट् । अहो ।
उताहो । हो । तुम् । तथाहि । खलु । आम् । आहो । अथो । ननु । मन्ये । मिथ्या ।
असि । ब्रूहि । तु । नु । इति । इव । वत् । चन । बत । इह । शम् । कम् । अनु-
कम् । नहिकम् । हिकम् । सुकम् । त्यम् । ऋतम् । वाकिर् । नकिर् । आङ् । अ ।
मा । नो । ना । वाकिरादयः । प्रतिषेधे । उत । दह । अद्धा । इद्धा । मुधा । नोनेत् ।
नचेत् । नहि । जातु । कथम् । कुतः । कुत्र । अव । अनु । हाहौ । हैहा । ईहा । आ-
होस्वित् । छम्बट् । खम् । दिप्प्या । पशु । वट् । सह । आनुषक् । अङ्ग । फट् ।
ताजक् । अये । अरे । चटु । बाट् । कुम् । खुम् । घुम् । हुम् । आईम् । शीम् । सम् । वै ।

(१) क्त्वादीनामष्टाध्याय्यां सूत्रपाठग्रहणमास्ति । तेषामेवात्र स्वरादिषु परिगणनं
कृतम् । न कश्चिद्विशेषः ॥

(२) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिरिति सूत्रेण येषामव्ययसंज्ञा तेषामेव तद्धितप्रत्यया-
नामत्र विस्पष्टार्थं परिगणनम् ॥

त्वे । तुवै । न्वै । नुवे । अध । अधम् । स्मि । अच्छ । अदल् । दह । हेहे । हैहै । नै । म ।
आस् । शस् । शुकम् । शम् । वव । वात् । डिकम् । हिनुक । वशम् । शिकम् । श्वकम् ।
सनुकम् । नुकम् । अन्त । द्यौ । सुक् । भाजक् । अले । वट् । वाट् । किम् । उपसर्ग-
विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः (१) इति चादिर्गणः ॥

४-प्रादयः ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५८ ॥

असत्त्ववाचकाः प्रादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । परामृशति । पराजयते इत्यादि ।
असत्त्व इति किम् । परा जयति सेना । अत्रोपसर्गसंज्ञयाऽऽत्मनेपदं मा भूत्—
प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि ।
अधि । अपि । अति । सु । उत् । अमि । प्रति । परि । उप । इति प्रादयः ॥

५-ऊर्यादिविडाचश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्यादयः शब्दाश्च्यन्ता डानन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञा भवन्ति । च्वि । शुक्ली-
कृत्य । शुक्लीकृतम् । डाच् । पटपटाकृत्य । पटपटाकृतम् । ऊरीकृत्य । शुक्ली करोति ।
पटपटाकरोति । ऊरीकरोति । इत्यादि—

ऊरी । उररी । पापी । ताली । आताली । वेताली । धूसी । शकला । संशकला ।
ध्वंसकला । अंशकला ॥ शकलादयो हिंसायाम् ॥ गुलुगुधा पीडार्थे ॥ सजूः सहार्थे ॥
फलू, फली, विक्री, आक्ली । इति विकारे ॥ आलोष्टी । कराली । केवाली । शेवाली ।
वर्षाली । मसमसा । मसमसा । एतेहिंसायाम् । वषट् । वौषट् । श्रौषट् । स्वाहा । स्वधा ।
बन्धा । प्रादुस् । श्रत् । आवित् । इत्यूर्यादयः ॥

६-साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ७४ ॥

साक्षादादीनि प्रातिपदिकानि कृञ्योगे विभाषा गतिसंज्ञानि भवन्ति । असाक्षात्
साक्षात्कृत्वा । साक्षात्कृत्य । साक्षात्कृत्वा । इत्यादि—

साक्षात् । मिथ्या । चिन्ता । भद्रा । लोचना । विभाषा । सम्पत्का । आस्था । अमा ।
श्रद्धा । प्राजर्या । प्राजरुहा । वीजर्या । वीजरुहा । संसर्या । अर्थे । लवणम् । उष्णम् ।

(१) उपसर्गप्रतिरूपकाः । अवदत्तम् । विदत्तम् । प्रदत्तम् । अत्राच उपसर्गादि-
ति तत्त्वं न भवति । विभक्ति प्रतिरूपकाः । चिरेण । चिरात् । चिराय । इत्यादयः
स्वरप्रतिरूपकाः— अ । इ । उ । ऋ । ए । ओ । इत्येवमादयः ॥

शीतम् । उदकम् । आर्द्रम् । (१) अग्नी । वशे । विकम्पने । विहसने । प्रहसने । प्रतपने । प्रादुस् । नमस् । आविस् । इति साक्षात्प्रभृतयः ॥

७-तिष्ठद्गुप्रभृतीनिच ॥ अ० ॥ २ । १ । १७ ॥

तिष्ठद्गुवाद्यः समुदायाः कृतसमासा अव्ययीभावसंज्ञका विभाषया निपात्यन्ते । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः । खलेयवादीनि प्रथमान्तानि विभक्त्यन्तरेण नैव संबध्यन्ते । अन्यपदार्थे च काले वर्तन्ते ।

तिष्ठद्गु । वहद्गु । आयतीगवम् । खलेयवम् । खलेबुसम् । नूनयवम् । लूयमानयवम् । पूतयवम् । पूयमानयवम् । संहृतयवम् । संह्रियमाणयवम् । संहृतबुसम् । संह्रियमाणबुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुपमम् । विषमम् । निष्पमम् । दुष्पमम् । अपरसमम् । आयतीसमम् । प्राह्णम् । प्रथम् । प्रमृगम् । प्रदक्षिणम् । अपरदक्षिणम् । सम्प्रति । असम्प्रति । पापसमम् । पुण्यसमम् । इच्छकर्मव्यतिहारे (२) इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः ॥

८-सप्तमी शौण्डैः ॥ अ० ॥ २ । १ । ४० ॥

शौण्डैरिति बहुवचनादेव गणनिर्देशः । सप्तम्यन्तमुच्यन्तं शौण्डादिभिः सह विभाषा समस्यते सप्तमीतत्पुरुषश्च स समासो भवति । अक्षेपु धूर्त्तोऽक्षधूर्त्तः । अक्षाकितवः । इत्यादि—

शौण्ड । धूर्त्त । कितव । व्याड । प्रवीण । संवीत । अन्तर । अधिपटु । परिडत । कुशल । चपल । निपुण । संव्याड । मन्थ । समीर । इति शौण्डादयः ॥

९-पात्रेसंमितादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ४८ ॥

पात्रे संमितादयाः समुदायाः क्षेपे गम्यमाने सप्तमीतत्पुरुषसंज्ञा निपात्यन्तेः—

(३) पात्रेसम्मिताः । पात्रेबहुलाः । उदरकुमिः । कूपकच्छपः । कूपचूर्णकः । अवटकच्छपः । कूपमण्डूकः । कुम्भमण्डूकः । उदपानमण्डूकः । नगरकाकः । नगरवायसः ।

(१) लवणादय आर्द्रपर्यन्ताः शब्दा गतिसंज्ञासम्बन्धेन मकारान्ता निपात्यन्ते नतु सर्वत्र ॥

(२) कर्मव्यतिहारेऽर्थे समासान्तो इच्छप्रत्ययान्ता अपि शब्दा अव्ययीभावसंज्ञा भवन्ति । दण्डादण्डि । मुसलामुसलि । नखानखि । केशाकेशि । इत्यादि ॥

(३) येऽत्र गणे क्तान्तास्तत्र क्षेप इति पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे पुनः पाठो युक्तारोह्याद्यन्तर्गतपात्रेसम्मितादीनां पूर्वपदाद्युदात्तार्थः ॥

मातरिपुरुषः । पिण्डीशूरः । गेहेशूरः । गेहेनर्दी । गेहेह्वेडी । गेहेविजिती । गेहेव्याडः । गेहेतुसः । गेहेधृष्टः । गर्भेतुसः । आखनिकवकः । गोष्ठेशूरः । गोष्ठेविजिता । गोष्ठेह्वेडी । गेहेमेही । गोष्ठेपटुः । गोष्ठेपण्डितः । गोष्ठेप्रगल्भः । कर्णेष्टिष्टिभः । कर्णेचुरचुरा । आकृतिगणोयम् ॥

१०-उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ अ० ॥ २।१।५६ ॥

सामान्यधर्मस्याप्रयोगे सत्युपमेयवाचि सुबन्तमुपमानवचनैर्व्याघ्रादिभिः सह विभाषा समस्यते स समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो भवति व्याघ्र इव पुरुषः पुरुषव्याघ्रः । पुरुषसिंहः । इत्यादि । सामान्याप्रयोग इति किम् । पुरुषो व्याघ्र इव शूरः । उपमानोपमेयप्रधानो धर्मः शूरत्वमत्र प्रयुज्यतेऽतः समासनिषेधः-

व्याघ्र । सिंह । ऋजु । ऋपभ । चन्दन । वृक्ष । वृष । वराह । हस्तिन् । कुञ्जर । रुरु । पृषत । पुण्डरीक । बलाहक (१) आकृतिगणोऽयम् । इति व्याघ्रादयः ॥

११-श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ अ० ॥ २ । १ । ५९

श्रेण्यादयः सुबन्ताः कृतादिभिः समानाधिकरणैः सह विभाषा समस्यन्ते । अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृताः (२) एककृता वसन्ति वाणिजः । इत्यादि-

श्रेणि । एक । पूग । कुण्ड । राशि । विशिख । निचय । निधान । इन्द्र । देव । मुण्ड । भूत । श्रवण । वदान्य । अध्यापक । ब्राह्मण । क्षत्रिय । पटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण । कृपण । इतिश्रेण्यादयः । कृत । मित । मत । भूत । उक्त । समाज्ञात । समान्नात । समारूयात । सम्भावित । अवधारित । निराकृत । अवकल्पित । उपकृत । उपाकृत । आकृतिगणोऽयम् । इति कृतादयः ॥

१२-वा० कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् (३) ॥ २।१।६० ॥

कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गतप्रत्यागतम् । यातानुयातम् । क्रयाक्रयिका । पुटापुटिका । फलाफलिका । मानोन्मानिका । इतिकृतापकृतादयः ।

(१) अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति । मुखं पद्ममिव, मुखपद्मम् । मुखकमलम् । करकिसलयम् । पार्थिवचन्द्रः ॥

(२) अत्र श्रेण्यादिषु च्यर्थ वचनमिति वार्तिकेन च्यर्थलाभः । यदा च च्यन्ताः श्रेण्यादयस्तदा च्विप्रत्ययान्तानां गतिसंज्ञत्वात्गतिप्रादय इति नित्यसमासः श्रेणीकृताः इत्यादि ॥

(३) अनञ्विशिष्टकान्तेनापि समासो यथास्यादिति वार्तिकम् । कृतं चापकृतं च कृतापकृतं । वार्तिकोपरि तत्सूत्रसंख्या सर्वत्र धरिष्यते । यस्योपरि महाभाष्ये वार्तिकमस्ति ॥

**१३-वा०-समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामु-
पसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च (१) २ । १ । ६९ ॥**

शाकभोजी पार्थिवः शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । अजातौल्बलिः । यष्टिमौद्गल्यः ।
इत्यादि ॥

१४-मयूरव्यंसकादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ७२ ॥

मयूरव्यंसकादयः समुदायाः कृतसमासाः समानाधिकरणतत्पुरुषसंज्ञका निपात्यन्ते ।
चकारो निश्चयार्थः । परममयूरव्यंसकइतिसमासान्तरं न भवति—

मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः (२) । काम्बोजमुण्डः । यवनमुण्डः । (३)
छन्दसि । हस्तेगृह्य । पादेगृह्य । लाङ्गूलेगृह्य । पुनर्दाय ॥ (४) एहीडादयोऽन्यप-
दार्थे ॥ एहीडम् । एहियवं वर्त्तते । एहिवाणिजाक्रिया । अपोहिवाणिजा । प्रेहिवाणिजा ।
एहिस्वागता । अपोहिस्वागता । प्रेहिस्वागता । एहिद्वितीया । अपोहिद्वितीया । प्रोहकटा ।
अपोहकटा । प्रोहकर्दमा । अपोहकर्दमा । उद्धरचूडा । आहरचेला । आहरवसना । आ-
हरवनिता । कृन्तविचक्षणा । उद्धरोत्पृजा । उद्धमविधमा । उत्पचविषा । उत्पतनि-
पता । उच्चावचम् । उच्चनीचम् । अपचितोपचितम् । अवाचितपराचितम् । निश्चप्रचम् ।
अकिंचनम् । स्नात्वाकालकः । पित्वास्थिरकः । भुक्त्वा सुहितः । प्रोप्य पापीयान् । उत्प-
त्यव्याकुला । निपत्यरोहिणी । निपण्णश्यामा । अपोहिप्रघसा । इहपञ्चमी । इहद्विती-
या । जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्त्तारंचाभिदधाति (५) । जहिजोडः

(१) शाकपार्थिवादिषु समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो यथा स्यात् । पूर्वसमासे
यदुत्तरपदं तस्य च लोपः । यथा दृष्टं विज्ञेयम् ॥

(२) मयूर इव व्यंसको भूतो मयूरव्यंसकः । छात्र इव व्यंसकः । काम्बोज इव
मुण्डः । इत्युपमानसमासापवादोऽयं समासः ॥

(३) अतोऽग्रेचत्वारः शब्दाश्छन्दसि वेदविषये निपात्यन्ते ॥

(४) त्वं यस्येडामन्नंस्तुतिं वा—एहि प्राप्नुहि तत् एहीडम् । एवमेहियवादिषु
यथाप्रयोगमर्थानुकूलः समासोऽज्ञेयः ॥

(५) जहिक्रियाऽऽभीक्ष्ण्येऽर्थे स्वेनैव कर्मणा सह बहुलंसमस्यते समाससमुदा-
यश्च कर्त्तृवाचको भवति । त्वंजोडंजहि, इति जहिजोडस्त्वम् । उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः ।
इत्यादि । आख्यातः क्रियाशब्द आख्यातेनैव सह समस्यते । अरनीत च पिबति च,
इति समासे कृते प्रातिपदिकसंज्ञायां क्रियाविशेषणे टाप् । अरनीतपिबता । इत्यादि ॥

उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । उज्जहिस्तम्बः । (आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये) ॥
अशनीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता । खादताचमता । आहरनिवपा । आवपनि-
प्किरा । उत्पचविपचां । भिन्दिलवणा । छिन्दिविचक्षणा । पचलवणा । पचप्रकूटा । (१)
इतिमयूरव्यंसकादयः ॥

१५-याजकादिभिश्च ॥ अ० ॥ २ । २ । ९ ॥

पष्ठचन्तं सुबन्तं याजकादिभिः सुबन्तैः सह समस्यते स पष्ठीतत्पुरुषः समासो भ-
वति । ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः । प्रतिपेधबाधकामिदं सूत्रम् :-

याजक । पूजक । परिचारक । परिषेचक । परिवेषक । स्नातक । अध्यापक । उ-
त्सादक । उद्वर्त्तक । हर्त् । वर्त्तक । होतृ । पोतृ । मर्त् । रथगणक । पतिगणक । इति
याजकादयः ॥

१६-राजदन्तादिषु परम् ॥ अ० । २ । २ । ३१ ॥

राजदन्तादिषु परमुपसर्जनं प्रयोक्तव्यम् । पूर्वनिपातापवादः । दन्तानां राजा, राज-
दन्तः । अनेन दन्तशब्दस्य पूर्वनिपातो बाध्यते । :-

राजदन्तः । अग्रेवणम् । लिप्तवासितम् । नग्नमुषितम् । सिक्तसंमृष्टम् । मृष्टलुञ्चि-
तम् । अवक्लिन्नपक्वम् । अर्पितोत्तम् । उत्तगाढम् । उलूखलमुसलम् । तरडुलाकिण्वम् ।
दृषदुपलम् । आरग्वायनबन्धकी । चित्ररथबाह्लीकम् । आवन्त्यशमकम् । शूद्रार्यम् ।
स्नातकराजानौ । विश्वकुसेनार्जुनौ । अन्निभ्रुवम् । दारगवम् । धर्मार्थौ । अर्थधर्मौ । का-
मार्थौ । अर्थकामौ । शब्दार्थौ (२) । अर्थशब्दौ । वैकारिमतम् । गजवाजम् । गोपा-
लधानीपूलासम् । पूलासककरण्डम् । स्थूलपूलासम् । उशीरबीजम् । सिञ्जास्थम् । चि-
त्रास्त्रज्ञी । भार्यापती । जायापती (३) । जम्पती । दम्पती । पुत्रपती । पुत्रपशू । के-
शशमश्रू । शमश्रुकेशौ । शिरोबीजम् । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिणी । आद्यन्तौ । अन्तादी
गुणवृद्धौ । वृद्धिगुणौ । इति राजदन्तादयः ॥

(१) अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः ॥

(२) धर्मादिषुभयमिति वार्त्तिकेन कृतद्वन्द्वयोर्द्वयोरपि पर्यायेण पूर्वनिपातः ।
अत्र गणान्तेऽपि केशादयो धर्मादिषु द्रष्टव्याः ॥

(३) अत्र जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते । अस्मिन् गणे सर्वेषु
समासेषूपसर्जनमनुपसर्जनं वा निपात्यते । सर्वेषां च यथाप्राप्तानामपवादः ॥

१७-वाऽऽहिताग्न्यादिषु ॥ अ० ॥ २ । २ । ३७ ॥

आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तस्य विभाषा पूर्वनिपातो भवति पक्षे च परनिपातः । आ-
हितोऽग्निर्येन सः :-

आहिताग्निः । अग्न्याहितः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । जातश्मश्रुः ।
तैलपीतः । घृतपीतः । ऊढभार्यः । गतार्थः । आकृतिगणोऽयम् (१) । इत्याहिता-
ग्न्यादयः ॥

१८-कडाराः कर्मधारये ॥ अ० ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारये समासे कडारादयः शब्दा विभाषा पूर्वप्रयोक्तव्याः । कडारश्चासौ जै-
मिनिश्च कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः । इत्यादि । कडारादीनां गुणवाचकत्वाद्विशेषणस्य
पूर्वनिपातः प्राप्तः स बाध्यते :-

कडार । गडुल । काण । खञ्ज । कुण्ठ । खञ्जर । खलति । गौर । वृद्ध । भि-
क्षुक । पिङ्गल । तनु । वटर । इति कडारादयः । कर्मधारय इति किम् । कडारपुरु-
षोग्रामः । अत्र बहुव्रीहौ मा भूत् ॥

१९-वा०-तृतीयाविधानेप्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्

(२) ॥ २ । ३ । १८ ॥

प्रकृति । प्राय । गोत्र । सम । विपम । द्विद्रोण । पञ्चक । साहस्र । आकृतिग-
णोऽयम् । इति प्रकृत्यादयः ॥

२०-गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ११ ॥

गवाश्वप्रभृतीनि कृतैकवद्भावा नि द्वन्द्वरूपाणि सिद्धानि प्रातिपदिकानि निपात्यन्ते ।
गौश्चाश्वश्च :-

गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् । अजैडकम् । कुब्जवामनम् । कु-
ब्जैकरातम् । पुत्रपौत्रम् । श्वचण्डालम् । स्त्रीकुमारम् । दासीमाणवकम् । शाटीपिच्छ-
कम् । उष्ट्रशरम् । उष्ट्रशशम् । मूत्रशकृत् । मूत्रपुरीषम् । यकृन्मेदः । मांसशोणितम् ।

(१) अत्राकृतिगणेन गडुकण्ठादयोऽपि द्रष्टव्याः । कण्ठेगडुः । गडुकण्ठः । ग-
डुशिराः । इत्यादि ॥

(२) प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीयाविभक्तिर्यथा स्यात् । कर्तृकरणाभावादप्राप्ता विधीय-
ते । प्रकृत्याऽभिरूपः । प्रकृत्या दर्शनीयः । इत्यादि ॥

दर्भशरम् । दर्भपूतीकम् । अर्जुनशिरीषम् । तृणोलपम् । दासीदासम् । कुटीकुटम् । भा-
गवतीभागवतम् (१) । इति गवाश्वप्रभृतयः ॥

२१- न दधिपयआदीनि ॥ अ० ॥ २ । ४ । १४ ॥

दधिपयआदीनि शब्दरूपाणि द्वन्द्वे नैकवद्भवन्ति :—

दधिपयसी । सर्पिर्षधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्मप्रजापती । शिववैश्रवणौ । स्कन्दवि-
शाखौ । परित्राट्कौशिकौ । परित्रानककौशिकौ । प्रवर्योपसदौ । शुक्लकृष्णौ । इध्माब-
हिर्षी । दीक्षातपसी । श्रद्धातपसी । मेधातपसी । अध्ययनतपसी । उलूखलमुसले ।
आद्यावसाने । श्रद्धामेधे । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । इति दधिपयआदयः ॥

२२- अर्द्धर्चाः पुंसि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि चान्नपुंसके च भाष्यन्ते :—

अर्द्धर्च । गोमय । कषाय । कार्षापण । कुतप । कपाट । शङ्ख । चक्र । गूथ । यूथ ।
ध्वज । कबन्ध । पद्म । गृह । सरक । कंस । दिवस । यूप । अन्धकार । दण्ड । कम-
ण्डलु । मण्ड । भूत । द्वीप । द्यूत । चक्र । धर्म । कर्मन् । मोदक । शतमान । यान । नख ।
नखर । चरण । पुच्छ । दाडिम । हिम । रजत । सक्तु । पिधान । सार । पात्र ।
घृत । सैन्धव । औषध । आढक । चषक । द्रोण । स्वलीन । पात्रीव । पाटिक । वार ।
बाण । प्रोथ । कपित्थ । शुष्क । शील । शूल । सीधु । कवच । रेणु । कपट । सी-
कर । मुसल । सुवर्ण । यूप । चमस । वर्ण । क्षीर । कर्प । आकाश । अष्टापद ।
मङ्गल । निधन । निर्यास । जम्भ । वृत्त । पुस्त । ज्वेडित । शृङ्ग । शृङ्खल । मधु ।
मूल । मूलक । शराव । शाल । वप्र । विमान । मुख । प्रग्नीव । शूल । वज्र । कर्पट ।
शिखि । कल्क । नाट । मस्तक । वलय । कुसुम । तृण । पङ्क । कुण्डल । किरीट ।
अर्बुद । अङ्कुश । तिमिर । आश्रम । भूषण । इल्कस । मुकुल । वसन्त । तडाग ।
पिटक । विटङ्क । माष । कोश । फलक । दिन । दैवत । पिनाक । समर । स्थाणु ।
अनीक । उपवास । शाक । कर्पास । चषाल । खण्ड । दर । विटप । रण । बल । म-
ल । मृणाल । हस्त । सूत्र । ताण्डव । गाण्डीव । मण्डप । पटह । सौध । पार्श्व । श-
रीर । फल । छल । पुर । राष्ट्र । विश्व । अम्बर । कुट्टिम । मण्डल । ककुद । तोमर ।

(१) अत्र गणे यथोच्चारित एव द्वन्द्वो द्रष्टव्यः । तेन रूपान्तरे न भवति । गो-
श्वम् । गोश्वौ । अत्र पशुद्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति ॥

तोरण । मञ्चक । पुङ्ख । मध्य । बाल । वल्मीक । वर्ष । वस्त्र । देह । उद्यान । उद्योग । स्नेह । स्वर । सङ्गम । निष्क । क्षेम । शूक । छत्र । पवित्र । यौवन । पानक । भूषिक । बल्कल । कुञ्ज । विहार । लोहित । विषाण । भवन । अरंग्य । पुलिन । दृढ । आसन । ऐरावत । शूर्प । तीर्थ । लोमश । तमाल । लोह । दण्डक । शपथ । प्रतिसर । दारु । धनुस् । मान । तङ्क । वितङ्क । मव । सहस्र । ओदन । प्रवाल । शकट । अपराह्ण । नीड । शकल । कुणप । मुण्ड । पूत । मरु । लोमन । लिङ्ग । सीर । क्षत । ऋण । कडार । पूर्ण । पणव । विशाल । बुस्त । पुस्तक । पल्लव । निगड । खल । स्थूल । शार । नाल । प्रवर । कटक । कण्टक । छाल । कुमुद । पुराण । जाल । स्कन्ध । ललाट । कुङ्कुम । कुशल । विडङ्ग । पिण्याक । आर्द्र । हल । योध । विम्ब । कुक्कुट । कुडप । खण्डल । पञ्चक । वसु । उद्यम । स्तन । स्तेन । क्षत्र । कलह । पालक । वर्चस्क । कूर्च । तण्डक । तण्डुल । इत्यर्द्धैर्चादयः ॥

२३—पैलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५९ ॥

पैलादिप्रातिपादिकेभ्यो युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । पीलाया अपत्यं पैलः । तस्य युवापत्यमिति फिञ् तस्य लुक् । पैलः पिता । पैलः पुत्रः । एवं शालङ्किः । इत्यादि ।

पैल । शालङ्कि । सात्यकि । सान्यकामि । दैवि । औदमज्जि । औदव्रजि । औदमेधि । औदनुद्धि । दैवस्थानि । पैङ्गलायनि । राणायनि । रौहक्षिति । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । औज्जिहहानि । रागक्षति । राणि । सौमनि । ऊहमानि । तद्राजाञ्चाणः । (१) आकृतिगणोऽयम् । इतिपैलादयः ॥

२४—तौल्वलिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६९ ॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति तुल्वलस्य गोत्रापत्यं तौल्वलिः । तस्ययुवापत्यं तौल्वलायनः—

तौल्वलि । धाराणि । रावाणि । पाराणि । दैलीपि । दैवलि । दैवमति । दैवयज्ञि । प्रावाहाणि । मान्धातकि । आनुहारति । श्वाफल्कि । आनुमति । आहिंसि । आसुरि । आयुधि । नैमिषि । आसिबन्धकि । बैकि । पौष्करसादि । वैराक । बैलकि । वैहति । वैकर्णि । कारेणुपालि । कामलि । रान्धाकि । आसुराहति । प्राणाहति । पौष्कि । कान्दकि । दौषकगति । आन्तराहति । इति तौल्वल्यादयः ॥

(१) वङ्गानां राजावाङ्गः । तस्ययुवापत्यम् वाङ्गः । अङ्गस्यापत्यमाङ्गः पिता पुत्रो वा ॥

२५—यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६३ ॥

यस्कादिभ्यः प्रातिपादिकेभ्यः परस्याखीलिङ्गस्य बहुवचनेवर्त्तमानस्य गोत्रप्रत्ययस्य लुभ्रवति यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं भवेत्तदा । यस्कस्य गोत्रापत्यं यास्कः । यास्कौ । यस्काः । लभ्याः । तेनैवेति किम् । प्रियो यास्को येषां ते प्रिययास्काः आखि-
यामिति किम् । यास्क्यः स्त्रियः । गोत्र इति किम् । यास्काश्छात्राः । :-

यस्क । लभ्य । दुह्य । अयःस्थूर्ण । तृणकर्ण (१) । सदामत्त । कम्बल-
भार । आहियोग । कर्णाटक । पर्णाडक । पिण्डीजङ्घ । बकसकथ (२) ।
वस्ति । कद्रु । विश्रि । कद्रु । अजबस्ति । मित्रयु (३) रक्षामुख । जङ्घारथ । म-
न्यक । उत्कास । कटुक । मन्थक । पुष्करसद् । विषपुट । उपरिमेखल । क्रोष्टुमान । क्रोष्टुपा
द । शीर्षमाय (४) । खरप (५) । पदक । वर्मक (६) भन्दन (७) । भडि-
ल । भाण्डिल । भडित । भण्डित (८) । इतियस्कादयः ॥

२६—न गोपवनादिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६७ ॥

गोपवनादिप्रातिपादिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ लुङ् न भवति यज-
जोश्चेति प्राप्तो लुक् प्रतिषिध्यते । गोपवनस्य गोत्रापत्यं गौपवनः । गौपवनौ । गौपवनाः । :-

गौपवन । शिशु । बिन्दु । भाजन । अश्व । अवतान । श्यामाक । श्वापर्ण । इत्य-
ष्टौ विदाद्यन्तर्गता गोपवनादयः ॥

२७—तिककितवादिभ्यो ह्न्हे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६८ ॥

तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च परस्य गोत्रप्रत्ययस्य द्वन्द्वसमासे बहुवचनविभक्तौ लु-
भ्रवति । तैकायनयश्च कैतवायनयश्चेत्यत्र तिकादिभ्यः फिञ् तस्य लुक् :-

- (१) यस्कादिपञ्चम्यः शिवादित्वादण ॥
- (२) सदामत्तादिसप्तम्य इञ् ॥
- (३) बस्त्यादिषड्भ्यो गृष्ट्यादित्वाङ् ङञ् ॥
- (४) रक्षामुखाद्येकादशम्य इञ् ॥
- (५) खरपशब्दानडादित्वात्फक् ॥
- (६) पदकवर्मकाभ्यामिञ् ॥
- (७) भन्दनशब्दाच्छिवादित्वादण ॥
- (८) भाडिलादिचतुर्थ्योऽश्वदित्वात् फञ् ॥

तिककितवाः । बङ्खरभण्डीरथाः (१) उपकलमकाः (२) पफकनरकाः ।
बकनखरवगुदपरिणद्धाः (३) । उब्जककुभाः (४) । लङ्कशान्तमुखाः (५) उर-
सलङ्कटाः (६) । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णमुन्दराः (७) । अग्निवे-
शदासेरकाः (८) ॥ इति तिककितवादयः ॥

२८—उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६९ ॥

उपकादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनाविभक्तौ द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च वि-
भाषा लुगभवति । अद्वन्द्वग्रहणं द्वन्द्वाधिकारनिवृत्त्यर्थम् । एतेषां मध्ये त्रयो द्वन्द्वास्ति-
ककितवादिषु पठिताः । उपकलमकाः । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णमुन्दराः ।
तेभ्यः पूर्वसूत्रेणैव नित्यलुगभवति । अद्वन्द्वेत्वेन विकल्पः । उपकाः । औपकायनाः ।
लमकाः । लामकायनाः । शेषाणां द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे च विकल्पः :—

उपक । लमक । भ्रष्टक । कपिष्ठल । कृष्णाजिन । कृष्णमुन्दर । पण्डारक । अ-
ण्डारक । गडुक । सुपयर्क । सुपिष्ट । मयूरकर्ण । खारीजङ्घ । शलाबल । पतञ्जल ।
कठोराणि । कुपीलक । काशकृत्स्न । निदाघ । कलशीकण्ठ । दामकण्ठ । कृष्णपिङ्गल ।
कर्णक । पर्णक । जटिलक । बधिरक । जन्तुक । अनुलोम । अर्द्धपिङ्गलक । प्रतिलोम ।
प्रतान । अनभित । चूडारक । उदङ्क । सुषायुक । अबन्धक । पदञ्चल । अनुपद । अपजग्ध ।
कमक । लेखाभ्र । कमन्दक । पिञ्जल । मसूरकर्ण । मदाघ । कदामत्त । इत्युपकादयः ॥

२९—भृशादिभ्यो भुव्यच्चेर्लोपश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२ ॥

अच्यन्तेभ्यो भृशादिप्रातिपदिकेभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति हलन्तानां

(१) वाङ्खरयश्च भांडीरथयश्चेतीज् ॥

(२) औपकायनश्च लामकायनश्चेति नडादित्वात् फक् ।

(३) पाफकयश्च नारकयश्च, बाकनखयश्च, रवागुदपरिणद्धयश्च सर्वेभ्योऽत
इज् तस्य लुक् ॥

(४) औब्जयश्च, इज् । काकुभाश्च, शिवादित्वादण् । तयोर्लुक् ॥

(५) लाङ्कयश्च शान्तमुखयश्च, इज् तस्य लुक् ॥

(६) औरसायनश्च, तिकादित्वात् फिज् । लाङ्कटयश्च, इज् तयोर्लुक् ॥

(७) भ्राष्टकयश्च, कापिष्ठलयश्च । काष्णाजिनयश्च काष्णमुन्दरयश्च । अत
इज् तस्यलुक् ॥

(८) आग्निवेश्याच्च, गर्गादित्वाद् यज् । दासेरकयश्च, अत इज् तयोर्लुक् ।

चान्त्यलोपः । अभृशो भृशो भवतीति भृशायते । सुमनायते । अच्चेरिति किम् । भृशीभवति । अत्र मा भूत् :-

भृश । शघि । मन्द । चपल । पण्डित । उत्सुक । उन्मनस् । अभिमनस् । सुमनस् । दुर्मनस् । रहस् । रेहस् । शश्वत् । बृहत् । वेहत् । नृषत् । शुधि । अधर । ओजस् । वर्चस् । विमनस् । रभन् । हन् । रोहत् । शुचिस् । अनरस् । इति भृशादिः ॥

३०-लोहितादिडाज्भ्यः क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

अच्च्यन्तेभ्यो लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यप् प्रत्ययो भवति । अलोहितो लोहितो भवति लोहितायते । लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति पटपटायति पटपटायते :-

लोहित । नील । हरित । पीत । मद्र । फेन । मन्द । आकृतिगणत्वात् । वर्मन् । निद्रा । करुणा । कृपा । इति लोहितादयः ॥

३१-भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति । ग्रामंगमी :-

गमी । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी । प्रतियायी । आयायी । भावी । इति गम्यादयः ॥

३२-पिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

पिद्भिभ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । जृष्-जरा । त्रपा । भिदादयः पठ्यन्ते :-

भिदा (१) । छिदा । विदा । क्षिपा । गुहा गिर्योषधयोः ॥ श्रद्धा । मेधा । गोधा । आरा । हारा । कारा । क्षिया । भारा । धारा । रेखा । लेखा । चूडा । पीडा । वषा । वसा । सृजा ॥ क्रपेःसंप्रसारणं च ॥ कृपा । भिदा, विदारणे ॥ छिदा, द्वैधीकरणे ॥ आरा, शास्त्र्यम् ॥ धारा प्रपाते । इति भिदादयः ॥

३३-वा०-संपदादिभ्यः क्तिप् (२) ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

संपत् । विषत् । प्रतिपत् । आपत् । परिषत् । इति संपदादयः ॥

(१) भिदादिगणे येष्वर्थे नियमः स महाभाष्यकारेणैव कृतोऽस्ति । विदारणादन्यार्थे भित्तिरिति सर्वत्रार्थान्तरे क्तिन् ॥

(२) संपदादिगणपठितेभ्य एव स्त्रियां क्तिप् प्रत्ययो भवति । संपदादिश्चाकृतिगणो विज्ञेयः । कृत्यत्पुटो बहुलमिति बहुलवचनात् क्तिन्नपि भवति । संपत्तिः । विपत्तिः । इत्यादि ॥

३४-भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादयः शब्दा उणादिस्था अपादानकारके निपात्यन्ते :—

भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्र-
पतनः । समुद्रः । खुचः । खुक् । खलतिः ॥ इति भीमादयः ॥

३५-अजायतष्टाप् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४ ॥

अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्चस्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । अजा । देव-
दत्ता । अदितितपरकरणं तत्कालार्थम् । कीलालपाः, ब्राह्मणी । अत्र टाप् न भवति अ-
जादिग्रहणं तु जात्यादिलक्षणस्य ङीष्देर्बाधनार्थम् :—

अजा । एडका । चटका । अश्वा । मूषिका (१) । बाला । होढा । पाका । वत्सा-
मन्दा । विलाता । पूर्वापहरणा । अपरापहरणा (२) ॥ संभ्रान्जिनशणपिण्डेभ्यः फला-
त् ॥ संफला । (३) भ्रम्रफला । अजिनफला । शणफला । पिण्डफला । सदच्चाण्ड-
प्रान्तशतैकेभ्यःपुष्पात् ॥ (४) सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । प्रत्यक्पुष्पा । काण्डपुष्पा ।
प्रान्तपुष्पा । शतपुष्पा । एकपुष्पा ॥ शूद्राचामहत्पूर्वा जातिः ॥ (५) कुञ्चा । उ-
ष्णिहा । देवविशा (६) ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । (७) कोकिला । (८) मूला-
न्नजः । (९) अमूला । इत्यजादयः ॥

(१) अजादिभ्यः पञ्चभ्यो जातिलक्षणो यो ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(२) बालादिभ्यः षड्भ्यो वयसि ङीप् प्राप्तः ॥

(३) आभ्यां टिल्लक्षणो ङीप् प्राप्तः ॥

(४) समादिभ्यः फलात् सदादिभ्यश्चपुष्पाद् बहुव्रीहौ यः पाककर्णेति सूत्रेण
ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(५) अमहत्पूर्वाच्छूद्रशब्दाज्जातौ टाप् । शूद्रा । पुंयोगे तु ङीप् शूद्रस्य स्त्री शू-
द्री । अमहदिति किम् । महाशूद्री ॥

(६) कुञ्चादिभ्यस्त्रिभ्योऽप्राप्तष्टाब् विधिः ॥

(७) ज्येष्ठादिभ्यस्त्रिभ्यः पुंयोगे ङीष् प्राप्तोऽनेन बाध्यते ज्येष्ठस्य भार्या ज्येष्ठा ॥

(८) कोकिलशब्दाज्जातिलक्षणो ङीष् प्राप्तः ॥

(९) मूलशब्दाद् बहुव्रीहौ पाककर्णेति ङीष् प्राप्तः । नास्तिमूलमस्या सा अमूला

३६—न षट्स्वस्त्रादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्त्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति, सप्त । अष्ट । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिष्ठः । चतस्रः । इति स्वस्त्रादयः ॥

३७—पिद्गौरादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४१ ॥

पिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । नर्त्तकी । खनकी । रजकी । गौरादिभ्यः । गौरी । मत्सी :-
गौर । मत्स्या । मनुष्य । शृङ्ग । हय । गवय । मुकय । ऋष्य । पुट । दुण । द्रोण । हरिण । कण । पटर । उकण । आमलक । कुवल् । बदर । विम्ब । तर्कार । शर्कार । पुष्कर । शिखण्ड । सुषम । सलन्द । गडुज । आनन्द । सृपाट । भृगेठ । आढक । शङ्कुल । सूर्म । सुव । सूर्य । पृष । मूष । घातक । सकलूक । सल्लक । मालक । मालत । साल्वक । वेतस । अतस । पृम । मह । मठ । छेद । खन् । तक्षन् । अनडुही । अनड्वाही । एषण, करणे । देह । काकादन । गयादन । तेजन । रजन । लवण । पान । मेघ । गौतम । आप । स्थूण । भौरि । भौलिक । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । आलिङ्गि । आपिच्छिक । आरट । टोट । नट । नाट । मूलाट । ज्ञातन । पातन । पावन । आस्तरण । अधिकरण । एत । अधिकार । आग्रहायणी । प्रत्यवरोहिणी । सेवन । सुमङ्गलात् संज्ञायाम् । सुन्दर । मण्डल । पट । पिण्ड । विटक । कुर्द । गूर्द । पाण्ड । लोफाण्ड । कन्दर । कन्दल । तरुण । तलुन । वृहत् । महत् । सौधर्म । रोहिणी, नक्षत्रे रेवती, नक्षत्रे । विकल । निष्कल । पुष्कल ॥ कटाच्छ्रोणिवचने ॥ पिङ्गल । भट्ट । दहन । कन्द । काकण । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली । हरीतकी । कोशातकी । शमी । करीरि । पृथिवी । क्रौष्टी । मातामह (१) । पितामह । इति गौरादयः ॥

३८—बह्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४५ ॥

बह्वादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीप् प्रत्ययो भवति । बह्वी । बहुः । बहु । पद्धति । अङ्कति । अञ्चति । अंहति । वहति । शकटि ॥ शक्तिः शस्त्रे ॥ शारि । वारि । गति । अहि । कपि । मुनि । यष्टि ॥ इतः प्रायश्ङ्गात् ॥ कृदिकाराद-

(१) अत्र डामहन् प्रत्ययस्य पित्वादेव ङीपि सिद्धे पुनः पाठेन पित्तलक्षणस्य ङीषोऽनित्यत्वं ज्ञाप्यते तेन दंष्ट्रा, इति सिद्धं भवति । पृथिवीशब्दे औणादिकः पिवन् प्रत्ययस्य पित्वान् ङीपि सिद्धे उणादीनामव्युत्पन्नत्वज्ञापनार्थः पाठः ॥

क्तिनः ॥ सर्वतोऽक्तिन्नयादित्येके (१) ॥ चण्ड । अराल । कमल । कृपाण । विकट । विशाल । विशंकट । भरुज । ध्वज ॥ चन्द्रभागान्नधाम् ॥ चन्द्रभागी । कल्याण । उदार । पुराण । अहर् ॥ इति बह्वादयः ॥

३९—न क्रोडादिवह्वः ॥ अ० ॥ ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडाद्यन्ताद् बह्वन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति । स्वा-
ङ्गादिति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शोभनक्रोडा । शोभनखुरा । पृथुजघना :—

क्रोड । खुर । बाल । शफ । गुद । घोण । नख । मुख । भग । गल । आकु-
तिगणोऽयम् । इति क्रोडादयः ॥

४०—शार्ङ्गरवाद्यत्रो ङीन् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादिभ्योऽजन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति । शार्ङ्ग-
रवी । बैदा । जातिग्रहणमत्रानुवर्त्तते तेन जातिलक्षणो ङीपनेन बाध्यते न पुंयोगल-
क्षणः :—

शार्ङ्गरव । कापटव । गौगुलव । ब्राह्मण । गौतम । कामण्डलेय । ब्राह्मकृतेय ।
आनिचेय । आनिधेय । आशोकेय । वात्स्यायन । माञ्जनायन । केकसेय । काव्य ।
शैव्य । एहि । पर्येहि । आशमरथ्य । औदपान । अराल । चण्डाल । वतण्ड । भो-
गवद्गौरिमतोः संज्ञायाम् ॥ भोगवती । गौरिमती ॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ नारी । इति
शार्ङ्गरवादयः ॥

४१—क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८० ॥

क्रौड्यादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ण्यङ् प्रत्ययो भवति । अगुरुपोत्तमार्थ आरम्भः ।
क्रौड्या । लाड्या :—

क्रौडि । लाडि । व्याडि । आपिशलि । आपत्ति । चौपयत । चैटयत । शैक-
यत । वैल्वयत । वैकल्पयत । सौधातकि ॥ सूतात् युवत्याम् ॥ सूत्या, युवतिः ॥ भोज,
क्षत्रिये ॥ भोज्या, क्षत्रिया । भौरिकि । भौलिकि । शाल्मलि । शालास्थलि । कापि-
ष्ठलि । गौकक्ष्य ॥ इति क्रौड्यादयः ॥

(१) इकारान्तात् प्राण्यङ्गवाचकान् ङीप् भवति । अङ्गुली । इकारान्तात्
कृदन्तात् स्त्रियां ङीप् । कृषी । भूमी । वापी । केषांचिन्मते क्तिन्नधिकारस्थादिकारा-
न्तमात्रादेव ङीप् न भवति । तदा कृषिः । वापिः । इत्येव ॥

४२-अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८४ ॥

अश्वपत्यादिप्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वणा प्रत्ययो भवति । पत्युत्तरपदात् ।
प्राप्तस्य श्यस्यापवादः । आश्वपतम् । शातपतम् :-

अश्वपति । शतपति । धनपति । गणपति । राष्ट्रपति । कुलपति । गृहपति । धान्य-
पति । पशुपति । धर्मपति । सभापति । प्राणपति । क्षेत्रपति । स्थानपति । यज्ञपति ।
धन्वपति । अधिपति । बन्धुपति । इत्यश्वपत्यादयः ॥

४३-उत्सादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८६ ॥

उत्सादिभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति । औत्सः । औदपानः । अण-
स्तदपवादानां च बाधकः :-

उत्स । उदपान । विकर । विनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । त-
लुन । वष्कयासे । (१) ॥ धेनु । पृथिवी । पङ्क्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् ।
जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे ॥ पृष, देशे (२) ॥
मल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् । सत्वन्तु (३) । कुरु । पञ्चाल ।
इन्द्रावसान । उष्णिक् । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव । ग्रीष्मादच्छन्दसि (४) ॥
इत्युत्सादयः ॥

४४-बाह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९६ ॥

बाह्यादिशब्देभ्योऽपत्यसामान्ये इञ् प्रत्ययो भवति । बाहोरपत्यं बाहविः । सौमित्रिः ।
इत्यादि :-

बाहु । उपबाहु । विवाकु । शिवाकु । बटाकु । उपबिन्दु । वृक । चूडाला । मू-
षिका । बलाका । भगला । ज्वगला । ध्रुवका । ध्रुवका । सुमित्रा । दुर्मित्रा । पुष्करसत् ।
अनुहरत् । देवशर्मन् । अग्निशर्मन् । कुनामन् । सुनामन् । पञ्चन् । सप्तन् । अष्टन् ॥
अमितौजसः सलोपश्च (५) ॥ उदञ्चु । शिरस् । शराविन् । क्षेमवृद्धिन् । शङ्खला-

(१) वष्कयशब्दादसेऽर्थात् केवलादेवाञ् । तदन्तात्त्वणैव भवति ॥

(२) उदस्थानशब्दाद्देशार्थ एवाञ् । अन्यार्थेऽणैव भवति । एवमन्यत्रापि ॥

(३) अत्र सत् शब्दान्मतुप्-सत्वन्, तु, अव्ययम् । सत्वतोऽपत्यं सात्वताः ॥

(४) अत्र छन्दःशब्देन वृत्तं गृह्यते न तु वेदः । ततोऽन्यत्राञ् ॥

(५) अमितौजसोऽपत्यमामितौजिः ॥

तोदिन् । खरनादिन् । नगरमर्दिन् । प्राकारमर्दिन् । लोमन् । अजीगर्त्त । कृष्ण । स-
लक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम । उदङ्कः संज्ञायाम् ॥ सम्भूयोऽम्भ-
सोः सलोपश्च ॥ (१) आकृतिगणोऽयम् (२) ॥ इति बाह्यादयः ॥

४५—गोत्रेकुञ्जादिभ्यश्चफञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९८ ॥

गोत्रसंज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्चफञ् प्रत्ययो भवति । इजोऽपवादः । कुञ्ज-
स्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यो । कौञ्जायनाः । स्वार्थे ञ्यस्तस्य तद्वाजत्वा-
द्बहुषु लुक् । गोत्र इति किम् । कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः :—

कुञ्ज । व्रध्न । शङ्ख । भस्मन् । गण । लोमन् । शठ । शाक । शाकट । शुण्डा ।
शुभ । विपाश । स्कन्द । स्कम्भ । शुम्भा । शिव । शुभंया । इति कुञ्जादयः ॥

४६—नडादिभ्यः फक् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९९ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । नडस्य गोत्रापत्यं नाडाय-
नः । चारायणः :—

नड । चर । बक । मुञ्ज । इतिक । इतिश । उपक । लमक ॥ शलङ्कुशलङ्-
कश्च (३) ॥ ससल । वाजप्य । तिक । अग्निशर्मन् वृषगणे । प्राण । नर । सायक ।
दास । मित्र । द्वीप । पिङ्गर । पिङ्गल । किङ्कर । किङ्कल । कातर । कातल । काश्य ।
काश्यप । काव्य । अज । अमुष्य ॥ कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः (४) ॥ अमित्र ।
लिगु । चित्र । कुमार ॥ क्रोष्टु क्रोष्टश्च (५) ॥ लोह । दुर्ग । स्तम्भ । शिंशपा । अ-
ग्र । तृण । शकट । सुमनस् । सुमत । मिमत । ऋक् । जत् । युगन्धर । हंसक । द-
शिडन् । हस्तिन् । पञ्चाल । चमसिन् । सुकृत्य । स्थिरक । ब्राह्मण । चटक । बदर ।
अश्वक । खरप । कामुक । ब्रह्मदत्त । उदुम्बर । शोण । अलोह । दण्ड । एक । वा-
नव्य । शावक । नाव्य । अन्वजत् । अन्तजन । इत्तरा । अंशक । अश्वला । अध्वरा-
दण्डय । इति नडादयः ॥

(१) सम्भूयसोऽपत्यं साम्भूयिः । आम्भिः ॥

(२) सूत्रस्थचकारेणात्राऽऽकृतिगणत्वं बोध्यते । तेन । जाम्बिः । ऐन्द्रशर्मिः
आजघेनविः । आजबन्धविः । औडुलोमिः । इत्यादिप्विञ् सिद्धो भवति ॥

(३) शलङ्कु शब्दस्य शलङ्कादेशः । शलङ्कोरपत्यं शलङ्कायनः ॥

(४) कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णीयनो ब्राह्मणः । राणायनो वासिष्ठः ॥

(५) क्रोष्टोरपत्यं क्रौष्टः ॥

४७—अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०४ ॥

विदादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति । येऽत्र गणेऽनृषिवाचकास्ते-
भ्यस्त्वनन्तरापत्य एव । विदस्य गोत्रापत्यं वैदः । पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः । दौहित्रः :-
विद । उर्व । कश्यप । कुशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । वि-
श्वानर । ऋष्टिपेण । ऋतभाग । हर्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । कूचवार । शरद्वत् ।
शुनक । धेनु । गोपवन । शिश्रु । बिन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यमाक ।
श्यापर्ण । हरित । किन्दास । बह्यस्क । अर्कलूप । वध्योप । विष्णुवृद्ध । प्रतिबोध । र-
थन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निषाद । मठर । मृद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननान्द ।
परस्त्री, परशुंच (१) ॥ किता । सम्बक । शवली । श्यायक । अलस । इति विदादयः

४८—गर्गादिभ्यो यञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०५ ॥

गर्गादिभ्योऽन्तरे गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यः । अनन्तरापत्ये तु गार्गि-
रित्येव :-

गर्ग । वत्स । वाजाऽसे (२) संकृति । अज । व्याघ्रपात् । विदभृत् । प्राचीन-
योग । अगस्ति । पुलस्ति । रेभ । अग्निवेश । शङ्ख । शठ । धूम । अवट । चमस । धन-
ञ्जय । मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मच्छु ।
अलिगु । शङ्क । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु । तन्तु । मनायी । भूत । कथक ।
कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह । कण्व । शकल । गोकक्ष ।
अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रहूगण । शण्डि-
ल । वण । कञ्जुलुक । मुद्गल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मान्त्रित । संहित । अ-
श्मरश्च । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूण । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द । उलूक ।
तितिक्ष । भिषज् । भडित । भन्डित । दल्भ । चिकित । देवहू । इन्द्रहू । एकलू । पि-
प्पलु । वृदग्नि । जमदग्नि । सुलोभिन् । उकथ । कुटीगु ॥ इति गर्गादयः ॥

४९—अश्वादिभ्यः फञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११० ॥

अश्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । आश्वायनः । आश्मायनः । ये-
स्मिन् गणेऽपत्यैकप्रत्ययान्ताः पठ्यन्ते तेषु सामर्थ्याद्यनिप्रत्ययो विज्ञायते :-

(१) परस्त्रिया अपत्यं पारशवः ॥

(२) असेऽसमासे वाजशब्दाद्यञ् । सूवाजस्यापत्यं सौवाजिः । अत्र यञ् न भवति ॥

अश्व । अश्मन् । शङ्ख । बिद् । पुट । रोहिण । खज्जूर । खज्जूल । पिञ्जूर ।
 भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित । भण्डिक । प्रहृत । रामोद । क्षत्र । ग्रीवा ।
 काश । गोलाङ्कय । अर्क । स्वन । ध्वन । पाद । चक्र । कुल । पवित्र । गोमिन् ।
 श्याम । धूम । धूम्र । वाग्मिन् । विश्वानर । कुट । वेश । आत्रेय । नत्त । तड । नड ।
 ग्रीष्म । अर्ह । विशम्य । विशाला । गिरि । चपल । चुनम । दासक । वैत्य । धर्म ।
 आनडुह्य । पुसंजात । अजुन । शूद्रक । सुमनस् । दुर्मनस् । क्षान्त । प्राच्य । किंत ।
 काण । चुम्प । श्रविष्ठा । वीक्ष्य । पविन्दा । कुत्स । आतव । कितव । शिव । खदिर ॥
 आत्रेय, भारद्वाजे । भारद्वाज, आत्रेये (१) ॥ पथ । कन्थु । श्रुव । सूनु । कर्कटक ।
 रुक्ष । तरुक्ष । तलुक्ष । प्रचुल । विलम्ब । विष्णुज । इत्यश्वादयः ॥

५०—शिवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११ २ ॥

शिवादिभ्यः सामान्यापत्येऽण् प्रत्ययो भवति । यथाप्राप्तानामिजादीनामणपवादानां
 च बाधकः । शिवस्यापत्यं शैवः—

शिव । प्रौष्ठ । प्रोष्ठिक । चण्ड । मण्ड । जम्भ । मुनि । सन्धि । भूरि । कुठार ।
 अनभिस्तान । अनभिग्लान । ककुत्स्थ । कहोड । लेख । रोध । खञ्जन । कोहड । पि-
 ष्ट । हेहय । खञ्जार । खञ्जाल । सुरोहिका । पर्ण । कहूष । परिल । वतण्ड । तृण ।
 कर्ण । क्षीरहृद् । जलहृद् । परिषिक । जटिलिक । गोफिलिक । बधिरिका । मञ्जी-
 रक । वृष्टिणक । रेख । आलेखन । विश्रवण । खण । वर्त्तनाक्ष । पिटक । पिटाक । तृ-
 क्षाक । नभाक । ऊर्णनाभ । जरत्कारु । उत्क्षिपा । रोहितिक । आर्यश्वेत । सुपिष्ट ।
 खर्जूरकर्ण । मसूरकर्ण । तूनकर्ण । मयूरकर्ण । खडरक । तक्षन् । ऋष्टिपेण । गङ्गा ।
 विपाशा । यस्क । लह्य । द्रुव ' अयःस्थूण । भलन्दन । विरूपाक्ष । भूमि । इला । स- ।
 पत्नी ॥ द्व्यचो नद्याः ॥ त्रिवेणी, त्रिवर्णच (२) कहवय । कबोध । परल । ग्रीवा-
 क्ष । गोभिलिक । राजल । तडाक । वडाक । इति शिवादयः ॥

५१—शुभ्रादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२३ ॥

शुभ्रादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । यथा प्राप्तमिजादीनामपवादः ।
 शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः—

(१) आत्रेयशब्दाद् भारद्वाजगोत्रे फञ् । आत्रेयायणो भारद्वाजः । भारद्वाज
 शब्दादात्रेयगोत्रे फञ् । भारद्वाजायन आत्रेयः ॥

(२) स्त्रीवाचकाद् द्व्यच इति सूत्रेण ढक् प्राप्तः स नदीवाचकान्मा भूत् । रेवाया-
 अपत्यं रैवः । त्रिवेण्यास्त्रिवर्णादेशो विशेषः । त्रिवेण्या अपत्यं त्रैवणः ॥

शभ्र विष्टपुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल । शलाकाभ्रू । लेखाभ्रू । विमातृ । विधवा । कृकसा । रोहिणी । रुक्मिणी । दिशा । गालूक । अजवस्ति । शकन्धि । लक्षणस्यामयोर्वसिष्ठे (१) ॥ गोधा । कृकलास । अशीव । प्रवाहण । भरत । भारत । भारम । मृकण्डु । मघण्टु । मकण्टु । कर्पूर । इतर । अन्यतर । आलीढ । सुदत्त । सुचक्षुस् । सुनामन् । कटु । तुद । अकशाप । कुमारिका । किशोरिका । कुवेणिका । जिह्वाशिन । परिधि । वायुदत्त । ककल । खट्वर । आम्बिका । अशोका । शुद्धपिङ्गला । खडोन्मत्ता । अनुदृष्टि । जरतिन् । बलिर्वदिन् । विग्रन । वीज । श्वन् । अश्मन् । अश्व । अजिर । स्थूल । मृकण्डू । मकथु । यमण्टु । कण्टु । मृकण्ड । मृकण्ड । गुद । रूढ । कुशेरिका । शकल । शबल । उग्र । अजिन ॥ इतिशुभ्रादयः ॥

५२—कल्याणयादीनामिनङ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२६ ॥

कल्याणादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति इनडादेशः । कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः (२) । :-

कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । बन्धकी । अनुदृष्टि । अनुसृष्टि । जरती । बलीवर्दी । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । परस्त्री । इति कल्याण्यादयः ॥

५३—गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १३६ ॥

गृष्ट्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढञ् प्रत्ययो भवति । अणादीनामपवादः । गृष्टेरपत्यं गाष्टेयः । :-

गृष्टि । हृष्टि । हलि । बलि । विश्रि । कुद्रि । अजवस्ति । मित्रयु । फलि । अलि । दृष्टि । इति गृष्ट्यादयः ॥

५४—रेवत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १४६ ॥

रेवत्यादिभ्योऽपत्ये ठक् प्रत्ययो भवति । ढगादीनामपवादः । रेवत्या अपत्यं रैवतिकः । :-

रेवती । अश्वपाली । मणिपाली । द्वारपाली । वृकवञ्चिन् । वृकग्राह । कर्णग्राह । दण्डग्राह । कुक्कुटाक्ष । वृकबन्धु । चामरग्राह । ककुदाक्ष ॥ इति रेवत्यादयः ॥

(१) लक्षणस्यापत्यं लाक्षणोयो वसिष्ठः । श्यामाया अपत्यं श्यामेयो वसिष्ठः । मानुषी वाचकात् श्यामाशब्दादण प्राप्तः सोऽनेन बाध्यते ॥

(२) कल्याण्यादिभ्यो ढक् तु सिद्ध आदेशार्थं वचनम् । ह्रस्वसिन्ध्वन्त इत्युभयपदवृद्धिः ॥

५५-कुर्वादिभ्यां ण्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५१ ॥

कुर्वादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति। कुरोरपत्यं कौरव्यः। काव्यः। :-

कुरु । गर्ग । मङ्गुष । अजमारक । रथकार । वावदूक । सम्राजः क्षत्रिये (१)
कवि । मति । वाक् । पितृमत् । इन्द्रनालि । दामोष्णीषि । गणकारि । कैशोरि । का-
पिञ्जलादि । कुट । शलाका । मुर । एरक । अम्र । दर्भ । कोशीनी । वेनाच्छन्दसि ॥
शूर्पणाय । श्यावनाय । श्यावरथ । श्यावपुत्र । सत्यंकार । वडभीकार । शङ्कु । शा-
क । पथिकारिन् । मूढ । शकन्धु । कर्तृ । हर्तृ । शाकिन् । इनपिण्डी । विस्फोटक ।
काक । स्फाण्टक । शाकिन् । घातकि । धेनुजि । बुद्धिकार । वामरथस्य कण्वादिवत्
स्वरवर्जम् (२) । इतिकुर्वादयः ॥

५६-तिकादिभ्यः फिञ् ॥ अ० । ४ । १ । १५४ ॥

तिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तिकस्यापत्यं तैकायनिः । कै-
तवायनिः । :-

तिक । कितव । संज्ञा । बाल । शिखा । उरस् । शाह्य । सैन्धव । यमुन्द । रूप्य ।
ग्राम्य । नील । अमित्र । गौकट्य । कुरु । देवरथ । तैतिल । ओरस । कौरव्य । भौरि-
कि । भौलिकि । चौपयति । चैटयत । शैक्यता । क्षैतयत । ध्वाजवत । चन्द्रमस् । शुभ ।
गङ्गा । वरेण्य । सुयामन् । आरद्ध । वह्यका । खल्य । वृष । (३) । लोमक । उ-
दन्य । यज्ञ । ऋष्य । भीत । जाजल । रस । लावक । ध्वजवद । वसु । बन्धु आ-
बन्धका । सुयामन् ॥ इति तिकादयः ॥

५७-वाकिनादीनां कुक्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५८ ॥

वाकिनादिशब्देभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तत्सन्नियोगेन चैषां कुगागमः
वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः :-

(१) सम्राट्शब्दात् क्षत्रिये वाच्येण्यो भवति सम्राजोऽपत्यं साम्राज्यः क्षत्रियः ॥

(२) वामरथशब्दाण् ण्यप्रत्ययो भवति कण्वादिवच्च स्वरवर्जकार्यमतिदिश्यते ।
कण्वादयो गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यः शैषिकोऽण् यथा काण्व्यस्थेमे छात्राः काण्वाः । ए-
वं वामरथादपि शैषिकोऽण् वामरथस्य छात्रा वामरथाः । बहुवचने यञ्वाण्यस्याऽपि लुक् ।
वामरथाः । यञ्श्चेति ङीप् । वामरथी । इत्यादि स्वरसूत्रान्तोदात्त एव ॥

(३) फिञ् प्रत्ययसम्बन्धे वृषशब्दस्य यकारान्तत्वं महाभाष्ये कृतम् । वृषस्यापत्यं
वार्प्यायणिः ॥

वाकिन । गारध । कार्कट्य । काक । लङ्का ॥ चर्मवर्मिणोर्नलोपश्च (१) । इति वाकिनादयः ॥

५८—वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनम् ॥ ४।१।१७५॥

कम्बोजादिशब्देभ्योऽपत्ये तद्राजनि विहितस्य लुगभवति कम्बोजस्यापत्यं तद्राजो वा कम्बोजः :-

कम्बोज । चोल । केरल । शक । यवन । इति कम्बोजादयः ॥

५९—त् प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १।१७८॥

प्राच्यक्षत्रियवाचकेभ्यो भर्गादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य तद्राजप्रत्ययस्य लुङ् न भवति । अतश्चेति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । प्राच्य । पञ्चालानां राज्ञी पाञ्चाली । वैदेही । भार्गी । यौधेयी :-

भर्म । करुष । केकय । कश्मीर । साह्व । सुस्थाल । उरश । कौरव्य । इति भर्गादयः ॥ यौधेय । शौभ्रेय । शौकेय । ग्रावाण्येय । वार्त्तेय । धार्त्तेय । त्रिगर्त्त । भरता । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

६०—भिक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठीसमर्थभिक्षादिशब्देभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । अजादिबाधनार्थमण्ग्रहणम् । भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गार्भिणम् :-

भिक्षा । गर्भिणी । क्षेत्र । करीष । अङ्गार । चर्मिन् । धर्मिन् । चर्मन् । धर्मन् । सहस्र । युवति । पदाति । पद्धति । अथर्वन् । अर्वन् । दक्षिणा । भूत । विषय । श्रोत्र ॥ वृक्षादिभ्यः खण्डः (२) ॥ वृक्षखण्डः । वृक्ष । तरु । पादप । इति भिक्षादयः ॥

६१—खण्डिकादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ४५ ॥

खण्डिकादिभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । खण्डिकानां समूहः खण्डिकम् :- खण्डिका । वडवा ॥ क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ (३) भिक्षुक् । शुक् । उलूक् । श्वन् । युग । अहन् । वरत्रा । हलबन्ध । इति खण्डिकादयः ॥

(१) चार्मिकायणिः । वार्मिकायणिः ॥

(२) खण्डशब्दः पुस्तकान्तरपठितो न सर्वत्र कश्चित् वृक्षादिभ्यः षण्डः । इति पाठः । वृक्षषण्डः ॥

(३) क्षुद्राश्च मालवाश्चेति क्षत्रियद्वन्द्वः । ततः पूर्वैर्गैवाजिसिद्धे गोत्रबुज् वाधनार्थं वचनम् । क्षुद्रकमालवानां समूहः क्षौद्रकमालवी सेना । सेनासंज्ञेतिनियमार्थम् । अन्यत्राञ् न भवति । क्षौद्रकमालवकम् ॥

६२-पाशादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ४९ ॥

षष्ठीसमर्थपाशादिभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति । पाशानां समूहः पाश्या रज्जुः ।

तृण्या :-

पाश । तृण । धूम । वात । अङ्गार । पोत । बालक । पिटक । पिटाक । शकट । हल । नड । वन । पाटलका । गल । इति पाशादयः ॥

६३-राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ५३ ॥

राजन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विषयो देश इत्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति । राजन्यानां विषयो देशः, राजन्यकः :-

राजन्य । देवयान । शालङ्कायन । जालन्धरायण । आत्मकामेय । अम्बरी-
पपुत्र । वसाति । वैल्वान । शैलूष । उदुम्बर । बैल्वल । आर्जुनायन । संप्रिय । दाक्षि ।
ऊर्णाभ । आप्रीत । अम्बीड । वैतिल । वात्रक (?) इति राजन्यादयः ॥

६४-भौरिक्याद्येषुकार्यादिभ्यो विधत्भक्तलौ ॥ अ० ॥ ४ । २ । ५४ ॥

विषयो देश इत्येतस्मिन् विषये षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य एषुकार्यादिभ्यश्च य-
थासंख्यविधत्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः । अणोऽपवादः । भौरिकीणां विषयो देशः, भौ-
रिकिविधः । एषुकारिभक्तः ॥

भौरिकि । भौलिकि । वैपेय । चैटयत । काणेय । वाणिजक । कालिज । वालि-
ज्यक । शैकयत । वैकयत । इति भौरिक्यादयः ॥ एषुकारि । सारस्यायन । चान्द्रायण ।
द्व्याक्षायण । ज्यायण । औडायन । जौलायन । खाडायन । सौवीर । दासमित्रि ।
दासमित्रायण । शौद्रायण । दाक्षायण । शयण्ड । तार्क्ष्यायण । शौभ्रायण । सायण्डि ।
शौण्डि । वैश्वमाणव । वैश्वधेनव । नद । तुण्डदेव । अलायत । औलालायत । शौ-
ण्ड । शयाण्ड । वैश्वदेव ॥ इत्येषुकार्यादयः ॥

६५-ऋतूकथादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६० ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये ऋतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्ताच्च प्रातिप-
दिकाट्ठक् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः
वाजपैयिकः । औक्थिकः । वात्तिकसूत्रमधीते । वात्तिकसूत्रिकः । सांग्रहसूत्रिकः :-

(१) अयमाकृतिगणस्तेन मालवानां विषयो देशः । मालवकः । वैराटकः । त्रैगर्त्त-
कः । इत्यादयः शब्दाः सिद्धा भवन्ति ॥

उक्त्य । लोकायत । न्याय । न्यास । निमित्त । पुनरुक्त । निरुक्त । यज्ञ । चर्चा ।
धर्म । क्रमेतर । श्लक्ष्ण । संहिता । पद । क्रम । संघात । वृत्ति । संग्रह । गुणागुण ।
आयुर्वेद ॥ द्विपदी, ज्योतिषि (१) ॥ अनुपद । अनुकल्प । अनुगुण । इत्युक्थादयः ॥

६६—क्रमादिभ्यो वुन् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६१ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे क्रमादिभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति । क्रममधीते क्रमकः । पदकः :-
क्रम । पद । शिखा । मीमांसा । सामन् । इति क्रमादयः ॥

६७—वसन्तादिभ्यश्च ॥ ४ । २ । ६३ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये वसन्तादिप्रातिपदिकेभ्यश्च प्रत्ययो भवति । वसन्त-
सहचरितो ग्रन्थो वसन्तस्तमधीते वेद वा स वासन्तिकः । वार्षिकः । एवं सर्वत्र :-

वसन्त । वर्षा । शरद् । हेमन्त । शिशिर । प्रथम । गुण । चरम । अनुगुण,
अपर्वन् । अथर्वन् । ॥ इति वसन्तादयः ॥

६८—संकलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७५ ॥

संकलादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । पुष्कला अ-
स्मिन् सन्तीति पौष्कलो देशः । सिकताया अदूरभवो ग्रामः सैकतः । यथासम्भवमर्थ-
संबन्धः :-

संकल । पुष्कल । उद्वय । उडुप । उत्पुट । कुम्भ । विधान । सुदत्त । सुदत्त ।
सुभूत । मुनेत्र । सुपिङ्गल । सिकता । पूतीकी । पूलास । कूलास । पलाश । निवेश ।
गवेश । गम्भीर । इतर । शर्मन् । अहन् । लोमन् । वेमन् । वरुण । बहुल । सद्यो-
ज । अभिषिक्त । गोभृत् । राजभृत् । गृह । भृत । भल्ल । माल । (वृत्) इति
संकलादयः ॥

६९—सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७७ ॥

सुवास्त्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति । अञोऽपवादः । सुवास्तो-
रदूरं नगरं, सौवास्तवम् । सौवास्तवी नदी :-

सुवास्तु । वर्णु । भगडु । खण्डु । कण्डु । सेचालिन् । कर्पूरिन् । शिखाण्डिन् । गर्त्त ।
कर्कश । शटीकर्ण । कृष्ण । कर्क । कर्कन्धूमती । गोह्य । गाहि । अहिसक्थ । (वृत्)
इति सुवास्त्वादयः ॥

(१) द्विपदीं ज्योतिःशास्त्रमधीते जानाति वा स द्वैपदिकः ॥

७०-वुञ्छण्कठजिलसेनिरहन्पययफक्फिन्निञ्चयककठको
ऽरीहणकशाश्वदर्थकुमुदकाशतृणप्रेक्षाशमसखिसंकाशवलपञ्चक-
र्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८० ॥

अरीहणादिसप्तदशगणस्थप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरथिका वृजादयः सप्तदशैव प्रत्यया यथासंख्येन भवन्ति । आदिशब्दः प्रत्येकमाभिसंबध्यते । यथासम्भवमर्थसम्बन्धः । अरीहणादिभ्यो वुञ् । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शैरीषकः । अरीहणानां निवासो देश आरीहणकः :-

अरीहण । द्रुघण । खदिर । सार । भगल । उलन्द । सांपरायण । क्रौष्टायण । मा-
स्त्रायण । मैत्रायण । वैगर्तायन । रायस्पोष । विपथ । उद्दण्ड । उदञ्चन । खाडायन ।
खण्ड । वीरण । काशकृत्स्न । जाम्बवन्त । शिंशपा । किरण । रैवत । वैत्व । वैमता-
यन । मैमतायण । सौसायन । शाण्डिल्यायन । शिरीष । बधिर । वैगर्तायण । गोमतायण ।
सौमतायण । खाण्डायण । विपाश । सुयज्ञ । जम्बु । सुशर्म । इत्यरीहणादयः ॥
कृशाश्वादिभ्यश्च कृशाश्वीयः । अरिष्टेन निर्वृतमारिष्टीयम् :-

कृशाश्व । अरिष्ट । अरीश्व । वेश्मन् । विशाल । रामक । शवल । कूट । रो-
मन् । ववर । सुकर । सूकर । प्रतर । सटश । पुरग । मुख । धूम । अजिन । विनता ।
वनिता । अवनत । विकुवास । अरुस् । अवयास । अयावस् । मौद्गल्य । इति कृशा-
श्वादयः ॥ अश्यादिभ्यः कः ॥ न्यग्रोधानामदूरभवं वनं न्यग्रोधकम् :-

अश्य । न्यग्रोध । शिरा । निलीन । निवास । निधान । निवात । निबद्ध । विबद्ध ।
परिगूढ । उपगूढ । उत्तराश्वन् । स्थूलबाहु । खदिर । शर्करा । अनडुह । परिवंश । वेणु ।
वीरण । खण्ड । परिवृत्त । कर्दम । अंशु । इति अश्यादयः ॥ कुमुदादिभ्यश्च ॥ बल्व-
जाः सन्त्यस्मिन् स बल्वजिको देशः :-

कुमुद । शर्करा । न्यग्रोत्र । उत्कट । इत्कट । गर्त । बीज । अश्वत्थ । बल्वज । परिवाप
शिरीष । यवाप । कूप । विकङ्कत । कण्टक । कङ्कट । संकट । पलाश । त्रिक । कत ।
दशग्राम । इति कुमुदादयः ॥ काशादिभ्य इलः । काशाः सन्ति यत्र स काशिलो देशः :-

काश । वाश । अश्वत्थ । पलाश । पीयूष । विश । विस । तृण । नर । चरण । क-
र्दम । कर्पूर । कण्टक । गूह । आवास । नड । वन । बधूल । बर्वर । इति काशादयः ॥
तृणादिभ्यः शः ॥ तृणानि यत्र सन्ति स तृणशो देशः :-

तृण । नड । बुस । पर्ण । वर्ण । चरण । अर्ण । जन । बल । लव । वन । इति
तृणादयः ॥ प्रेक्षादिभ्य इनिः । प्रेक्ष्यानिर्वृत्तः प्रेक्षी :-

प्रेक्षा । हलका । फलका । बन्धुका । ध्रुवका । क्षिपका । न्यग्रोध । इकुट । बुध-
का । संकट । कूपका । कर्कटा । सुकटा । मङ्कट । सुक । महा । इति प्रेक्षादयः ॥ अश्मा-
दिभ्योरः । अश्मनानिर्वृत्तः, अश्मरः :-

अश्मन् । यूप । रुप । मीन । दर्भ । वृन्द । गुड । खण्ड । नग । शिखा । यूथ । रुष । नद ।
नख । काट । पौम । इत्यश्मादयः ॥ सख्यादिभ्यो ढञ् । सखायः सन्त्यत्र साख्योदेशः :-

साखि । साखिदत्त । वायुदत्त । गोहित । गोहिल । भल्ल । पाल । चक्रपाल । च-
क्रवाल । छगल । अशोक । करवीर । सीकर । सकर । सरम । समल । चर्क । वक्र-
पाल । उशीर । सुरस । रोह । तमाल । कदल । सप्तल । इति सख्यादयः ॥

संकाशादिभ्यो ण्यः । सांकाश्यम् । काम्पित्यस्यादूरभवो ग्रामः काम्पित्यः :-

संकाश । काम्पित्य । समीर । कश्मर । शूरसेन । सुपथिन् । सन्धच । यूप । अं-
श । राग । अश्मन् । कूट । मलिन । तीर्थ । अगस्ति । विरत । चिकार । विरह । ना-
सिका । इति संकाशादयः ॥ बलादिभ्यो यः प्रत्ययः । बलेन निर्वृत्तो बल्यः :-

बल । वुल । तुल । डल । डुल । कषल । वन । कुल । इति बलादयः ॥ पक्षादिभ्यः
फक् प्रत्ययः । पक्षेण निर्वृत्तः पाक्षायणः :-

पक्ष । तुष । अण्ड । कम्बलिक । चित्र । अश्मन् । अतिस्वन् ॥ पथिन्, पन्थच
(१) ॥ कुम्भ । सरिज । सरिक । सरक । सलक । सरस । समल । रोमन् । लोमन् ।
हंसका । लोमक । सकण्डक । अस्तिबल । यमल । हस्त । सिंहक । इति पक्षादयः ।
कर्णादिभ्यः फिञ् प्रत्ययः । कर्णस्य निवासः कार्णायनिः :-

*कर्ण । वसिष्ठ । अलुश । शल । डुपद । अनडुह्य । पाञ्चजन्य । स्थिरा । कुलिश ।
कुम्भी । जीवन्ती । जित्व । आण्डवित् । अर्क । लूष । स्फिक् । ज्ञावत् । इतिकर्णाद-
यः ॥ सुतङ्गमादिभ्य इञ् प्रत्ययो भवति । सुतङ्गमेन निर्वृत्तः सौतङ्गमिः ।

सुतङ्गम । मुनिचित्त । विप्रचित्त । महापुत्र । श्वेत । गडिक । शुक्र । विग्र । बीजवा-
पिन् । श्वन् । अर्जुन । अजिर । जीव । इति सुतङ्गमादयः ॥ प्रगदिनादिभ्यो ज्यः प्र-
त्ययो भवति । प्रगदिनो यत्र सन्ति स प्रागद्यो देशः :-

प्रगदिन् । मगदिन् । शरदिन् । कलिव । खडिव । गडिव । चूडार । मार्जार ।

कोविदार ॥ इति प्रगदिनादयः ॥ वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययः । वराहाः सन्ति यत्र स वारा-
हको देशः । पालाशकः :-

वराह । पलाश । शिरीष । पिनद्ध । स्थूण । विदग्ध । विभग्न । बाहु । खादिर ।
शकेरा । विनद्ध । निवद्ध । विरुद्ध । मूल । इति वराहादयः ॥ कुमुदादिभ्यश्चक् प्रत्ययो
भवति । कुमुदाः सन्ति यस्मिन् देशे स कौमुदिको देशः :-

कुमुद । गोमथ । रथकार । दशग्राम । अश्वत्थ । शात्मली । कुण्डल । मुनि-
स्थूल । कूट । मुचूर्कण । कुन्द । मधुर्कण । शुचिकर्ण । शिरीष । इति कुमुदादयः ॥

७१-वरणादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८२ ॥

वरणादिप्रातिपदिकेभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकप्रत्ययस्य लुब् भवति वरणानामदूर-
भवं नगरं वरणाः :-

वरणाः । पूर्वौगोदौ । पूर्वणगोदौ । अपरेणगोदौ । आलिङ्ग्यायन । पर्णी । शृङ्गी ।
शल्मलयः । सदाण्वी । वणिकि । वणिक् । जालपद । मथुरा । उज्जयिनी । गया ।
तक्षशिला । उरशा । आकृत्त्या (१) । इति वरणादयः ॥

७२-मध्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८६ ॥

मध्वादिशब्देभ्यश्चातुरर्थिको मतुप्प्रत्ययो भवति । मध्वस्मिन्नस्तीतिमधुमान् :-

मधु । विस । स्थाणु । मुष्टि । हृष्टि । इक्षु । वेणु । रम्य । ऋक्ष । कर्कन्धु ।
शमी । किरीर । हिम । किशरा । शर्पणा । मरुत् । मरुव । दार्वाघाट । शर । इष्टका ।
तक्षशिला । शक्ति । आसन्दी । आसुति । शलाका । आमिर्धा । खडा । वेटा । इति
मध्वादयः ॥

७३-उत्करादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९० ॥

उत्करादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्चः प्रत्ययो भवति । यथासम्भवमर्थसम्बन्धः ।
अर्काणामदूरभवो प्रागः , अर्कीयः :-

उत्कर । संफल । संकर । शफर । पिप्पल । पिप्पलीमूल । अश्मन् । अर्क ।
पर्ण । सुपर्ण । खलाजिन । इडा । अग्नि । तिक् । कितव । आतप । अनेक । पलाश ।
तृणव । पित्तुक । अश्वत्थ । शकानुद्र । भस्त्रा । विशाला । अवरोहित । गर्त । शाल ।

(१) अत्र सूत्रस्थचकारेणाकृतिगणत्वं बुध्यते । तेन कटुकवदर्या अदूरभवो
ग्रामः कटुकवदरी । शिरीषाः । काञ्ची इत्यादिषु लुप् सिद्धो भवति ॥

अन्य । जन्या । अजिन । मञ्च । चर्मन् । उत्क्रोश । शान्त । खदिर । शूर्पेणाय ।
श्यावनाय । नैव । बक । नितान्त । वृक्ष । इन्द्रवृक्ष । आर्द्रवृक्ष । अर्जुनवृक्ष । इत्यु-
त्करादयः ॥

७४-नडादीनां कुक् च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९१ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्चुः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति कुगागमश्च ।
यथासंभवमर्थसंबंधः । नडाः सन्ति यत्र तन्नडकीयं वनम् :-

नड । मन्त । बिल्व । वेणु । वेत्र । वेतस । तृण । इक्षु । काष्ठ । कपोत । कुञ्जाया
ह्रस्वत्वं च (१) ॥ तन्नलोपश्च ॥ इति नडादयः ॥

७५-कल्यादिभ्यो ढकञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९५ ॥

कल्यादिशब्देभ्यः शेषार्थे ढकञ् प्रत्ययो भवति । कत्तौ भवः कात्तेयकः :-

कात्ति । उम्भि । पुष्कर । पुष्कल । मोदन । कुम्भी । कुण्डिन । नगर । वञ्नी ।
भक्ति । माहिष्मती । चर्मण्वती । वर्मती । ग्राम । उरुया । कुल्याया यलोपश्च (२) ॥
इति कल्यादयः ॥

७६-नद्यादिभ्यो ढक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९७ ॥

नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषिको ढक् प्रत्ययो भवति । नद्यां भवं नदेयम् :-

नदी । मही । वाराणसी । श्रावस्ती । कौशाम्बी । नवकौशाम्बी । काशफरी ।
खादिरी । पूर्वनगरी (३) । पावा । मावा । सात्वा । दावा । दात्वा । वासेनकी । बडवाया-
वृषे ॥ इति नद्यादयः ॥

७७-प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । १११० ॥

प्रस्थोत्तरपदात् पलद्यादिभ्यः कोपधाच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शेषिकः ।
मद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः । माहकीप्रस्थः । पलद्यां भवः पालदः । पारिषदः । कोप-
धात् । नैलीनकः :-

पलदी । पारिषत् । यकृल्लोमन् । रोमक । कालकूट । पटच्चर । वाहीक । कल-

(१) कुञ्जाः सन्त्यस्मिन् तत् कुञ्जकीयं वनम् । तन्नकीयो ग्रामः ॥

(२) कुल्यायां भवः कौलेयकः । यकारलोपः ॥

(३) पूर्वनगर्यां भवः पूर्वनगरेयः । अत्र-पूः । वन । गिरि । इतिपाठान्तरम् ।
तदा-पौरेयम् । वानेयम् । गैरेयमिति विभक्तं रूपत्रयं सिध्यति ॥

गणपाठः ॥

कीट । मलकीट । कमलकीट । कमलभिदा । कमलकीर । बाहुकीट । नैतकी । परिखा । शूरसेन । गोमती । उदपान । पक्ष । कललकीट । कललकीकटा । गोष्ठी । नैषिकी । नैकेती । सक्कल्लोमन् । इति पल्लवादयः ॥

७८—कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ ४ । २ । १११ ॥

गोत्रप्रत्ययान्तकण्वादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । काण्व्यस्येमे काण्वाश्छात्राः । गर्गाद्यन्तर्गताः कण्वादयः । अतएवात्र न लिख्यन्ते ॥

७९—काश्यादिभ्यश्छिञ्जिठौ ॥ अ० ॥ ४ । २ । ११६ ॥

काश्यादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकौ छिञ्जिठौ प्रत्ययौ भवतः । प्रत्यययोजनकारविपर्ययभेदात् स्त्रीप्रत्यये विशेषः । छञन्तान् डीप् छिञान्तात् तु टावेव भवति । काश्यां भवः काशिकः । काशिनी । काशिका :-

काशि । चेदि । बैदि । संज्ञा । संवाह । अच्युत । मोहमान । शकुलाद । हस्तिकर्षू । कुदामन् । कुनामन् । हिरण्य । करण । गोधाशन । भौरिकि । भौलिङ्गि । अरिन्दम । सर्वमित्र । देवदत्त । साधुमित्र । दासमित्र । दासग्राम । सौधावतान । युवराज । उपराज । सिन्धुमित्र । देवराज । आपदादिपूर्वपदान्तात् कालान्तात् ॥ आपत्कालिकी । आपत्कालिका । और्ध्वकालिकी । और्ध्वकालिका । तात्कालिकी । तात्कालिका । इति काश्यादयः ॥

८०—धूमादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १२७ ॥

देशवाचिभ्यो धूमादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः धूमे भवो धौमकः :-

धूम । खण्ड । खण्ड । शशादन । आर्जुनाद । दाण्डायनस्थली । माहकस्थली । घोषस्थली । माषस्थली । राजस्थली । राजगृह । सत्रासाह । भक्षास्थली । मद्रकूल । गर्त्तकूल । आज्ञजीकूल । द्व्याहाव । त्र्याहाव । संह्रीय । वर्वर । वर्वर्गर्त्त । विदेह । आनर्त्त । माठर । पाथेय । घोष । शिष्य । मित्र । वल । आराज्ञी । धार्तराज्ञी । अवयात । तीर्थ । कूलात्सौवीरेषु ॥ समुद्रान्नावि मनुष्ये च (१) ॥ कुक्षि । अन्तरापि । द्वीप । अरुण । उज्जयिनी । दक्षिणापथ । साकेत । मानवल्ली । वल्ली । सुराज्ञी । इति धूमादयः ॥

(१) समुद्रशब्दान्नावि मनुष्ये च वाच्ये वुञ् । समुद्रे भवा सामुद्रिका नौः । सामुद्रिको मनुष्यः । अन्यत्र सामुद्रं जलम् ॥

८१-कच्छादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३३ ॥

कच्छादिदेशवाचिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । वुजादेरपवादः ।
कच्छे भवः काच्छः :—

कच्छ । सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । सात्व । कुरु ।
रङ्कु । अणु । अण्ड । खण्ड । द्वीप । अनूप । अजवाह । विजापक । कुलून । इति
कच्छादयः ॥

८२-गहादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३८ ॥

गहादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकश्चः प्रत्ययो भवति अणजोरपवादः । अन्तःस्थे भव
अन्तःस्थीयः :—

गह । अन्तःस्थ । सम । विषम । मध्यमध्यमं चाण् चरणे (१) उत्तम । अङ्ग ।
वङ्ग । मगध । पूर्वपत् । अपरपत् । अधमशाख । उत्तमशाख । समानशाख । एकग्राम ।
एकवृत्त । एकपलाश । इष्वग्र । इष्वनीक । अवस्यन्दी । अवस्कन्द । कामप्रस्थ । खाडायनि ।
खाण्डायनी । कावेराणि । कामवेराणि । शैशिरि । शौङ्गि । आसुरि । आहिंसि । आमित्रि ।
व्याडि । वैदजि । मौजि । आद्धचशिव । आनृशंसि । सौवि । पारकि । अग्निशर्मन् । देवशर्मन्
श्रौति । आरटकि । वाल्मीकि । क्षेमवृद्धिन् । उत्तर । अन्तर ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपः ॥
जनपरयोः कुक् च ॥ देवस्य च ॥ वेणुकादिभ्यश्चण् (२) इति गहादयः ॥

८३-सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण्
प्रत्ययो भवति । ठजोऽपवादः । अण्ग्रहणं वृद्धाच्छस्य बाधनार्थम् । सन्धिवेलायां जातः
सान्धिवेलः । ग्रैष्मः । तैषः । पौषः :—

सन्धिवेला । सन्ध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी । पञ्चदशी । पौर्णमासी ।

(१) अस्यैव सूत्रस्य शेषवार्त्तिकप्रमाणेन पृथिवीमध्यशब्दस्य मध्यमादेशश्चरणे-
ऽभिधेये निवासलक्षणोऽण् प्रत्ययः । अन्यत्र तु छ एव । पृथिवीमध्ये निवास एषां ते मा-
ध्यमाश्चरणाः । चरणादन्यत्र । मध्ये भवो मध्यमीयः ॥

(२) मुखपार्श्वयोस्तसन्तयोरन्त्यलोपः । मुखतोभवं मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् ।
जने भवो जनकीयः । परकीयः । देवो भक्तिरस्य देवकीयः । वेणुकादिराकृतिगणः । वे-
णुकदेशे भवो वैणुकीयः । वैरेणकीयः । पालाशकीयः ॥

प्रतिपत् ॥ संवत्सरात् फलपर्वणोः ॥ सांवत्सरं फलम् । सांवत्सरं पर्व ॥ इति सन्धि-
वेलादयः ॥

८४—दिगादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ५४ ॥

सप्तमीसमर्थदिगादिप्रातिपदिकेभ्यो भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । अणश्छस्य चा-
पवादः । दिशि भवं दिश्यम् :—

दिश । वर्ग । पूर्ग । गण । पक्ष । धाय्या । मित्र । मेधा । अन्तर । पथिन् । रह-
स् । अलीक । उखा । साक्षिन् । आदि । अन्त । मुख । जघन (१) । मेघ । यू-
थ । उदकात्संज्ञायाम् (२) न्याय । वंश । अनुवंश । विश । काल । अप् । आकाश ।
इति दिगादयः ॥

८५—वा०—ज्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ४ । ३ । ५९ ॥

अव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिप्रातिपदिकेभ्यो ज्यप्रत्ययो भवति । नियमार्थं
वार्तिकमिदम् । सूत्रेण सामान्याव्ययीभावाद् ज्यः प्राप्तो नियम्यते । परिमुखं भवं पारि-
मुख्यम् । पारिहनव्यम् । नियमादिह न भवति । उपकूलं भवमौपकूलम् :—

परिमुख । परिहनु । पर्योष्ठ । पर्यूल । औपमूल । खल । परिसीर । अनुसीर । उ-
पसीर । उपस्थल । उपकलाप । अनुपथ । अनुखड्ग । अनुतिल । अनुशीत । अनु-
माष । अनुयव । अनुयूप । अनुवंश । अनुवृद्ध । इति परिमुखादयः ॥

८६—वा०—अध्यात्मादिभ्यश्च ॥ ४ । ३ । ६० ॥

अध्यात्मादिभ्यो भवार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् :—
अध्यात्म । अधिदेव । अधिभूत । आकृतिगणोऽयम् । इत्यध्यात्मादयः ॥

८७—अण् ऋगयनादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७३ ॥

पठ्ठीसप्तमीसमर्थभ्य ऋगयनादिप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भ-
वति । ऋगयने भवमर्गयनः । तस्य व्याख्यानो वा । अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम् वा-
स्तुविद्याया व्याख्यानो ग्रन्थो वास्तुविद्यः । अत्र छप्रत्ययो माभूत् :—

(१) मुखजघनशब्दाभ्यां शरीरावयवत्वादेव यति सिद्धे पुनरत्र दिगादिषु पाठो
ऽशरीरावयवार्थः । सेनामुखे भवः सेनामुख्यम् । सेनाजघन्यम् । सेनाया अग्रपश्चाद्भागौ
गृह्येते । तदन्तविधिना यत् ॥

(२) उदके भवा उदक्या रजस्वला । संज्ञाग्रहणादिह न भवति । उदके भव
औदको मत्स्यः ॥

ऋगयन । पदव्याख्यान । छन्दोमान । छन्दोभाषा । छन्दोविवृति । न्याय । पुनरुक्त । व्याकरण । निगम । वास्तुविद्या । अङ्गविद्या । क्षत्रविद्या । उत्पात । उत्पाद । संवत्सर । मुहूर्त । निमित्त । उपनिषद् । शिक्षा । छन्दोविजिनी । व्याय । निरुक्त । विद्या । उद्याव । भिक्षा । इति ऋगयनादयः ॥

८८—शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७६ ॥

पञ्चमीसमर्थशुण्डिकादिप्रातिपादिकेभ्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शुण्डिकादागतः शौण्डिकः :-

शुण्डिक । कृकण । स्थाण्डिल । उदपान । उपल । तीर्थ । भूमि । तृण । पर्ण । इति शुण्डिकादयः ॥

८९—शण्डिकादिभ्यो ङ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ९२ ॥

प्रथमासमर्थशण्डिकादिप्रातिपादिकेभ्योऽभिजनेऽभिधेये ङ्यः प्रत्ययो भवति शण्डिकोऽभिजनोऽस्य स शण्डिक्यः :-

शण्डिक । सर्वकेश । सर्वसेन । शक । सट । रक । शङ्ख । बोध । इति शण्डिकादयः ॥

९०—सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ९३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्चाभिजनेऽर्थे यथासंख्यमाणञौ प्रत्ययौ भवतः । सिन्धुरभिजनोऽस्य स सैन्धवः । तक्षशिलाऽभिजनोऽस्य स तक्षशिलः । प्रत्ययभेदः स्वरभेदार्थः :-

सिन्धु । वर्णु । गन्वार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । किष्किन्धा । गब्दिका । उरस । दरत् । कुलून । दिरसा । इति सिन्ध्वादयः ॥

तक्षशिला । वत्सोद्धरण । कौमेदुर । काण्डवारण । ग्रामणी । सरालक । कंस । किन्नर । संकुचित । सिंहकोष्ठ । कर्णकोष्ठ । बर्बर । अवसान । इतितक्षशिलादयः ॥

९१—शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १०६ ॥

तृतीयासमर्थशौनकादिप्रातिपादिकेभ्यश्छन्दसि वेदे प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते, शौनकिनः । वाजसनेयिनः । छन्दसीति किम् । शौनकीया शिक्षा । अत्र छन्द एव भवति :-

शौनक । वाजसनेय । साङ्गरव । शाङ्गरव । सापेय । शाखेय । खाडायन । स्कन्द ।

स्कन्ध । देवदत्तशठ । रज्जुकण्ठ । रज्जुभार । कठशाड । कशाय । तलवकार । पुरु-
पासक । अश्वपेय । स्कम्भ । इति शौनकादयः ॥

९२—कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११८ ॥

तृतीयासमर्थकुलालादिप्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति । कृतमित्येतस्मिन्नर्थे
संज्ञायां गम्यमानायाम् । कुलालेन कृतं कौलालकम् । बारुडकम् :-

कुलाल । वरुड । चण्डाल । निषाद । कर्मार । सेना । सिरिध । सेन्द्रिय । देव-
राज । परिषत् । बधू । रुरु । ध्रुव । रुद्र । अनडुह् । ब्रह्मन् । कुम्भकार । श्वपाक ।
इति कुलालादयः ॥

९३—बिल्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११९ ॥

षष्ठीसमर्थबिल्वादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति बिल्वस्य
विकारोऽवयवो वा बैल्वः :-

बिल्व । ब्रीहि । काण्ड । मुद्ग । मसूर । गोधूम । इक्षु । वेणु । गन्धुका (१)
कर्पासी । पाटली । कर्कन्धू । कुटीर ॥ इति बिल्वादयः ॥

९४—पलाशादिभ्यो वा ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १२१ ॥

पलाशादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । पलाशस्य विकारः
पालाशम् । खादिरम् :-

पलाश । खदिर । शिंशपा । स्यन्दन । करीर । शिरीष । यवास । विकङ्कत । इति
पलाशादयः ॥

९५—नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १२४ ॥

वृद्धेभ्यःशरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां विष-
ये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति । वृद्ध—आम्रमयम् । शालमयम् । शरमयम् । दर्भमयम्—
शर । दर्भ । मृत् । कुटी । तृण । सोम । वल्बज । इति शरादयः ॥

९६—तालादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५२ ॥

तालादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरण् प्रत्ययो भवति । तालस्य विकारः तालं
घनुः । अन्यत्र तालमयम् । वृद्धत्वान्मयट् :-

(१) अस्मात्कोपधाच्चेत्याणि सिद्धे पुनःपाठो मयड्बाधनार्थः एतस्मिन् पक्षेऽपि
मयण् मा भूदिति ॥

तालाद्धनुषि । बार्हिण । इन्द्रालिश । इन्द्रादृश । इन्द्रायुध । चाप । श्यामाक ।
पीयूक्षा ॥ इति तालादयः ॥

९७—प्राणिरजतादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५४ ॥

प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति ।
कपोतस्य विकारः कापोतम् । राजतम् :—

रजत । सीस । लोह । उदुम्बर । नीच । नील । दारु । रोहितक । बिभीतक ।
कर्पात । दारु । तीव्रदारु । त्रिकण्टक । कण्टकार । इति रजतादयः ॥

९८—स्रक्तादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६४ ॥

स्रक्तादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवत्वेन विवाक्षिते फलेऽभिधेयेऽण् प्रत्ययो भवति ।
स्रक्तस्य विकारः स्राक्तम् नैयग्रोधम् :—

स्रक्त । न्यग्रोध । अश्वत्थ । इङ्गदी । शिशु । कर्कन्धु । कर्कन्तु । ऋकतु । बृहती ।
काक्ष । तुरुलु ॥ इति स्रक्तादयः ॥

९९—हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६७ ॥

हरीतक्यादिप्रातिपदिकेभ्यः फलेऽभिधेये प्रत्ययस्य लुञ् भवति । लुकि प्राप्ते लुपो
विधानं युक्तवद्भावात् ॥ हरीतक्याः फलं हरतकी । हरीतक्याः फलानि हरीत-
क्यः (१) :—

हरीतकी । कोशातकी । नखरजनी । नखररजनी । शक्कण्डी । शाकण्डी । दाडी ।
दोडी । दडी । श्वेतपाकी । अर्जुनपाकी । काला । द्राक्षा । ध्वाङ्क्षा । गर्गरिका । क-
ण्टकारिका । शेफालिका ॥ इति हरीतक्यादयः ॥

१००—पर्पादिभ्यः छन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १० ॥

पर्पादिभ्यश्चरतीत्यर्थे छन् प्रत्ययो भवति । षकारो ङीष्पर्थः । पर्पेण चरति, पर्पि-
कः । पर्पिकी :—

पर्प । अश्व । अश्वत्थ । रथ । जाल । न्यास । व्याल ॥ पादः पच्च ॥ पदिकः ॥
इति पर्पादयः ॥

(१) हरीतक्यादिषु व्यक्तिर्भवति युक्तवद्भावेनेति वार्तिकेन लिङ्गस्थैवयुक्तवद्भावो
न तु वचनस्य ॥

१०१-वेतनादेभ्यो जीवति ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १२ ॥

तृतीयासमर्थवेतनादिप्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । वेतनेन जीवति, वैतनिकः—

वेतन । वाह । अर्द्धवाह । धनुर्दण्ड (१) । जाल । वेस । उपवेस । प्रेषण उपस्ति । सुख । शय्या । शक्ति । उपनिषत् । उपवेप । स्रक् । पाद । उपस्थान । इति वेतनादयः ॥

१०२-हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १५ ॥

तृतीयासमर्थोत्सङ्गादिप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । उत्सङ्गेन हरति, औत्सङ्गिकः :-

उत्सङ्ग । उडुप । उत्पत । पिटक । उडप । पिटाक । इत्युत्सङ्गादयः ॥

१०३-भस्त्रादिभ्यः छन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १६ ॥

भस्त्रादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे छन् प्रत्ययो भवति । भस्त्रया हरति, भस्त्रिकः , भस्त्रिणी :-

भस्त्रा । भरट । भरण । भारण । शीर्षभार । शीर्षभार । अंसभार । अंसेभार । इति भस्त्रादयः ॥

१०४-निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १९ ॥

अक्षद्यूतादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्तेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्, आक्षद्यूतिकं वैरम् :-

अक्षद्यूत । जानुप्रहत । जङ्घाप्रहत । पादस्वेदन । कण्टकमर्दन । गतागत । यातोपयात । अनुगत । इत्यक्षद्यूतादयः ॥

१०५--अण् महिष्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ४८ ॥

पृष्ठीसमर्थमहिष्यादिप्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यर्थे ण् प्रत्ययो भवति । महिष्या धर्म्यं माहिषम् :-

महिषी । प्रजावती । प्रलेपिका । विलेपिका । अनुलेपिका । पुरोहित । मणिपाली अनुचारक । होतृ । यजमान । इति महिष्यादयः ॥

(१) अत्र संवातविगृहीतयोर्ग्रहणं भवति । धनुर्दण्डेन जीवति धानुर्दण्डकः । धनुषा जीवति धानुष्कः । दाण्डिकः ॥

१०६—किशरादिभ्यः छन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ५३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणकिशरादिप्रातिपदिकेभ्यः पर्यमित्यर्थे छन्प्रत्ययो भवति । गन्ध-
विशेषवाचकाः किशरादयः । किशराः पर्ययस्य, किशरिकः । किशरिकी :—
किशर । नरद । नलद । सुमङ्गल । तगर । गुग्गुल । उशीर । हरिद्रा । हरिद्रायणी ॥
इति किशरादयः ॥

१०७—छत्रादिभ्यो णः ॥ ४ । ४ । ६२ ॥

प्रथमासमानाधिकरणछत्रादिप्रातिपदिकेभ्यः शीलमित्यर्थे णः प्रत्ययो भवति । इव
शब्दस्यात्र लोपो द्रष्टव्यः । छत्रमिव शीलमस्य स छत्रः शिष्यः । छत्रवद्गुरुरक्षकः :—
छत्र । बुभुक्षा । शिन्ना । पुरो । स्था (१) । तुरा । उपस्थान । ऋषि । कर्मन् ।
विश्वधा । तपस् । सत्य । अनृत । शिविका । इति छत्रादयः ॥

१०८—प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ९९ ॥

सप्तमीसमर्थप्रतिजनादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति । प्रति-
जने साधुः, प्रतिजनीनः । जने जने साधुरित्यर्थः :—
प्रतिजन । इदंयुग । संयुग । समयुग । परयुग । परकुल । परस्यकुल । अमुष्यकुल
। सर्वजन । विश्वजन । पञ्चजन । महाजन । इति प्रतिजनादयः ॥

१०९—कथादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०२ ॥

सप्तमीसमर्थकथादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । कथायां साधुः
काथिकः :—
कथा । विकथा । वितण्डा । कुष्टचित् । जनवाद । जनेवाद । वृत्ति । सद्गृह । गुण ।
गण । आयुर्वेद । इति कथादयः ॥

११०—गुडादिभ्यश्चञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०३ ॥

सप्तमीसमर्थगुडादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे चञ् प्रत्ययो भवति । गुडे साधुः, गौ-
डिक इक्षुः :—
गुड । कुल्माष । सक्तु । अपूप । मांसौदन । इक्षु । वेणु । संग्राम । संघात । ग्रवास ।
निवास । उपवास । इति गुडादयः ॥

(१) अत्र स्थग्रहणेन सोपसर्गस्य ग्रहणमिष्यते । आस्था शीलमस्य स, आस्थः ।
सांस्थः । आवस्थः ॥

१११-उगवादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । २ ॥

उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति । शङ्कवे हितं शङ्कव्यम् दारु । गवे हितं गव्यम् :-

गो । हविस् । बर्हिस् । खट । अष्टका । युग । मेधा । स्रक् ॥ नाभि नभं च ॥ शुनः संप्रसारणं वाच दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम् (१) ॥ शून्यम् । शून्यम् ॥ ऊधसोऽनङ् च ॥ ऊधन्यः । कूपः । उदर । खर । स्वद । अक्षर । विष । स्कन्द । अध्वा । इति गवादयः ॥

११२-विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ४ ॥

हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत् प्रत्ययो भवति । पक्षे छः । पुरोडाशाय हिताः पुरोडाश्याः पुरोडाश्या वा तण्डुलाः । अपूपेभ्यो हितं, अपूप्यम् । अपूपीयम् :-

अपूय । तण्डुल । अभ्यूष । अभ्योष । पृथुक । अभ्येष । अर्गल । मुसल । सूप । कटक । कर्णवेष्टक । किरव ॥ अन्नविकारेभ्यश्च (२) ॥ पूपे । स्थूणा । पीप । अश्व । पत्र । कट । अयःस्थूण । ओदन । अवोष । प्रदीप । इत्यपूपादयः ॥

११३-असमासे निष्कादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । २० ॥

असमस्तेभ्यो निष्कादिप्रातिपदिकेभ्यः आर्हीयेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । निष्कं परिमाणस्य तन्नैष्किकम् । असमासे किम् । परमनैष्किकम् । अन्न ठञ्स्वरे भेदः :-

निष्क । पण । पाद । माष । वाहद्रोण । षष्टि । इति निष्कादयः ॥

११४-गोद्व्यचोऽसङ्ख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ३९ ॥

संख्यापरिमाणाश्वादि विवर्जिताद् गोशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकाद्यत् प्रत्ययो भवति । तस्य निमित्तसंयोगोत्पातावित्यर्थः । गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः । द्व्यचधनस्यनिमित्तं संयोग उत्पातो वा । धन्यम् । स्वर्ग्यम् । यशस्यम् । आयुष्यम् । संख्या

(१) नाभये हितो नभ्योऽक्षः । नभ्यमञ्जनम् । यस्तु शरीरावयववाची नाभि शब्दस्ततः शरीरावयवादिति यति कृते नाभये हितं नाभ्यम् तैलमिति भवति । चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वान्नस्तद्धित इति लोपो न भवति ॥

(२) अन्नविकारवाचिभ्यो यत् प्रत्ययो भवति । शङ्कुलीभ्यो हितं शङ्कुल्यम् । सूप्यम् । ओदन्यम् ॥

पञ्चानां निमित्तं पञ्चकम् । परिमाण — प्रास्थिकम् । अश्वदिः — आश्विकम् । सर्वत्र यन्
न भवति :—

अश्व । अश्वम् । गण । ऊर्णा । उमा । वसु । वर्ष । भङ्ग । इत्यश्वदयः ॥

११५—तद्धरतिवहत्यावहतिभारादंशादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ५० ॥

द्वितीयासमर्थद्वंशादिभ्यः परस्माद् भारशब्दाद्धरत्यादिषु यथाविहितं प्रत्ययो भव-
ति । वंशभारं हरति वहत्यावहति वा, वांशभारिकः । कौटजभारिकः । भारादिति किम् ।
वंशं हरति । वंशादिभ्य इति किम् । ब्राहिभारं हरति । अत्र सा भूत् :—

वंश । कुटज । बलवन । मूल । अक्ष । स्थूणा । अश्वम् । अश्व । इक्षु । खट्वा ।
इति वंशादयः ॥

११६—छेदादिभ्यो नित्यम् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६४ ॥

द्वितीयासमर्थछेदादि प्रातिपदिकेभ्यो नित्यमर्हतीत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । छे-
दनं नित्यमर्हति । छेदिकः :—

छेद । नेद । द्रोह । दोह । बर्त । कर्ष । संप्रयोग । विप्रयोग । प्रेषण । संप्रश्रुन ।
विप्रकर्ष । विराग विरंगं च । वैरङ्गकः । इति छेदादयः ॥

११७—दण्डादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६६ ॥

द्वितीयासमर्थदण्डादिप्रातिपदिकेभ्योऽर्हतीत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति । दण्डमर्हति, द-
ण्डचः :—

दण्ड । मुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेधा । मेव । युग । उदक । वध । गुहा ।
भाग । इभ । इति दण्डादयः ॥

११८—व्युष्टादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ९७ ॥

सप्तमीसमर्थव्युष्टादिप्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति ।
व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम् :—

व्युष्ट । नित्य । निष्क्रमण । प्रवेशन । तीर्थ । संध्रम् । आस्तरण । संग्राम । सं-
घात । अग्निपद । पीलुमूल । प्रवास । उपसंक्रमण । दीर्घ । उपवास । इति व्युष्टादयः ॥

११९—तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १०१ ॥

चतुर्थीसमर्थसन्तापादिप्रातिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । सन्तापाय
प्रभवति, सान्तापिकः :—

सन्ताप । संताह । संग्राम । संयोग । संपराय । संपेष । निष्पेष । निसर्ग । अस-
र्ग । विसर्ग । उपसर्ग । उपवास । प्रवास । संघात । संमोदन । सक्तु ॥ मांसौदनाद्विगृ-
हीतादपि । मांसौदनिकः । मांसिकः । औदनिकः ॥ निर्घोष । सर्ग । संपात । संवाद ।
संवेशन । इति संतापादयः ॥

१२०-अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १११ ॥

प्रथमासमानधिकरणानुप्रवचनाप्रातिपदिकेभ्यः प्रयोजनमित्यर्थेछः प्रत्ययो भवति
अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य, अनुप्रवचनीयम् :—

अनुप्रवचन । उत्पापन । प्रवेशन । अनुप्रवेशन । उपस्थापन । संवेशन । अनुने-
शन । अनुवचन । अनुवादन । अनुवासन । आरम्भण । आरोहण । प्ररोहण । अन्वा-
रोहण । इत्यानुप्रवचनादयः ॥

१२१-पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थपृथ्वादिप्रातिपदिकेभ्यो भावेर्धे इमनिच् प्रत्ययो वा भवति । वा वचन-
मणदेः समवेशार्थम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थिवम् । पृथुत्वम् । पृथुता :—

पृथु । मृदु । महत् । पटु । तनु । लघु । बह्वु । साधु । वेणु । आनु । बहुल ।
गुरु । दण्ड । ऊरु । खण्ड । चण्ड । बाल । अर्किचन । होड । पाक । वत्स । मन्द ।
स्वादु । ह्रस्व । दीर्घ । प्रिय । वृष । अटु । क्षिप्र । क्षुद्र । इति पृथ्वादयः ॥

१२२-वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२३ ॥

वर्णविशेषाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावेऽप्यञ् चादिमनिच्प्रत्ययो भ-
वति । शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । दाढ्यम् । दाढिमा ।
दृढत्वम् । दृढता :—

दृढ । परिवृढ । मृश । कृश । चक्र । आम्र । लवण । ताम्र । अम्ल । शीत ।
उष्ण । जड । बधिर । परिडत । मधुर । मूर्ख । मूक । वेर्यातलाभमतिमनःशारदानाम् ॥
समो मतिमनसोर्जने (१) ॥ बाल । तरुण । मन्द । स्थिर । बहुल । दीर्घ । मूढ ।
आकृष्ट । इति दृढादयः ॥

१२३-गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ अ० ॥

५ । १ । १२४ ॥

(१) वेः परेभ्योयातादिभ्यःप्यञ् । वैपात्यम् । वैलाभ्यम् । वैमत्यम् । वैमनस्यम् ॥
वैशारद्यम् । समः पराभ्यां मतिमनोभ्यां वेगेऽर्थे प्यञ् । साम्पात्यम् । साम्नस्यम् ॥

गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चाभिधेये ष्यञ् प्रत्ययो भवति । जडस्यभावः कर्म वा जड्यञ् । ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम् :—

ब्राह्मण । बाहव । माणव । चोर । मूक । आराधय । विराधय । अपराधय । उपराधय । एकभाव । द्विभाव । त्रिभाव । अन्यभाव । समस्थ । विषमस्थ । परमस्थ । मध्यमस्थ । अनीश्वर । कुशल । कपि । चाल । अक्षेत्रज्ञ । निपुण । अर्हतो नुम् च ॥ अर्हन्त्यम् । संवादिन् । संवेशिन् । बहुभाषिन् । बालिश । दुष्पुरुष । कापुरुष । दायाद । विशसि । धूर्त । राजन् । संभाषिन् । शीर्षगातिन् । अधिपति । आलस । पिशाच । पिशुन । विशाल । गणपति । धनपति । नरपति । गडुत्त । निव । निधान । विष । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे (१) ॥ चतुर्वेदस्योपययद्वृद्धिश्च ॥ चातुर्वेद्यम् । स्वभाव । निघातिन् । विघातिन् । राजगुरु । विशस्ति । विशाय । विशात । विनात । नयात । सुहित । दोन । विदग्ध । उचित । समग्र । शला । तत्पर । इदम्पर । यथातथा । पुरम् । पुनः । पुनर् । अभोज्ज । तरतम । प्रकाम । यथाकाम । निष्कुल । स्वराज । महाराज । युवराज । सम्राज् । अविदूर । अपिशुन । अनृशंस । अयथातथ । अयथापुर । स्वधर्म । अनुकूल । परिमाण्डल । विश्वरूप । अतिज्ज । । उदासीन । ईश्वर । प्रतिम् । साक्षि । मानुष । आस्तिक । नास्तिक । युगपत् । पूर्वापर । उत्तराधर । इति ब्राह्मणादयः ॥

१२४—वा०—चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥अ०॥

५ । १ । १२४ ॥

चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रमम् :—

• चतुर्वर्ण्य । चतुराश्रम । त्रिलांक । त्रिस्वर । षड्गुण । सेना । सन्निधि । समीप । उपमा । मुख । इति चतुर्वर्णादयः ॥

१२५—पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२८ ॥

पष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोर्यक् प्रत्ययो भवति । सेनापतेर्भावः कर्म, सा संन्यापत्यम् । प्राजापत्यम् । पुरोहितस्य भावः कर्म वा, पौरोहित्यम् :—

(१) सर्वे एव वेदाः सार्ववेद्यम् । सार्वलोक्यम् । सार्वराज्यम् । सार्वगुण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ॥

पुरोहित । राजन् । संप्रामिक । एषिक । वर्मित । खण्डिक । दण्डिक । छत्रिक ।
मिलिक । पिण्डिक । बाल । मन्द । स्तनिक । चङ्कितिक । कृषिक । पूतिक । पत्रिक ।
प्रतिक । अजानिक । सलनिक । सूचिक । राकर । सूचक । पक्षिक । सारथिक । जलिक ।
सूतिक । अञ्जनलिक । शर्मिक । चर्मिक । कर्मिक । शीलिक । मूलिक । तिलिका । ति-
थिक । अञ्जतिका । ऋषिक । पुत्रक । पथिका । प्रचिक । प्रविक । परित्तक । पूजन-
क ॥ राजाऽते (१) । मूचिक । स्वरिक । चङ्किक ॥ इति पुरोहितादयः ॥

१२६-प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥

५ । १ । १२९ ॥

प्राणभृज्जातिभ्यो वयोवचनेभ्यः उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरञ्
प्रत्ययो भवति । अश्वस्य भावः कर्म वा, आश्वम् । औष्ट्रम् । कामारम् । कैशीरम् ।
औद्गात्रम् :—

उद्गातृ । उक्तेतृ । प्रतिहर्तृ । रथगणक । पक्षिगणक । पत्रिगणक । सुष्ठु ।
दुष्टु । अध्वर्यु । वधू ॥ सुभग मंत्रे (२) ॥ प्रशास्तृ । होतृ । पोतृ । कर्तृ । इत्युद्गात्रादयः ॥

१२७-हायनान्त्युवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३० ॥

हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोरण् प्रत्ययो
भवति । द्विहायनस्य भावः कर्म वा, द्विहायनम् । यूनो भावः कर्म वा यौवनम् :—

युवन् । स्थविर । होतृ । यजमान । कमण्डलु ॥ पुरुषाऽते (३) ॥ सुहृत् । यातृ ।
श्रवण । कुम्त्री । सुस्त्री । सुहृदय । सुभ्रातृ । वृषल । दुभ्रातृ ॥ हृदयाऽमे (४) ॥
क्षेत्रज्ञ । कृत्तक । परिव्राजक । कुशल । चपल । निपुण । पिशुन । सन्नक्षचारिन् । कु-
तूहल । अनृशंस । भ्रातृ । कुचुक । कन्दुक । दुःस्त्री । दुहृदय । दुहृत् । मिथुन । कुलली ।
महस् । कतक । कितव । पेत ॥ इति युवादयः ॥

१२८-हृन्मनोज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३३ ॥

हृन्मनोज्ञादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोर्वुञ् प्र-

(१) राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादित्वात्प्यञ् सौराज्यम् ॥

(२) सुभगस्य भावः सौभगो मंत्रः ॥

(३) पुरुषस्य भावः कर्म पौरुषम् सुपुरुषत्वमिति समासे ॥

(४) हृदयम् । समासे तु परमहृदयत्वमित्येव ॥

त्ययो भवति । गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा, गौपालपशुपालिका । शैष्योपाध्यायिका । मनोज्ञस्य भावः कर्म वा, मनोज्ञकम् :-

मनोज्ञ । कल्याण । प्रियरूप । छान्दस । छात्र । मेधाविन् । अभिरूप । आढ्य । कुलपुत्र । श्रोत्रिय । चोर । धूर्त । वैश्वदेव । युवन् । ग्रामपुत्र । ग्रामखण्ड । ग्रामकुमार । अमुष्यपुत्र । अमुष्यकुल । शतपुत्र । कुशल । बहुल । अवश्य । अहोपुरुष ॥ इति मनोज्ञादयः ॥

१२९—तस्य पाकमूलेपीत्वादिकर्णादिभ्यः कुणञ्जाहवौ

॥ अ० ॥ ५ । २ । २४ ॥

पीत्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च पष्ठासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणञ्जाहवौ प्रत्ययौ भवतः । पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं, कर्णजाहम् :- पीलु । कर्कन्धु । शमी । करीर । कुवल । वदर । अश्वत्थ । खदिर । इति पीत्वादयः ॥ कर्ण । अक्षि । मख । मुख । मख । केश । पाद । गुल्फ । भ्रूमङ्ग । दन्त । ओष्ठ । पृष्ठ । अङ्गुष्ठ ॥ इति कर्णादयः ॥

१३०—तदस्य संजातं तारकादिभ्यश्च इतच् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ३६ ॥

प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति । तारकाः संजाता अस्य, तारकितं नभः । पुष्पितो वृक्षः संजातग्रहणप्रकृतिविशेषणम् :-

तारका । पुष्प । मुकुल । कण्टक । पिपासा । मुख । दुःख । ऋजीष । कुड्मल । सूचक । रोग । विचार । तन्द्रा । बेग । पुत्ता । अस्त्रा । उत्कण्ठ । भर । द्रोह । गर्मादप्राणिनि (१) ॥ फल । उच्चार । स्तवक । पल्लव । खण्ड । धेनुष्या । अभ्र । अङ्गारक । अङ्गार । वर्षाक । पुलक । कुवलय । शैवल । गर्भ । तरङ्ग । कल्लोल । पण्डा । चन्द । स्वक । मुद्रा । राग । हस्त । कर । सीमन्त । कर्दम । कज्जल । कलङ्क । कुतूहल । कन्दल । आन्दोल । अन्धकार । कोरक । अङ्कुर । रोमाञ्च । हर्ष । उत्कर्ष । क्षुधा । ज्वर । गोर । दोह । शास्त्र । मुकुर । तिलक । बुभुक्षा । निद्रा । तारकादिराकृतिगणः ॥ इति तारकादयः ॥

१३१—विमुक्तादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६१ ॥

(१) गर्भिताः शालयः । अप्राणिनीतिवचनाद् गर्भिणी भार्या । इत्यत्रेतच्न भवति ॥

अध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्विमुक्तादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । विमुक्तं वर्ततेऽस्मिन् स वैमुक्तोऽध्यायाऽनुवाको वा । देवासुरः :-

विमुक्त । देवासुर । वसुमत् । सत्वत् । उपसत् । दशार्हपयस । हविर्धान । मित्री । सोमापूषन् । अग्नाविष्णू । वृत्रहति । इडा । रक्षोऽसुर । सदसत् । परिषादक् । वसु । मरुत्वत् । पत्नीवत् । महीयल । सत्वत् (१) । दशार्ह । वयस् । पतत्रि । सोम । महित्री । हेतु । अस्यहत्य । दशार्ह । उर्वशी । मुपर्ण । इति विमुक्तादयः ॥

१३२-गोषदादिभ्यो वुन् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६२ ॥

अध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्गोषदादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो भवति । गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्ति, गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा । इषेत्वकः :-

गोषद् । इषेत्वा । मातरिश्चन् । देवस्यत्वा । देवीरापः । कृष्णोऽस्याखरेष्टः । देवी-धियम् । रक्षाहण । अञ्जन । प्रभून् । प्रतूत् । दृशान् । युञ्जान । सहस्रशीर्षा । वात-स्पते । कृशास्व । स्वाहाप्राण । प्रमुस्त ॥ इति गोषदादयः ॥

१३३-आकर्षादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६४ ॥

आकर्षादिभ्यः सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति । आ-कर्षे कुशल आकर्षकः :-

आकर्ष । त्सरु । पिपासा । पिचण्ड । अशनि । अश्मन् । विचय । जय । जय । आचय । अय । नय । निषाद । गद्गद् । दीप । हृद् । ह्राद् । ह्लाद् । शकुनि । पिशाच । पिण्ड ॥ इत्याकर्षादयः ॥

१३४-रसादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ९५ ॥

प्रथमासमानाधिकरणरसादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्यास्त्यस्मिन्नित्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति । रसादिगुणवाचकेभ्योऽन्त्ये मत्वर्थीयाः प्रत्यया माभूवन्निति सूत्रारम्भः । रूपिणी कन्येभ्यश्च तु शोभापरत्वं रूपस्य । रसोऽस्मिन्नस्तीति, रसवान् । रूपवान् :-

रस । रूप । गन्ध । स्पर्श । शब्द । स्नेह । गुणात् एकाचः (२) ॥ इतिरसादयः ॥

(१) सत्वदिति शब्दोऽस्मिन् गणं द्विवारं पठ्यते । यद्येकस्तालव्यादिर्भवेत्तदा तु युक्तं मन्यथा प्रामादिकः पाठः ॥

(२) अत्र गुणशब्दो । रसादीनां विशेषणम् । एकाच् शब्दादपि मतुव् भवति नत्वतइनिठनौ । स्ववान् । खवान् ॥

१३५-सिध्मादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ९७ ॥

सिध्मादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति । सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । अत्र पक्षे मतुबिष्यते नत्वत इनिठनौ :-

सिध्म । गडु । मणि । नाभि । जीव । निष्पाव । पांसु । सक्तु । हनु । मांस । परशु ॥ पार्णिधमन्योर्ध्वश्च ॥ पाष्णीलः । धमनीलः । पर्ण । उदक । प्रज्ञा । मण्ड । पार्श्व । मण्ड । ग्रन्थि । वातदन्तबलललाटगलानामूङ् च ॥ वातूलः । दन्तूलः । बलूलः । ललाटूलः । गलूलः ॥ जटाघटाकालाः क्षेपे ॥ जटालः । घटालः । कातालः । सकृथि । कर्ण । स्नेह । शीत । श्याम । पिङ्ग । पित्त । शुष्क । पृथु । मृदु । मञ्जु । पत्र । चटु । कपि । कण्डु । संज्ञा । क्षुद्रजन्तूपतापाच्चेप्यते । क्षुद्रजन्तुः । गूकालः । मक्षिकालः । उपताप-विचारिकालः । विषादिकालः । मूच्छालः । इति सिध्मादयः ॥

१३६-लोमादिषामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ अ० ॥

५ । २ । १०० ॥

लोमादिभ्यः षामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे यथासंख्यं श, न, इलच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । लोमान्यस्य सन्तीति लोमशः । लोमवान् । षाम विद्यतेऽस्य स षामनः । षामवान् । पिङ्गमस्यास्तीति पिच्छिलः । पिच्छिलवान् :---

लोमन् । रोमन् । बलूगु । बभ्रु । हरि । कपि । शुनि । तरु । इति लोमादयः । षामन् । वामन् । हेमन् । श्लेष्मन् । कटु । बलि । श्रेष्ठ । पलल । सामन् । अङ्गात्कल्याणे ॥ शाकीपलालीदन्ना ह्रस्वत्वं च ॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतेसन्धेः ॥ लक्ष्म्या अञ्च (१) ॥ इति षामादयः ॥ पिच्छ । उरस् । ध्रुवका । क्षुवका । जराघटाकालात् क्षेपे (२) ॥ वर्ण । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । इति पिच्छादयः ॥

१३७-ब्रीह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११६ ॥

प्रथमासमानाधिकरणब्रीह्यादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययो भवतः ब्रीह-योऽस्य सन्तीति ब्रीही । ब्रीहिकः । ब्रीहिमान् :—

(१) अङ्ग शब्दात्कल्याणे नः प्रत्ययः । कल्याणकरमंगं शरीरमस्याः सा, अ-ङ्गना । शाकिनः । पलालिनः । दद्रुणः । विषु-अच् इत्यवस्थायां नः प्रत्ययस्तदैवोत्तरपदस्याज् भागस्य लोपः । विष्वगस्यास्तीति विषुणः । लक्ष्मी अस्यास्तीति लक्ष्मणः । (२) कुत्सिता जटा अस्य सन्तीति जटिलः । एवं घटिलः । कालिलः ॥

ब्रीहि । माया । शिखा । मेखला । संज्ञा । बलाका । मालग बीखा । वडवा ।
अष्टका । पताका । कर्मन् । चर्मन् । हंसा (१) । यवखद । कुमारी । नौ (२) ।
शर्षिचजः ॥ अशीर्षी अशीर्षिका । इति ब्रीह्यादयः ॥

१३८—तुन्दादिभ्य इलञ्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११७ ॥

तुन्दादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इलञ्चकारादिनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति तु-
न्दोऽस्यास्तीति तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् :—

तुन्द । उदर । पिचण्ड । घट । यव । ब्रीहि । स्वाङ्गाद्विवृद्धौ च (१) ॥ इति०

१३९—अर्श आदिभ्योऽच् ॥ अ० ॥ ५ । २ । १२७ ॥

अर्श आदि प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽच् प्रत्ययो भवति । अर्शस्यस्य विद्यन्ते स, अ-
र्शसः :—

अर्शत् । उरस् । तुन्द । चतुर । पलित । जटा । घटा । अभ्र । कर्दम । आम ।
लवण । स्वाङ्गाद्वीनात् ॥ वर्णात् (४) ॥ आकृतिगणोयम् । इत्यर्श आदयः ॥

१४०—सुखादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३१ ॥

सुखादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । मतुवादीनामपवादः । सुखम-
स्यास्तीति सुखी । दुःखी :—

सुख । दुःख । तृप्त । कृच्छ्र । आम्र । अलीक । करुणा । कृपण । सोढ । प्र-
मीप । शील । हल ॥ माला क्षेपे (५) ॥ प्रणय । इति सुखादयः ॥

१४१—पुष्करादिभ्यो देशे ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३५ ॥

पुष्करादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे देशेऽभिधेये इनिः प्रत्ययो भवति । पुष्करोऽस्मिन्नि-
ति पुष्करी देशः । पट्टमी वा । देश इति किम् । पुष्करवान् हस्ती :—

(१) सिखादिभ्य इनिरेवेप्यते नतु ठक् ॥

(२) यवखदादिभ्यण्टगेवेप्यते शेषादुभयम् ॥

(३) विवृद्ध्युपाधिभूतात् स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकादिलञ् । दीर्घा नासिकाऽ-
स्यास्तीति नासिकिलः । लम्बौकण्यो यस्य स कर्णिलः । ओष्ठिलः ॥

(४) हीनशब्दात्परस्मात् स्वाङ्गादनेव स्यान्नतु मतुवादिः । अक्षिभ्यां हीनो ही-
नाक्षः । हीनहस्तः । हीनबाहवः । वर्णादिति श्वेतोद्ग्रेहणान्तत्वाकारादेः । श्वेतो वर्णो-
ऽस्यास्तीति श्वेतः । नीलः । कालः । पीतः । हरितः । इत्यादि ॥

(५) कुत्सिता मालाऽस्यास्तीति माली । मतुम्भाभूत् प्रणयी ॥

पुष्कर । पद्म । उत्पल । तमाल । कुमुद । नड । कपित्थ । बिस । मृणाल । क-
र्दम । शालूक । विगर्ह । करीष । शिरीष । यवास । प्रवास । हिरण्य । कौरव । कल्लो-
ल । तरङ्ग । वयस । इति । पुष्करादयः ॥

१४२-बलादिभ्यो मतुबन्धतरस्याम् ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३६ ॥

बलादिप्रातिपदिकेभ्यो मतुर्थे विकल्पेन मतुप् पक्ष इनिः ठक् तु न भवति । बल-
मस्यास्तीति बलवान् । बली :—

बल । उत्साह । उद्भाव । उद्वास । उद्दाम । शिखाबल । वृग्मूल । दंश । कुल
आयाम । व्यायाम । उपयाम । आरोह । अवरोह । परिणाह । सुद्धं ॥ इति बलादयः

१४३-देवपथादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०० ॥

देवपथादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे प्रतिकृतौ संज्ञायां च विहितस्य कन् प्रत्ययस्य लुच्
भवति । देवपथस्येव प्रतिकृतिः, देवपथः । हंसपथः :—

देवपथ । हंसपथ । वारिपथ । जलपथ । राजपथ । शतपथ । सिंहगति । उष्ट्री-
वा । चामरज्जु । रज्जु । हस्त । इन्द्र । दण्ड । पुष्प । मत्स्य । रथपथ । शङ्कुपथ ।
सिंहपथ । आकृतिगणोऽयम् । इति देवपथादयः ॥

१४४-शाखादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०३ ॥

शाखादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । शाखेव शाख्यः । मुख्यः :—
शाखा । मुख । जघन । शृङ्ग । मेघ । चरण । स्कन्ध । शिरम् । उरस् । अग्र ।
शरण । इति शाखादयः ॥

१४५-शर्करादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०७ ॥

शर्करादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शर्करेव, शर्करम् :—
शर्करा । कपालिका । पिष्टिका । कनिष्ठिक । कपिष्ठिक । पुण्डरीक । शतपत्र । गो-
लोमन् । गोपुच्छ । नरालि । नकुल । सिकता । इति शर्करादयः ॥

१४६-अङ्गुल्यादिभ्यष्टक् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०८ ॥

अङ्गुल्यादिप्रातिपदिकेभ्यः इवार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अङ्गुलिर्वाङ्गु-
लिकः :—

अङ्गुलि । मरुज । बभ्रु । वल्गु । मण्डर । मण्डल । शङ्कुल । कपि । उदशिवत् ।
गाणी । उरम् । शिखा । कुलिश । इत्यङ्गुल्यादयः ॥

१४७-दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११६ ॥

दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्त्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति । त्रिगर्त्तः षष्ठे येषां ते त्रिगर्त्तषष्ठाः । दामन्येवदामनीयः । दामनीयौ । दामन्यः । तद्भाजत्वद् बहुवचने लुक् । त्रिगर्त्तषष्ठाः । कौण्डोपरथएव, कौण्डोपरथीयः । अन्यत्पूर्वत् । दाण्डकि । कौण्डकि । जालमानि । ब्रह्मगुप्त । जानकि । इति त्रिगर्त्तषष्ठाः । अत्र जानकिरित्यस्यैव त्रिगर्त्तइति नामान्तरम्ः—

दामनी । औलपि । आकिदन्ती । काकरन्ति । काकदन्ति । शत्रुन्तपि । सार्वसेनि । बिन्दू । मौञ्जायन । उलभ । सावित्रीपुत्र । अच्युतन्ति । कोकतन्ती । तुलभ । देववापि । औतकी । अपच्युतकी । कर्की । पिण्ड ॥ इति दामन्यादयः ॥

१४८-पश्वर्वादियौधेयादिभ्यामणञौ ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११७ ॥

पश्वर्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽणञौ प्रत्ययौ यथासंख्यं भवतः । पशुरेव, पार्श्वः । यौधेयः :—

पशु । असुर । रक्षस् । वाल्हीक । वयस् । मेरुत् । दशार्ह । पिशाच । विशाल । अशनि । काषापिण । सत्वत् । वसु । इति पश्वर्वादयः ॥

यौधेय । कौशेय । क्रौशेय । शौक्रेय । शौभ्रेय । धार्त्तय । वार्त्तय । जावालेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

१४९-स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३ ॥

स्थूलादिप्रातिपदिकेभ्यः प्रकारवचनेद्योत्येकन् प्रत्ययो भवति । स्थूलप्रकारः, स्थूलकः :—

स्थूल । अणु । माप । इषु ॥ कृष्णतिलेषु ॥ यवव्रीहिषु ॥ इक्षुतिलपाद्यकालवदाताः सुरायाम् ॥ गोमूत्र आच्छादने ॥ सुराया अहौ ॥ जीर्णशालिषु । पत्रमूले समस्तव्यस्ते (१) कुमारी पुत्र । कुमार । श्वशुर । मणि ॥ इति स्थूलादयः ॥

१५०-यावादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । २९ ॥

यावादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । याव एव, यावकः :—

याव । मणि । आस्थि । चण्ड । पीतस्तम्ब । ऋतावुष्णशीते । पशौ लूनवियाते

(१) कृष्ण प्रकाराः कृष्णकास्तिलाः । यवका व्रीहयः । इक्षुका । तिलका । पाद्यका । कालका । अवदातका वासुरा । मूत्रक्रमाच्छादनम् । सुराकः सर्पः । जीर्णकाः शालयः । पत्रकं समस्तम् । मूलकं व्यस्तम् ॥

अणुनिपुणे । पुत्रकृत्रिमे ॥ स्नात वेदसमाप्तौ ॥ शून्यरिक्ते । दानकुत्सिते ॥ तनुपूत्रे ॥
(१) । ईयसरच ॥ श्रेयस्कः । ज्ञात । कुमारीकीडनकानिच । इति यावादयः ॥

१५१-विनयादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३४ ॥

विनयादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । विनय एव, वैनायिकः :-

विनय । समय । उपायाद्भूस्वत्वं च । औपयिकः । सङ्गति । कथंचित् । अक-
स्मात् । समयाचार । उपचार । समाचार । व्यवहार । सम्प्रदान । समुत्कर्ष । समूह ।
विशेष । अत्यय । अस्थि । कण्डु । इति विनयादयः ॥

१५२-प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३८ ॥

प्रज्ञानातीति प्रज्ञः । प्रज्ञादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । प्रज्ञ एव
प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । यस्यास्तु प्रज्ञा विद्यते सा प्राज्ञा भवति :-

प्रज्ञ । वणिक् । उशिक् । उण्णिक् । प्रत्यक्ष । विद्वस् । विदन् । षोडन् । षोड-
श । विद्या । मनस् । श्रोत्रशरीरे । श्रोत्रम् । जुह्वात् । कृष्णमृगे । कार्ण्यः । चिकीर्षत् ।
चोर । शक । योध । वक्षस् । चक्षुस् । धूर्त्त । वस् । एत् । मरुत् । क्रुड् । राजा । सत्व-
न्तु । दशार्ह । वयस् । आतुर । अमुर । रक्षस् । पिशाच । अशनि । कार्पाण । देवता ।
बन्धु ॥ इति प्रज्ञादयः ॥

१५३-द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १२८ ॥

द्विदण्ड्यादिशब्देषु बहुव्रीहिसमासेसमासान्तइच् प्रत्ययो निपात्यते । द्वाभ्यांदण्डा-
भ्यां हन्यतेऽसौ द्विदण्डि । अव्ययीभावसमासे परिगणनमतोव्ययत्वम् । एवं द्विमुसलि :-

द्विदण्डि । द्विमुसलि । उभाञ्जलि । उभयाञ्जलि । उभाकार्णि । उभयाकार्णि ।
उभादन्ति । उभयादन्ति । उभाहस्ति । उभयाहस्ति । उभापाणि । उभयापाणि । उ-
भाबाहु । उभयाबाहु (२) । एकपदि । प्रोक्षपदि । आक्षयपदि । सपदि । निकुच्यकार्णि ।
सहतपुच्छि ॥ इति द्विदण्ड्यादयः ॥

(१) उण्णकः, शीतको वाञ्छतुः । नूनकः, वियातको वा पशुः । अणुको निपु-
णः । पुत्रकः कृत्रिमः । स्नातको वेदपारगः । शून्यकं रिक्तम् । कुत्सितं दानं दानकम् ।
तनुकं सूत्रम् ॥

(२) अत्रोभयत्र निपातनादिचप्रत्यस्य लोपः । प्रत्ययलक्षणेन चाव्ययीभावसंज्ञा
भवत्येव । अत्रापिकेचिच्छब्दात्पुरुषसमासान्ता निपात्यन्ते । तेऽर्थसङ्गत्या ज्ञेयाः ॥

१५४-पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपो बहुव्रीहौ । व्याघ्रपादाविव पादा-
वस्य, स व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्य इति किम् । हास्तिपादः :-

हास्तिन् । कटोल । गण्डोल । गण्डोलक । महिला । दासी । गणिका । कुमूल । इति०

१५५-कुम्भपदीषु च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३९ ॥

कुम्भपदीप्रभृतयः कृतपादसमासान्तलोपः समुदायाबहुव्रीहौ समासेनिपात्यन्ते :-

कुम्भपदी । शतपदी । अष्टापदी । जालपदी । एकपदी । मालापदी । मुनिपदी ।
गोधापदी । गोपदी । कलशीपदी । वृत्तपदी । दासीपदी । निष्पदी । आर्द्रपदी । कुण-
पदी । कृष्णपदी । द्रोणपदी । द्रुपदी । शकृत्पदी । सूपपदी । पञ्चपदी । अर्बपदी ।
स्तनपदी । स्थूलपदी । सूत्रपदी । कलहंसपदी । द्विपदी । विष्णुपदी । सुपदी । सूकरपदी ।
सूचीपदी । इति कुम्भपदीप्रभृतयः ॥

१५६-उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १५१ ॥

उरः प्रभृत्यन्ताद्वहुव्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति । व्यूढमुरोऽस्य स व्यूढो-
रस्कः । प्रियसर्पिष्कः :-

उरस् । सर्पिस् । उपानह् । पुमान् । अनङ्वान् । नौः । पयः । लक्ष्मीः । दधि ।
मधु । शालिः ॥ अर्थान्नजः अनर्थकः । इत्युरः प्रभृतयः ॥

१५७-उज्झादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उज्झादीनां शब्दानामन्त उदात्तः स्वरो भवति :-

उज्झ । स्तेच्छ । जञ्ज । जल्प । जप । व्यध । वध ॥ युगकालविशेषे रथाद्यु-
पकरणे च ॥ गरो दूष्येऽवन्तः ॥ वेगवेदचेष्टबन्धाः करणे ॥ स्तुयुद्धवशब्दसि । पारे-
स्तुत् । संयुत् । परिद्रुत् ॥ वर्तनिः स्तोत्रे ॥ श्वभ्रेदरः ॥ साम्बतापो भावगर्हायाम् ॥
उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥ भक्षमन्यभोगदेहाः ॥ इत्युज्झादयः ॥

१५८-वृषादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २०३ ॥

वृषादीनामादिरुदात्तो भवति :-

वृषः । जनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । गयः । नयः । तयः । पयः । वेदः । अंशः ।
दवः । सूदः । गुहा ॥ शमरणौ संज्ञायां संमतौ भावकर्मणोः ॥ मंत्रः । शान्तिः । कामः ।
याम्रः । आरा । धारा । कारा । वहः । कल्पः । पादः ॥ आकृतिगणोऽयम् । अवि-
हितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ॥ इति वृषादयः ॥

१५९-कार्तिकौजपादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ३७ ॥

कृतद्वन्द्वसमासाः कार्तिकौजपादयः शब्दः पूर्वपदप्रकृतिस्वरा भवन्ति । कृतस्यापत्यं कार्तः । कुजपस्यापत्यम् कौजपः । कार्तश्च कौजपश्च :-

कार्तिकौजपौ । सावर्णिमाण्डूक्यौ । आधन्त्यश्मकाः । पैलश्यापर्णियाः । पैलश्यापर्ण्यौ । कपिश्यापर्णियाः । शैतिकान्तिपांचालेयाः । कटुकवाचलेयाः । शाकलशुनकाः । शाकलसणकाः । शुनकधात्रेयाः । सणकवाभवाः । आर्चाभिर्मौद्गलाः । कुन्तिसुराष्ट्राः । चितिसुराष्ट्राः । तण्डवतण्डाः । गर्गवत्साः । अविमत्तकामविद्धाः । वाभ्रवशालङ्कायनाः । वाभ्रवदानच्युताः । कठकालापाः । कठकौधुमाः । कौधुमलौकाक्षाः । स्त्रीकुमारम् । मौदपैप्यलादाः । मौदपैप्यलादाः । द्विःपाठः समासान्तोदात्तार्थः । वत्सजरत् । सौश्रुतपार्थवाः । जराशृत्यु । याज्यानुवाक्ये ॥ इति कार्तिकौजपादयः ॥

**१६०-कुरुगार्हपतिरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेव-
डवातैतिलकद्रुः पण्यकम्बलोदासीभाराणाञ्च ॥ अ० ॥**

६ । २ । ४२ ॥

कुरुगार्हपत , रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रु, पण्यकम्बल इत्येषां समासानां दासीभारादीनां च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । कुरूणां गार्हपतं कुरुगार्हपतम् । रिक्तो गुरुः रिक्तगुरुः । असूता जरती, असूतजरती । अश्लीला दृढरूपा अश्लीलादृढरूपा । दास्या भारो दासीभारः :-

दासीभारः । देवहूतिः । देवजूतिः । देवसूतिः । देवनीतिः । वसुनीतिः । ओषधिः । चन्द्रमाः । अविहितलक्षणः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥

१६१-युक्तारोह्यादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८१ ॥

युक्तारोह्यादिषु पूर्वपदमाद्युदात्तं निपात्यते :-

युक्तारोही । आगतरोही । आगतयोधी । आगतवञ्ची । आगतनर्दी । आगतप्रहारी । आगतमत्स्या । क्षीरहोता । भगिनीभर्ता । ग्रामगोधुक् । अश्वत्रिरात्रः । गर्गत्रिरात्रः । व्युष्टात्रिरात्रः । शणपादः । समपादः । एकशितिपात् ॥ पात्रेसम्मितादयश्च ॥ इति०

१६२-घोषादिषु च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८५ ॥

घोषादिषु चोत्तरपदेषु परेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति :-

दाक्षिण्यः । दाक्षिकटः । दाक्षिपल्लः । दाक्षिवल्लभः । दाक्षिहृदः । दाक्षि-
बदरी । दाक्षिपिङ्गलः । दाक्षिपिशङ्गः । दाक्षिशालः । दाक्षिरत्नः । दाक्षिशिल्पी ।
दाक्ष्यश्वत्थः । कुन्दतृणम् । दाक्षिशालमली । आश्रयमुनिः । शास्त्रमलिमुनिः । दाक्षि-
पुंसा । दाक्षिकूटः । इति घोषादयः ॥

१६३-प्रस्थेऽवृद्धनकर्त्र्यादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८७ ॥

प्रस्थ उत्तरपदेकनर्त्यादिरहितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । इन्द्रप्रस्थः । कुण्डप्रस्थः ।
अवृद्धमिति किम् । दाक्षिप्रस्थः । अकर्त्र्यादीनामिति किम् । कर्कप्रस्थः :—

कर्क । मघी । मकरी । कर्कन्तू । शमी । करीर । कटुक । कुरल । कवल । वर-
द ॥ इति०

१६४-मालादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८८ ॥

प्रस्थ उत्तरपदे मालादय आद्युदात्ता भवन्ति । मालाप्रस्थः । शालाप्रस्थः :—

माला । शाला । शोणा । द्राक्षा । क्षौमा । क्षामा । काञ्ची । एक । काम । इति०

१६५-क्रत्वादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ११८ ॥

सोत्तरपदस्थाः क्रत्वादयो बहुव्रीहौ समाप्ते आद्युदात्ता भवन्ति । सुक्रतुः :—

क्रतु । दृशीक । प्रतीक । प्रपुत्ति । हव्य । भग । इति क्रत्वादयः ॥

१६६-आदिश्चिहणादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १२५ ॥

कन्थान्ते नपुंसके तत्पुरुषेचिहणादिपूर्वपदानामादिरुदात्तो भवति । चिहणकन्थम् :—

चिहण । मडर । मडुर । वैतुल । पट्टक । वैडालिकर्णः । वैतालिकर्णः । कुक्कुट
चित्कण । चिक्कण ॥ इति चिहणादयः ।

१६७-चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३४ ॥

तत्पुरुषसमाप्तेऽप्राणि वाचिनः पठ्यन्तात्पराणि चूर्णादीन्युत्तरपदानि आद्युदात्ता नि
भवन्ति । मुद्गस्य चूर्णं मुद्गचूर्णम् :—

चूर्ण । करिप । करिव । शाकिन । शाकट । द्राक्षा । तूस्त । कुन्दम् । दलप ।
चमसी । चकन । चकन । चौल ॥ इति चूर्णादीनि ॥

१६८-उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पत्यादिषु समासेषूभे पूर्वोत्तर पदे युगपत्प्रकृतिस्वरे भवतः :—

वनस्पतिः । बृहस्पतिः । शचीपतिः । तनूनपात । नराशंसः । शुनशेषः । शण्डा-

मर्कौ । तृष्णावरूपा । बन्धाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः । इति वनस्पत्यादयः ॥

१६९-संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४६ ॥

संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात्परं क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । आचितादन्नि वर्जयित्वा संभूतः । धनुष्वाता । अनाचितादीनामिति किम् :—

आचिनम् । पद्याचितम् । आस्थापितम् । परिगृहीतम् । निरुक्तम् । प्रतिपन्नम् । प्रशिलष्टम् । उपहतम् । उपस्थितम् । संहिताऽगति ॥ इत्याचितादयः ॥

१७०-प्रवृद्धादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४७ ॥

प्रवृद्धादिशब्दानां क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । प्रवृद्धयानम् :—

प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुक्तः । सक्तवः । आर्कषेऽवहितः । अवहितो भोगेषु । खट्वा-
रूढः । कविशस्तः । आकृतिगणत्वात् पुनरुत्स्यूतं वासोदेयम् । पुनर्निष्कृतो रथः । इति०

१७१-निरुद्धादीनि च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४८ ॥

निरुद्धादीनि च शब्दरूपाण्यन्तोदात्तानि निपात्यन्ते :—

निरुद्धकम् । निरुलपम् । निरुलम् । निर्मशकम् । निर्मल्लिकम् । निष्कालकः । निष्कालिकः । निष्पेपः । दुस्तरपः । निस्तरपः । निस्तरिकः । निराजिनम् । उदाजिनम् । उपाजिनम् ॥ परेहस्तपादकेशकर्पाः । परिहस्तः । परिपादः । परिकेशः । परिकर्षः । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति निरुद्धादयः ।

१७२-प्रतेरंश्वादयस्नत्पुरुषे ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४९ ॥

तत्पुरुषसमासे प्रतेरुत्तरा अंश्वादयोऽन्तोदात्ताभवान्ति । प्रतिगतोऽंशुः प्रत्यंशुः :—

अंशु । जन । राजन् । उष्ट्र । रोटक । अजिर । आर्द्रा । श्रवणः । कृतिका । अर्द्ध । पुर ॥ इत्यंश्वादयः ॥

१७३-उपाद् अजजिनमगौरादयः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १५० ॥

उपादुत्तरयञ्चब्दरूपमजिनं च तत्पुरुषसमासे गौरादिवाजितमन्तोदात्तं भवति । उपगतो देवमुपदेवः । उपसोमः । उपाजिनम् । अगौरादय इति किम् । उपगौरः :—

गौर । नैष । तैल । लेट । लोट । जिह्वा । कृष्णा । कन्या । गुड । कल्प । पाद । इति गौरादयः ॥

१७४-स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे-

स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितपुंसकशब्दात्परस्य समानाधिकरणस्त्रीलिङ्गे पूरणीप्रियादिर्वाजिते उत्तरपदे परतः पुंशब्दस्यैव रूपं भवति । दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः । दीर्घजङ्घुः । अप्रियादिस्वितिकिम् । कल्याणीप्रियः :-

प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भक्तिः । सचिवा । अम्बा । कान्ता । क्षान्ता । समा । चपला । दुहिता । वामा ॥ इति प्रियादयः ॥

१७५-वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम् ॥

अ० ॥ ६ । ३ । ११७ ॥

वन, गिरि, इत्येतयोरुत्तरपदयोः परयोर्ग्रन्थसंख्यं कोटरादीनां किंशुलकादीनां च संज्ञायां विषये दीर्घो भवति । कोटरावणम् । किंशुलकागिरिः :-

कोटर । मिश्रक । पुरक । सिधक । सारिक । इति कोटरादयः ॥ किंशुलक । साल्वक । अञ्जन । लोहित । कुक्कुट । इति किंशुलकादयः ॥

१७६-मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११९ ॥

मतौ प्रत्यये परतोऽनजिरादिर्वाजितस्य बह्वचो दीर्घो भवति संज्ञायां विषये । उदुम्बरावती । मशकावती । अमरावती । अनजिरादीनामिति किम् :-

अनिरवती । खदिरवती । पुलिनवती । हंसकारण्डवती । चक्रवाकवती । इत्यानजिरादयः ॥

१७७-शरादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२० ॥

संज्ञायां विषये मतौ परतः शरादीनां च दीर्घो भवति । शरावती । वंशावती :- शर । वंश । धूम । अहि । कपि । मणि । मुनि । शुचि । हनु । इति शरादयः ॥

१७८-द्वारादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १४ ॥

द्वारादीनां युवाभ्यामुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति । किन्तु युवाभ्यां पूर्ववैजागमौ भवतः । द्वारेनियुक्तः, दौवारिकः । स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौवरः :-

द्वार । स्वर । व्यलकश । स्वस्ति । स्फचकृत । स्वादुमृदु । श्वनूस्व । इति द्वारादयः ॥

१७९-स्वागतादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १७ ॥

स्वागतादीनां शब्दानां युवाभ्यां पूर्वौ अित् णित् कित् तद्धिते परत ऐजागमौ न भवतः । वृद्धिस्तु भवत्येव । स्वागतमित्याह स्वागतिकः । स्वाध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः :-

स्वागत । स्वध्वर । स्वङ्ग । व्यङ्ग । व्यङ्ग । व्यवहार । स्वपति । इति स्वागतादयः ॥

१८०-अनुशतिकादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । २० ॥

मितिणितिकितित्तिरिते परतोऽनु शतिकादिशब्दानां पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचः-
स्थानेवृद्धिर्भवति । अनुशतिकस्येदमानुशतिकम् :-

अनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहत्य । बध्योग । पुष्क-
रसत् । अनुहत् । कुरुकत । कुरुपञ्चाल । उदकशुद्ध । इहलोक । परलोक । सर्वलो-
क । सर्वपुरुष । सर्वभूमि । प्रयोग । परस्त्री । राजपुरुषात् प्यभि ॥ सूत्रनड ॥ आकृतिग-
णोऽयम् (१) ॥ इत्यनुशतिकादयः ॥

१८१-न्यङ्कादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५३ ॥

न्यङ्कादिषु कुत्वं निपान्यते । नितरामञ्चतीति :-

न्यङ्कुः । मङ्गुः । भृगुः । दूरेपाकः । फलेपाकः । क्षणेपाकः । फलेपाका । दू-
रेपाकः । फलेपाकः । तक्रम् । वक्रम् । व्यतिषङ्गः । अनुषङ्गः । अवसर्गः । उपसर्गः ।
गेघः । श्वपाकः । मांसपाकः । कपोतपाकः । उलूकपाकः । संज्ञायामर्घः । अबदाघः ।
निदाघः (२) । न्यग्रोधः ॥ इति न्यङ्कादयः ॥

१८२-पूजनात्पूजितमनुदात्तकाष्ठादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । १ । ६७ ॥

पूजनवाचिभ्यः काष्ठादिभ्यः परं पूजितमुत्तरपद मनुदात्तं भवति । काष्ठश्चासावध्यापकः
काष्ठाध्यापकः :-

काष्ठ । दारुण । अमातापुत्र । अयुत । अद्भुत । अनुक्त । भृश । घोर । परम ।
सु । अति । अनुज्ञात । कल्याण । वेश ॥ इति काष्ठादयः ॥

१८३-मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ९ ॥

मकारान्तान्मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्च परस्य मतुपोमकारस्य वकारादेशो भ-
वति नतु यवादिभ्यः परस्य मस्य वो भवति । मान्तात् किंवान् । शंवान् । मकारोप-
धात् । शमीवान् । दाडिमीवान् । अवर्णान्तान् । वृक्षवान् । खट्वावान् । अवर्णोपधात् ।
यशस्वान् । भास्वान् । मादुपधाश्चेति किम् अग्निमान् । अयवादिभ्य इति किम् । यवमान् :-

यव । दलिम । ऊर्मि । भूमि । कृमि । कुञ्चा । बशा । द्राक्षा । वृक्षा । वैशा । ध-

(१) अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति । अभिगममर्हति, अभिगामिकः । अधिदेवैवम-
धिदैविकम् । आधिभौतिकम् । आध्यात्मिकम् । चतस्रएवविधाः, चातुर्वैद्यम् । स्वार्थेऽप्यञ् ।

(२) अर्घ, अबदाघ, निदाघ, इति त्रिषु शब्देषु संज्ञायामेव कुत्वं । अन्यत्र । अर्हः ।
अवदाहः । निराहः ॥ .

जि । ध्वजि । सज्जि । वजि । ब्रजि । शज्जि । सिज्जि । हरित् । ककुत् । गरुत् । इज्जु ।
मधु । दुम । मण्ड । धूम । आकृतिगणोऽयम् ॥

१८४-कस्कादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ४८ ॥

कस्कादिशब्देषु विसर्जनीयस्य सः षो वा कवर्गपवर्गयोः परतः :—

कस्कः । कौतस्कतः । आतुप्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्कीः । सद्यस्कः ।
कास्कान् । सर्पिष्कुशिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् । अयस्काण्डः ।
मेदस्पाण्डः । आकृतिगणोऽयम् । इति कस्कादयः ॥

१८५-सुषामादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९८ ॥

सुषामादिषु सकारस्यमूर्द्धन्यादेशोनिपात्यते । शोभनं सामयस्यासौ सुषामाब्राह्मणः :—

सुषामा । निष्षामा । दुष्पेधः । सुषन्धिः । दुःषन्धिः । निषन्धिः । सुष्ठु । दुष्ठु । गौ-
रिषक्थः संज्ञायाम् ॥ प्रतिष्णिका । जलापाहम् । नौषेवनम् । दुन्दुभिः षेवनम् ॥ अवि-
हितस्तच्छयो मूर्द्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः । इति सुषामादयः ॥

१८६-न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ अ० ॥

८ । ३ । ११० ॥

रेफपरस्य सकारस्य सृपिसृजिस्पृशिस्पृहि सवनादीनां सस्यमूर्द्धन्यादेशो न भवति ।
रपर, विस्त्रंसिका । विस्त्रब्धः । विसृपः । विसर्जनम् । सुस्पृशम् । निस्पृहम् :—

सवने सवने । सूते सूते । सामे सामे । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुसवनम् ।
नृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । संवत्सरे संवत्सरे । मुसलं मुसलम् । गोसनिम् । अश्व-
सनिम् । इति सवनादयः ॥

१८७-जुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३९ ॥

जुभ्ना इत्यादि शब्देषु नस्य णकारादेशो न भवति । यथाप्राप्तिनिषेधः :—

जुभ्नाति । जुभ्नीतः । जुभ्नन्ति । नृनमन । नन्दिन् नन्दिन् । नगर । नरीनृत्यते ।
तृम् । नर्त्तन । गहन । नन्दन । निवेश । निवाश । अग्नि । अनूप ॥ आचार्यादणत्वंच ॥
आचार्यभोगीनः । आचार्यानी । हायन । इरिकादिभ्यः । वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम् ॥

इरिका । तिमिर । समीर । कुबेर । हरि । कर्मार । जुम्नादिशकृतिगणः ॥ इति
जुभ्नादयः ॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

अथ गणपाठ शुद्धाशुद्धयम् ॥

भूमिका ॥		३२ २२ मागयनः	आर्गयनः
पृष्ठे पंक्तौ अशुद्धम्	शुद्धम्	३२ २ (नोट) भवः	भवः
१ ६ चिन्ह	चिन्ह वा (-) ऐसा	३३ १७ स ता	स ताक्ष
१ १३ वातिक	वातिक	३८ ५ वाच	वा च
		३९ २ न	न
पृष्ठे पंक्तौ अशुद्धम्	शुद्धम्	४० ६ समान	समाना
१ ४ प्रति	प्रति	३९ १२ छेदनं	छेदं
२ ६ कृत्वर्थः	कृत्वर्थः	३९ १४ वैरङ्गकः	वैरङ्गिकः
३ १ (नोट)		” ” प्रवचना	प्रवचनादि
उपसमा	उपसर्गा	४० १० इत्या	इत्य—
४ २० तादृयाः	तादृयः	४१ १९ राश्रम	राश्रम्य
४ ३ (नोट) तोइच्	तेच्	४१ १५ परिमाण्डल	परिमाण्डल
५ ४ (नो.) गतिप्रा	कुगतिप्रा	४१ २४ सासैन्य	वा सैन
६ १० (नो.) पिबति	पिबत	४२ १० कैशीर	कैशीर
= ३ (नोट) विधि	विधी	४२ १० नान्तु	नान्त
१० १ (नोट) युवा	युवा	४४ २ ध्याया	ध्यायो
१२ = (नोट) जिन-	जिनयश्च	४४ ३ (नोट) शब्दो	शब्दो
पश्चा		४५ १८ कृते	कृत
१६ २ (नोट) सवाज	सुवाज	” २२ प्रत्ययो	प्रत्ययौ
२१ ३ (नोट) हृद्ग	हृद्ग	” २ (नोट) पलालिनः	पलालिनः
२२ ५ (नोट) यञ्	यञ्	४७ २३ ष्टक्	ष्टक्
२२ ६ (नोट) प्रत्य	प्रत्यय	४९ ४ (नोट) प्रत्यस्य	प्रत्ययस्य
२४ २५ वाजपेयि	वाजपेयि	” ५ (नोट) च्छब्दः	च्छब्दः
२४ २० ०	विश्वदेव	५० ६ लोपः	लोपाः
२८ ३ ०	विजग्ध	५१ २६ घोषा	घोषा
२९ ६ सर्वथ	सर्वन्थ	५१ १७ अश्लीला	अश्लील
२९ २१ माह्वी	माह्वी	५२ २१ न्यत्तर	न्यत्तर
२९ १४ कृत्वा	कृत्वा		

वर्णमाला शुद्धाशुद्धयम् ॥

४० १० अशुद्ध	शुद्ध	॥ १ दिविति	दिविति
४१ ११ ने	नि	॥ १६ द्वारदीना	द्वारादीनां
४२ १२ यज	द्वयज	॥ २० युवाभ्या	य्वाभ्या
४३ १ पुस्तक	पुस्तक	॥ २१ युवाभ्यां	य्वाभ्यां
४४ ११ ०	भजनन	॥ २२ कुपथा	कुपथाया

॥ अथ वे-ङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

त्रयोदशो भागः ॥

उणादिकोषः ।

पाणिनिमुमिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

द्वादशो भागः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

यज्ञदत्तशर्माशास्त्रिणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित हुआ ।
इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि
इस को रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९४८ पोष कृष्ण ०
द्वितीय वार २००० पुस्तक कृपे
मूल्य ॥१॥ डा० व्य० ८॥

अथ भूमिका ॥

—:०*०:—

सब उणादिगणस्थ शब्द इस वक्ष्यमाण एक सूत्र की विशेष व्याख्या में हैं:—

उणादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ ॥ १ ॥

वर्तमान काल में धातुओं से उणादि प्रत्यय बहुल करके होते हैं ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

और कहीं २ भूतकाल में भी इन का विधान दीख पड़ता है ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

और गमी आदि गणपटित वक्ष्यमाण शब्द भविष्यत्काल में ही होते हैं । उणादिप्रत्ययों के होने के लिये यह तीनों काल का नियम है । गम्यादि शब्द । गमी । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी । प्रतियायी । आयायी । भावी । इन से अन्य शब्द भूत और वर्तमान अर्थों के बोधक होते हैं । अब जितनी प्रकृतियों में जितने उणादि प्रत्यय कहे हैं उतने ही जानना चाहिये वा कुछ विशेष इस लिये :—

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।

कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।

यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्चतदूह्यम् ॥ २ ॥

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।

कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥

महाभाष्ये ॥

इसी सूत्र की व्याख्या में महाभाष्यकार पतञ्जलिमुनि उणादिपाठ की व्यवस्था बांधते हैं कि (बाहुलकम्) उणादि पाठ में थोड़े से धातुओं से प्रत्यय विधान किया है सो बहुल के होने में वे प्रत्यय अन्य धातुओं से भी होते हैं । इसी प्रकार प्रत्यय भी थोड़े से संग्रहित मात्र पड़े हैं । सत्प्रयोगों में देख के इन से अन्य भी नवीन प्रत्ययों की कल्पना कर लेनी चाहिये । जैसे (ऋफिडः) इस शब्द में ऋ धातु से फिड प्रत्यय सम्भवा जाता है । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये । तथा जितने शब्द उणादिगण से सिद्ध होते हैं उन में जितने कार्य सूत्रों में प्राप्त हैं वे सब नहीं होते यह भी बहुल ग्रहण का ही प्रताप है । इस में यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि उणादिपाठ में जितने धातुओं से जितने प्रत्यय विधान किये और शब्दों की सिद्धि में जितने कार्य सूत्रों से हो सकते हैं उन से अधिक वा न्यून क्यों होते हैं ? तो इस का उत्तर यह है कि (नैगम०) वैदिक शब्द और लौकिक सञ्ज्ञा शब्द ये सब अच्छे प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते । इस लिये पूर्वोक्त तीन प्रकार के कार्य उणादिगण में बहुल वचन से होते हैं इस बहुल के होने से अनेक प्रकार के सहस्रों शब्द सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

संज्ञा शब्द वे ही कहते हैं जो किसी निज वाच्य के साथ सम्बन्ध रखें फिर उन की सिद्धि करने से क्या प्रयोजन है क्योंकि वे संज्ञाशब्द जिस निज अर्थ के बोधक हैं उस का बोध तो प्रकृति प्रत्ययार्थ सम्बन्ध के बिना भी कराते ही हैं वही पश्चात् होगा इस लिये (नाम च०) इस विषय में निरुक्तकारों और वैयाकरणों में शाकटायन ऋषि का ऐसा मत है कि सब संज्ञा (रुढि) शब्द प्रकृति प्रत्ययार्थ के सम्बन्ध से यौगिक तथा योगरूढता से अर्थों के बोधक होते हैं । इन से भिन्न अन्य ऋषियों के

मतानुसार सब संज्ञा शब्द छुटि अर्थात् अव्युत्पन्न होते हैं। अब जहां शब्दों में प्रकृतिप्रत्यय कुछ भी नहीं जान पड़ता वहां (प्रत्ययतः०) यदि प्रत्यय जान पड़े तो धातु की कल्पना और धातु जान पड़े तो नवीन प्रत्यय की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार उन शब्दों का अर्थ-ज्ञान कर लेना चाहिये ॥ २ ॥ संज्ञा शब्दों में धातुओं का रूप पूर्व भाग में और शब्द के पर भाग में धातु से परे प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। और जिस शब्द में जिस अनुबन्धका कार्य्य दीख पड़े वैसे ही सानुबन्धक धातु वा प्रत्ययों की ऊहा करनी चाहिये। अर्थात् आत्मनेपद दीख पड़े तो अनुदातेत् वा डित् धातु जानना और जो आद्युदात्त स्वर हो तो जित् वा नित् प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं करनी किन्तु वैदिक वा लौकिक मत्प्रयुक्त शब्दों के अर्थ जानने के लिये शब्दों के पूर्व भाग में धात्वर्थ की और पर भाग में प्रत्ययार्थ की कल्पना करनी चाहिये। यह सब सम्वन्ध जपि लोगों ने इस लिये बांधा है कि अथाह शब्दों के सागर की याह व्याकरण से भी नहीं मिल सकती। जो कहें कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया कि जिस से शब्दसागर के पार पहुंच जाते तो यह समझना चाहिये कि कितने ही पीया बनाते और जन्मजन्मान्तर्गं भर पढ़ते तो भी पार होना दुर्लभ हो या इस लिये यह पूर्वोक्त व्याकरण से सब प्रबन्ध जताया है ॥ ३ ॥ उणादिगण में कारक व्यवस्था का यह नियम है कि—

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

यह सूत्र सामान्य कृदन्त का नियामक है कि दाश और गोघ्न शब्द औणादिक हों वा अष्टाध्यायी से मिदु हों परन्तु प्रत्यय संप्रदान कारक में ही हों। इस नियम से ये दो ही शब्द संप्रदान में होते हैं अन्य नहीं ॥

भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादि शब्दों में अपादानकारक में ही प्रत्यय होते हैं। भीमादि शब्द औणादिक हैं जैसे—भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रतपनः । समुद्रः । सूचः । सुक् । खलतिः । इति भीमादि गणः ॥

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

उन संप्रदान और अपादान दोनों कारकों से भिन्न अन्य कारकों में उणादि प्रत्यय होते हैं। व्युत्पन्न पक्ष में उणादि प्रत्ययान्त शब्दों के यौगिक होने से प्रत्ययों को कृतसंज्ञक मान के कर्ता में प्राप्त हैं इस लिये यह कारकनियम है। और भाव में भी उणादि प्रत्यय होते हैं। संप्रदान और अपादान को छोड़ के अन्य कारकों में तो उणादि प्रत्ययों का यथेष्ट विधान है परन्तु बहुलवचन से कहीं संप्रदान में भी कोई प्रत्यय कर दिये हों तो चिन्ता नहीं। इस उणादिगण की एक वृत्ति छपी भी है परन्तु वही पोपलाला आदि का जगड्वाला बहुत और प्रयोजन थोड़ा सिद्ध होता है। इस लिये यह कोप बनाना पड़ा। इस ग्रंथ में सूचों का पाठ तथा अर्थ बहुधा सुगम है इसी लिये प्रति सूच का अर्थ वृत्ति में नहीं किया और जहाँ कुछ कठिन जान पड़ा वहाँ खोल दिया है। अनुवृत्ति भी बहुधा जनादी है। इस का मूल ऊपर २ पृथक् इस लिये छप वाया है कि अध्येता लोगों को पाठ करने और घोषण से कण्ठस्थ करने में सुगमता रहेगी। जो अंक सूच के अन्त में लिखा है वही नीचे वृत्ति के आदि में डाल दिया है। इस से बड़ी सुगमता होगी। इस में विशेष करके लौकिक शब्द और सामान्य से वैदिक लौकिक दोनों ही सिद्ध किये हैं। निघण्टु में जितने वैदिक शब्द हैं उन में से बहुतों का निर्वचन वृत्ति में मिले गा। सो दोनों की

अकारादि सूची को देख के खोज लेना चाहिये। निर्वचन तो सब शब्दों का कर दिया है परन्तु वे धातुगणानुबन्ध और अर्थ के सहित यहां नहीं लिखे हैं क्योंकि ग्रन्थ बहुत बड़ जाता इस लिये धातु के प्रयोग से गण अनुबन्ध तथा उस के पर्याय शब्द से धातु के अर्थ का बोध कर लेना चाहिये। संस्कृत में वृत्ति बनाने का यही प्रयोजन है कि जो लोग पठनपाठन व्यवस्था के पहिले पुस्तकों को पढ़ेंगे उन के लिये संस्कृत कुछ कठिन नहीं होगा और संस्कृत भी सरल ही बनाया है। कई शब्दों के अर्थ इति शब्द लगा कर भाषा में भी खोल दिये हैं ॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर } दयानन्द सरस्वती
माघ कृष्ण १ संवत् १९३६

अथोणादिकोषः ॥

— ३ * ८ —

कृवापाजिभिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥ १ ॥ कारुः । वायुः ।
पायुः । जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशु । आशुः ॥ १ ॥

छन्दसीणः ॥ २ ॥ आयुः ॥ २ ॥

दृसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो जुण् ॥ ३ ॥ दारु । सानुः ।
जानु । चारु । चाटु । राहुः ॥ ३ ॥

(१) करोतीति कारुः कर्ता शिल्पी वा । वाति गच्छति जानाति वेति
वायुः पवनः परमेश्वरो वा । पाति रक्षति स पायू रक्षकः गुदेन्द्रियं वा ।
जयत्यभिभवति तिस्करोति शत्रूनि जायुः शूरः । जयति रोगानिति जायु-
रौषधं वैद्यो वा । यो मिनोति प्रक्षिपति स मायुः । अथवा मिनोति प्रक्षिप-
त्युष्माणमिति मायुः पितृम् । गां विकृतां वाचं मिनोतीति गोमायुः शृगालः ।
स्वद्यते भोक्तुमभोष्यते तत्स्वादु भोज्यमन्नं वा । साधनोति धर्म्यं कर्मेति साधुः
सज्जनः । अश्नुते व्याप्नोति तदाशु शीघ्रम् । अश्नुते सद्योऽध्वानमित्याशु-
रश्वः । वाऽश्रयते भुज्यते शीघ्रमित्याशुर्धान्यं व्रीहिः बहुलवचनात्—स्नाति
शीघ्रयत्यङ्गानोति स्नायुर्नाडो वा । कव्यते लोलश्चञ्चलो भवति येनेति
कारुः । भयादिः ध्वनेर्विकारो वा । हल्यते द्विद्यतेऽन्नमनेनेति हालुः । दन्तो
वा । वसति जगदस्मिन् वा सर्वस्मिन् यो वसति स वासुरीश्वरः । इत्यादि ।

(२) वेद इण् धातोरुण् । एति प्राप्नोति सर्वानित्यायुर्जावनकालः ।
सान्तस्तु द्वितीयपादे वक्ष्यते ॥

(३) दीर्यते भिद्यत इति दारु काष्ठं वा । सनति सम्भजति मनोति ददाति
वा स सानुः । पर्वतैरुद्देशशृङ्गबुधमार्गवात्यापर्णवनानि च सानूनि वा । जाय-
न्तेऽस्मात्तज्जानु जङ्घाया उपरिभागे वा । जनिवध्योश्चेति प्रतिपिद्वाऽप्यनुब-
न्धद्वयसामर्थ्यादृदुर्भवति । चरति चक्षुरादिष्विति चारुशोभनम् । चटति भि-
नतीति चाटु प्रियंवचो वा । रहति त्यजति दोषानिति राहुः । ग्रहविशेषो वा ॥

किंजरयोः श्रिणः ॥ ४ ॥ किंशारुः । जरायुः ॥ ४ ॥
 त्रोरश्चलः ॥ ५ ॥ तालु ॥ ५ ॥
 कृके वचः कश्च ॥ ६ ॥ कृकवाकुः ॥ ६ ॥
 भृमृशीङ्गुचरित्सरितनिधनिमस्जिभ्य उः ॥ ७ ॥ भरुः ।
 मरुः । शयुः । तरुः । चरुः । त्सरुः । तनुः । धनुः । मयुः । मद्गुः ॥ ७ ॥
 अणश्च ॥ ८ ॥ अणुः ॥ ८ ॥

(४) किं अयतेऽनेनेति किंशारुः धान्यविशेषो वा । जरां जीर्णतामेति जरायुः । गर्भाशयो गर्भावगणं वा ॥

(५) तृ धातोर्जुग् रेफस्य लत्वम् । तरन्ति निःसरन्ति वर्णा यत इति तालु मुखेकदेशः । बाहुलकात्—अर्यते प्राप्यत इत्यालु भक्षयं कन्दं वा । भृणाति स्वतापेन छेदयति पदार्थानिति भालुः सूर्यः । शृणाति चित्तं हिनस्ताति शालुः । कपायद्रव्यं वा । इत्यादि ॥

(६) कृकोपपदाद्वचधातोर्जुग् । कृकेन कण्ठेन वक्तोति कृकवाकुर्य-वनादिर्मयूरो वा ॥

(७) भरति विभर्ति वेति भरुः । स्वामी । म्रियन्ते भूतान्यस्मिन्निति मरुर्निर्जलो देशो वा । श्रुतेऽसौ शयुः शयनशीलः । यस्तरति येन वा स तरुः वृक्षो वा । चरति चर्यतेऽग्निना भक्षयत इति चरुः । यज्ञपाको वा । त्सरति कुटिलं गच्छतीति त्सरुः । खड्गमुष्टिर्वा । तन्यन्ते कर्माशयनेनेति तनुः शरीरं स्वल्पं वा । धन्यते धनं प्राप्यतेऽनेनेति धनुः शास्त्रं शस्त्रं वा । मिनोति सुगन्धं प्रक्षिपतीति मयुः वानरो वा । मज्जति शुद्धो भवतीति मद्गुः जनपूवी पत्नी वा । न्यङ्क्वाटित्वात्कुत्वम् । बाहुलकात्—गण्डति स गण्डुः वदनैकदेशः । उपधानम्—तक्रिया इतिप्रसिद्धं नैलं वा ॥

(८) अणाति शब्दयतीत्यणुः अतिसूक्ष्मं वा अञ्च चकार ग्रहणाद् वा कटति विकारयतीति कटूरसः । वटति गुणकर्मणि विभजतीति वटुः । द्विजसुतो वा ॥

धान्ये नित् ॥ ९ ॥ अणवः ॥ ९ ॥

शृस्वस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिवन्धिमनिभ्यश्च ॥ १० ॥

शरुः । स्वरुः । स्नेहुः । त्रपु । असुः । वसुः । हनुः । क्लेदुः । बन्धुः । मनुः ॥ १० ॥

स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च ॥ ११ ॥ सिन्धुः ॥ ११ ॥

उदेरिच्चादेः ॥ १२ ॥ इन्दूः ॥ १२ ॥

ईषेः किञ्च ॥ १३ ॥ इषुः ॥ १३ ॥

(६) अणान्ति शब्दायन्ते यैस्तःणवोन्नविशेषा वा नित्करणमाद्यु-
दात्तस्वरार्थम् ।

(१०) अत्र चादुप्रत्ययोनिदिति सम्बन्धः । एवमर्थ एव पृथक्पाठः ।
शृणाति हिनस्ति येनेति शररायुधं कोपी वा । स्वर्यन्त उपतप्यन्ते प्राणिनो-
ऽनेनेति स्वरुर्वज्रम् । स्निह्यति यस्मिन् स स्नेहुर्व्याधिर्वा । अग्निं प्राप्य यत्र
पते लज्जितमिव भवतीति तत् त्रपु सीमकं रंगं वा । अस्यति प्रक्षिपति वायु-
मित्यसुः प्राणः । असुं प्राणं राति ददातीत्यसुरो मेघः । वस्त आच्छादयति
दुःखं येन तदसु धनं वा । वसन्ति प्राणिनो येषु ते वसवोऽन्यादयोऽष्टौ । हन्य-
तेऽनेनेति हनुः कपोलावयवः प्रहरणं मृत्युर्वा । क्लिद्यत्याद्रीं करोति चित्तमिति
क्लेदुश्चन्द्रमा वा । प्रेम्णा वधातीति बन्धुः सज्जनो वा । मन्यते चराचरं
जगज्जानातीति मनुरोश्वरः मनुतेऽवबुध्यते शास्त्रमिति मनुर्विद्वान् राजर्षिः ।
बहुलवचनात् । विन्दत्यवयवोभवतीति विन्दुः परिमाणं जलादिकणी वा ।

(११) स्यन्दन्ते प्रस्रवन्त्युदकान्यस्मिन्निति सिन्धुः ॥

(१२) उन्दधातोरुः प्रत्यय आदिवर्णस्येकारादेशश्च । उनत्त्याद्रीं-
करोति पदार्थानितोन्दुश्चन्द्रमाः वा ॥

(१३) अत्र चकारादिच्चेत्यनुवर्तते तेन दीर्घस्य ह्रस्वो भवति । ईषति
गच्छति हिनस्ति वा शत्रूनि, इषुर्वाणो वीरो वा । कित्वाद् गुणाऽभावः ॥

स्कन्देः सलोपश्च ॥ १४ ॥ कन्दुः ॥ १४ ॥

सृजेरसुम् च ॥ १५ ॥ रज्जुः ॥ १५ ॥

कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च ॥ १६ ॥ तर्कुः ॥ १६ ॥

नावश्चेः ॥ १७ ॥ न्यङ्कुः ॥ १७ ॥

फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च ॥ १८ ॥ फल्गुः ।

पटुः । नाकुः । मधुः । जतुः ॥ १८ ॥

बलेर्गुक् च ॥ १९ ॥ बल्गुः ॥ १९ ॥

(१४) स्कन्दति गच्छति शुष्यति वा येन स कन्दुः कुमाराणां क्रीडायै गेन्द्र इति प्रसिद्धं वा ॥

(१५) अत्र पूर्वसूत्रात्तलोप इत्यनुवर्तते । धातेरमुमागम आदिसकारलोपश्च । पुनर्हकारस्य यणादेश आगममकारस्य जश्त्वं च । सृज-न्युदकनिस्सारणायेति रज्जुर्जलोद्भूतं वा ॥

(१६) आद्यन्तविपर्ययोऽर्थादादौ तकारोऽन्ते ककारः । उश्च प्रत्ययः कृन्तति छिनति वस्त्रादिकमनेन स तर्कुः । कर्तनो वा ॥

(१७) ये नितरामञ्चन्ति गच्छन्ति तेन्यङ्गो जातिविशेषः हरिणा वा ॥

(१८) उप्रत्यये फलधातोर्गुगागमः फलति निष्पद्यते स फल्गुः असारो वा । नपुंसके फल्गु फलम् । पाटिधातोः पटिरादेशः । पाटयति ज्ञापयति सदसत्पदार्थान् स पटुर्वाग्मी विशारदो वा । नमधातोर्नाकिरादेशः नमतीति नाकुः । बल्मीको वा । मनधातोर्धकारादेशः । मन्यन्ते विशेषेण जानन्ति यस्मिन् स मधुश्चैत्रो मासः । मधूको मद्यं चोन्द्रं पुष्परसो वा । जनधातोस्तकारादेशः । जायते प्रादुर्भूयतेऽनेनेति जतु लाक्षा वा ॥

(१९) बलते प्राणयतीति बल्गुः । नपुंसके बल्गु शोभनम् ॥

शः कित्सन्वच्च ॥ २० ॥ शिशुः ॥ २० ॥

यो हे च ॥ २१ ॥ ययुः ॥ २१ ॥

कुर्ध्रश्च ॥ २२ ॥ बभ्रुः ॥ २२ ॥

पृभिदिव्यधिगृधिधृषिहृषिभ्यः ॥ २३ ॥ पुरुः । भिदुः । विधुः ।
गृधुः । धृषुः । हृषुः ॥ २३ ॥

कृग्रोरुच्च ॥ २४ ॥ कुरवः । गुरुः ॥ २४ ॥

(२०) सन्वद्भावाद् द्वित्वादिकम् । श्यति तनूकरोति पित्रोः शरी-
रमिति शिशुर्बालको वा ॥

(२१) अच सन्वदित्यनुवर्तमानेपि द्वेग्रहणमभ्यासेत्वनिवृत्यर्थम् ।
यान्ति प्राप्नुवन्ति देशान्तरमनेनेति ययुरश्वो वा ॥

(२२) अच द्वे इत्यनुवर्तते भृधातोः कुः प्रत्ययो द्वित्वं च । बिभर्ति
सर्वमिति बभ्रुर्नकुलः पिङ्गलो वा । सूचे चकारग्रहणादन्यधातुभ्यामपि कुः
प्रत्ययस्तेषां द्वित्वं च भवति तद्यथा । करोतीति चक्रुः कर्ता । हन्तीति
जघ्नुर्हन्ता । पाति रक्षतीति पपुः पालकः । इत्यादि ॥

(२३) एभ्यः कुः । पिपति पालयति पूरयति वा स पुरुः । बहुरिन्द्रियं
वा । भिनतीति भिदुर्वज्रं वा । विध्यति दुर्गन्धिं दिवसं वेति विधुः कर्पूरं
चन्द्रमा वा । व्यधेर्ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । गृध्नात्यभिकाङ्क्षते येन स
गृधुः कामो वा । धृष्यतीति प्रगल्भो भवतीति धृषुर्दक्षः । हृष्यति स हृषुर्ह-
र्षकः । दृशीति पाठान्तरे दृशुर्दर्शकः ॥

(२४) यः करोति येन वा स कुरुः । कुरवो राजानो वा । गृणा-
त्युपदिशति वेदशास्त्रविद्यामाचारं च स गुरुः । सर्वेषां गुरुत्वादीश्वरः ।
आचार्यः पिता वा ॥

अपदुःसुपु स्थः ॥ २५ ॥ अपटु । दुष्टु । सुष्टु ॥ २५ ॥

रपेरिञ्चोपधायाः ॥ २६ ॥ रिपुः ॥ २६ ॥

अर्जिद्विशिकम्यमिपसिबाधामृजिपशितुकुधुकुदीर्घहकाराश्च ॥ २७ ॥

ऋजुः । पशुः । कन्तुः । अन्धुः । पांसुः । बाहुः ॥ २७ ॥

प्रथिभ्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च ॥ २८ ॥ पृथुः । मृदुः भृगुः ॥ २८ ॥

(२५) अप, दुः, सु, इत्येतेषूपपदेषु स्याधातोः कुः । अपतिष्ठतीत्यपटु वामभागः प्रतिकूलः पदार्थो वा । निन्दितस्तिष्ठतीति दुष्टु अविनीतः । मुतिष्ठतीति सुष्टु शोभनम् । सर्वत्र सुषामादित्वात् पत्वम् ॥

(२६) अनिष्टं रपति वदतीति रिपुः शत्रुः । चकारग्रहणात्कुप्रत्यये परे इकारादेश एव समुच्चीयते ॥

(२७) कुप्रत्यये सति—अर्ज्यादिप्रकृतीनामृज्यादय आदेशा भवन्ति अर्जयति सञ्चिनोति गुणानिति, ऋजुः कोमलो वा । पश्यति सर्वमिति पशुः पश्यन्ति येन वा स पशुरग्निः । पश्यति जानाति स्वार्थमिति पशुर्गवादिः । कमधातोस्तुक् । कामयन्ते यं स कन्तुः कामो वा । अमधातोर्धुक् । अमति रुजति गच्छति वेत्यन्धुः कूपो वा । अस्मिन् सूत्रे चकारग्रहणाद्वहुलवचनाद्वा अमधातोर्वुगागमोऽपि भवति । अमन्ति गच्छन्ति चेष्टन्ते प्राणिनो येन तदम्बु जलम् । पंसयति नष्टमिव भवतीति पांसुर्धूलिर्वा पंसधातोर्दीर्घः क्षेपार्थं चिरकालात्सञ्चितं गोमयं वा । इत्याद्येवार्थेषु पांशुरिति तालव्यान्तोऽपि शब्दो दृश्यते । बाध्यन्ते विलोड्यन्ते पदार्था याभ्यां तौ बाहु भुजौ । प्रायेणाज्यं द्विवचनान्तः ॥

(२८) प्रथ्यादिभ्यः कुः प्रत्ययस्तस्मिन् सति प्रथिभ्रद्योः सम्प्रसारणं सलोपश्च । प्रथते कीर्तिं वा प्रख्यापयति स पृथूराजविशेषो प्रख्यातः पदार्थो वा । म्रदते म्रदितुं शक्यते स मृदुर्मादकः । कोमलं वा । भृज्जति तपसा शरीरमिति भृगुर्ऋषिः प्रतापो वा । न्यङ्कादित्वात्कुत्वम् ॥

लङ्घिवंह्योर्नलोपश्च ॥ २९ ॥ लघुः । बहुः ॥ २९ ॥

ऊर्णोतेर्नुलोपश्च ॥ ३० ॥ ऊरुः ॥ ३० ॥

महति ह्रस्वश्च ॥ ३१ ॥ उरु ॥ ३१ ॥

शिलपेः कश्च ॥ ३२ ॥ शिलकुः ॥ ३२ ॥

आङ्परयोः खनिशृभ्यां ङिञ्च ॥ ३३ ॥ आसुः । पशुः ॥ ३३ ॥

हरिमितयोर्दुवः ॥ ३४ ॥ हरिद्रुः । मितद्रुः ॥ ३४ ॥

शते च ॥ ३५ ॥ शतद्रुः ॥ ३५ ॥

(२९) लङ्घिर्वाहभ्यां कुरनयोर्नलोपश्च । लङ्घयति गन्तुं प्रक्षोभति लघुः स्वल्पो वा । अस्त्यैव बालमूललघ्वमुगलमङ्गुलीनां बालोरत्वमाप-
द्यत इति वार्तिकेन रेफः । रघू राजविशेषः । बंहते वर्धतेऽन्येभ्य इति बहुः ।
प्रचुरः सङ्ख्या वा ॥

(३०) ऊर्णोत्याच्छादयति या मा ऊरुर्जङ्घा । कुप्रत्यये नुभागलोपः ॥

(३१) उर्णुधातोः कुप्रत्ययस्तस्मिन् नुभागलोप उकारस्य ह्रस्वत्वं
च ऊर्णोत्याच्छादयत्यल्पानित्युरु महत् ॥

(३२) शिलप्यति पदार्थैः सह सम्बध्यते म शिलकुः । परवशो ज्योतिषं वा ॥

(३३) आसमन्तात्खनति भूमिमित्यागुर्मूर्पको वराहो वा । परान्
शङ्खः शृणाति हिनस्ति येन स पशुः । शस्त्रभेदः कुटारो वा पृषोदरा-
दित्वाङ्गलोपे पूर्वार्थ एव पर्णुरपि दृश्यते ॥

(३४) हरिणाऽश्वेन वा द्रवति गच्छतीति हरिद्रुः । दारुहरिद्रा
वा । मितं परिमितं द्रवतीति मितद्रुः शोभनगमनो वा ॥

(३५) शतधा बहुप्रकारैर्द्रवति गच्छतीति शतद्रुः । नदीभेदो गङ्गा
वा । अत्र बाहुलकात्केवलादपि द्रुधातोः कुप्रत्ययो दृश्यते । यं द्रवन्ति
कार्यार्थं प्राणिनः प्राप्नुवन्तीति स द्रुवृजः शाखा वा । द्रुवः शाखा अस्मिन्
सन्तीति द्रुमो वृजः (द्युद्रुभ्यां मः) इति सूत्रेण मत्वर्थो यो मः प्रत्ययः ॥

खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गुलिगु ॥ ३६ ॥

मृगय्वादयश्च ॥ ३७ ॥ मृगयुः । देवयुः । मित्रयुः ॥ ३७ ॥

(३६) खरु इत्येवमादयश्शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । खन-
धातोः कुर्नम्य रः खनति शरीरमिति खरुः कामः । दन्तः संहर्ता दर्पोऽश्वो
वा । श्वेतार्थे तु वाच्यवत् यथा खरुरियं ब्राह्मणी । खरु कुलम् खरुः
पुमान् । यं दृष्ट्वा शङ्कते सन्दिग्धो भवतीति तत् शङ्कु विप्रम् । कोलं शत्रुं
संख्या वृक्षभेदो जलभेदः पापं स्थाणुर्वा । पिबति पाति वा म पीयुः कालः
काको वा । कुप्रत्यये धातोरोकारादेशो युगागमश्च । नितरां लङ्गति गच्छ-
तीति नीलङ्गुः । क्रिमिजातिर्भ्रमरः पुपं वा । कुप्रत्यये उपमर्गस्य दीर्घत्वम् ।
सर्वत्र लगति संगच्छते तत् लिगु चित्तं वा । लगे धातोरुपधाया इत्वम् ।
बाहुलकात्—खञ्जतिगमने विकलो भवतीति पङ्गुः । गतिहीनो वा कुप्रत्यये
खञ्जधातोः पङ्गादेशः । स्वगन्धेनान्यगन्धान् हन्तीति हिङ्गुर्वणिग्द्रव्यम् ॥

(३७) मृगयुप्रभृतयः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मृग, देव, मित्र, कुमार,
अध्वर इत्येतेषूपपदेषु या प्रापण इत्यस्मात् कुप्रत्ययो भवति । मृगान्
याति प्राप्नोतीति मृगयुर्थ्याधः । देवान् विदुषो याति स देवयुर्धार्मिकः ।
मित्रान् यातीति मित्रयुर्लोकव्यवहारवित् । कुमारावस्थां यातीति कुमारयुः
राजपुत्रो वा । अध्वरं यज्ञं यातीत्यध्वर्युर्याजकः । अध्वरस्यान्त्यलोपश्च
बहुलवचनात्—कोहयति विस्मापयतीति कुहुः । यस्यां चन्द्रो न दृश्यते
साऽमावास्या वा कुहूः । पण्डति गच्छतीति पाण्डुः रङ्गविशेषो राजविशेषो
वा । पीलति प्रतिष्ठन्तीति निरुणाद्दि जीवानिति पीलुर्हस्ती । वृक्षः काणुः
परमाणवः पुष्पाणि वा । मंजिः सौत्रो धातुस्तस्मात् कुः । मञ्जति चित्तं
प्रसादयतीति मञ्जु शोभनम् । एवं निघण्टु पलाण्डु कर्करेटु करेटु डमरु
प्रभृतयः शब्दा अप्यत्रैव द्रष्टव्या आकृतिगणत्वादस्य ॥

मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किभ्य उरच् ॥ ३८ ॥ मन्दुरा ।
 वाशुरा । मथुरा । चतुरः । चङ्कुरः । अङ्कुरः ॥ ३८ ॥
 व्यथेः सम्प्रसारणं धः किञ्च ॥ ३९ ॥ विधुरः ॥ ३९ ॥
 मकुरदर्दुरौ ॥ ४० ॥
 मधुगदयश्च ॥ ४१ ॥ मधुरः । कर्बुरः । बन्धुरः ।

(३८) मन्दते म्ताति माद्यति वा यस्यां सा मन्दुरा । अश्वशाला
 वा । वाश्यते शब्दं करोतीति वाशुरा रात्रिर्वा । मथति विलोडयतीति
 मथुरा नगरी वा ।

चतते याचते स चतुरो दक्षः कुशलो वा । चङ्क इति सौत्रो धातुः ।
 चङ्कति सर्वतो भ्रमति येन स चङ्कुरो रथो वा । अङ्क्यते लक्ष्यते
 निःसृतं दृश्यते सोऽङ्कुरो बीजात्पादो वा । अत्र खजूरादिवक्ष्यमाणगणेन
 उरप्रत्ययेऽङ्कुर इत्यपि । अर्थः स एव ॥

(३९) व्यथते विभेति यस्मात् स विधुरोऽत्यन्तवियोगः शरीरत्यागो
 वा । संप्रमाणे सति गुणनिषेधाय कित्वम् । बाहुलकात्प्रकारस्य धकारो
 न तेन विधुर इत्यपि सिद्धं भवति । विधुरश्चैरो दुष्टो वा ॥

(४०) मकुरदर्दगुरच्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । मङ्कतेऽनङ्कगेति येन
 स मकुरो दर्पणो वा । मङ्कधातोर्नलोपः । बाहुलकाद्वातोर्कारम्योकारे
 कृते दर्पणार्थ एव मुकुर इत्यपि सिद्धम् । दृणाति विदारयत्युष्णमिति दर्दुरो
 मेघो मण्डूकी वाद्यभेदः पर्वतभेदो वा । उरचि दृधातोर्द्विर्वचनमभ्यासस्य
 रुगागमो धातोष्टिलोपश्च निपात्येते ।

(४१) मद्गुरप्रभृतयः शब्दा उरजन्ता निपात्यन्ते । माद्यति हृष्य-
 तीति मद्गुरो मत्स्यभेदो वा । धातोर्गुगागमः कबते वर्षविशेषो भवतीति स
 कर्बुरः श्वेनो दुष्टो वा धातोरुगागमः । बध्नाति मार्दवेन स बन्धुरो नमः
 सुन्दरो वा । खजूरादित्वाद्गुरप्रत्यये बन्धुरोपि उक्तार्थ एव । चिनोत्येकी

कुकुरः । कुकुरः ॥ ४१ ॥

असेरुरन् ॥ ४२ ॥ असुरः ॥ ४२ ॥

मसेश्च ॥ ४३ ॥ मसुरा ॥ ४३ ॥

शावशोरसौ ॥ ४४ ॥ श्वशुरः ॥ ४४ ॥

अविमह्योष्टिषच् ॥ ४५ ॥ अविषः । महिषः ॥ ४५ ॥

अमेदीर्घश्च ॥ ४६ ॥ आमिषम् ॥ ४६ ॥

करोति स चिकुरः । अत्र धातोः कुगागमः । कोकत आदत्ते परपदार्थमिति कुकुरः कुकुरः श्वा । एकार्थी । पक्षान्तरे कुगागमो निपात्यते अततिनिरन्तरं गच्छतीति आतुरोऽशान्तः । धातोरादौ दीर्घः । वान्ति मृगान् प्राप्नुवन्ति यथा सा वागुग मृगबन्धनी मृगबन्धनार्थं जालम् । अत्र धातोर्गु गागमो निपात्यते । शक्नोति तरितुमिच्छति शकुनोमत्स्यः । वङ्कतेकुटिलो भङ्गतीति वकुलो वृक्षभेदो वा । अत्रोभयत्र प्रत्ययरेफस्य लत्वम् । वङ्केर्नलोपश्च ॥

(४२) अस्यति प्रक्षिपति धर्मं शुभगुणांश्च सोसुरः । मेघोदर्जनादिर्वा । नित्करणमाद्युदात्तस्वरार्थम् ॥

(४३) मस्यन्ति सुष्ठु तथा परिणमन्ते इति मसुरा द्विदलविशेषाः । अत्रैव पञ्चमपादे ममधातोर्हरन् प्रत्यये मसूर इत्यपि सिद्धम् । एकार्थाविमौ द्विदलात्रेषु मसूर इति प्रसिद्धम् ॥

(४४) शु इति शीघ्रार्थवाचिन्युपपद आप्तौ गम्यमानायां अशूङ्धातोर्हरन् शु शीघ्रमश्नुत आप्नोति जामाता यं स श्वशुरः । दम्पत्योः पिता ॥

(४५) अवन्ति नद्यो गच्छन्ति यस्मिन् स अविषः समुद्रः । महति पूजयति स्वपुरुषार्थेन इति महिषो महान् राजा वा तद्योगान्महिषी राज्ञी पशुविशेषो वा । अवति प्रीणाति प्राणिन इत्यविषो नदी वा ॥

(४६) टिषच् । असन्ति गच्छन्ति येन तदामिषं मांसं वा । अथवाऽस्मन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम् । इत्येकार्थः ॥

रुहेर्वृद्धिश्च ॥ ४५ ॥ रौहिषम् ॥ ४७ ॥

तवेर्णिद्वा ॥ ४८ ॥ ताविषी । तविषी ॥ ४८ ॥

नत्रि व्यथेः ॥ ४९ ॥ अव्यथिषः ॥ ४९ ॥

किलेर्बुक् च ॥ ५० ॥ किल्बिषम् ॥ ५० ॥

इपिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुहिमुचि
रुचिरुधिवन्धिः किरच् ॥ ५१ ॥ इषिरः । मदिरा । मुदिरः ।
खिदिरः । छिदिरः । भिदिरम् । मन्दिरम् । चन्दिरम् । तिमिरम् ।

(४७) टिपच् रुहन्त्युत्पद्यन्ते यानि तानि रौहिषाणि तृणानि ।
रौहिषो मृगभेदो वा ॥

(४८) तव इति सौत्रो धातुस्तस्माट्पिपच् णिद्विकल्पेन भवति
तवतीति ताविषी तविषी नदी बलं सेना भूमिर्वा ॥

(४९) न व्यथत इत्यव्यथिषः समुद्रः सूर्यो वा । अव्यथिषो पृथिवी
रात्रिर्वा ॥

(५०) क्लिनति क्रीडति विचारशून्यतया कार्येषु प्रवर्तते येन तत्
किल्बिषं पापम् ॥

(५१) इत्यादि षोडश धातुभ्यः किरच् । इच्छतोष्ट्रं साधुवन्त्य-
नेनेति । इषिरोऽग्निः । माद्यति मतो भवति यया स । मदिरा सुरा मद्यम् ।
मोदतेऽमौ मुदिरः कामुक्रो वा । मोदन्तेऽनेनेति मुदिरो मेघः । खिद्यति
येन स खिदिरः चन्द्रमा वा । छिनति येन स छिदिरोऽसिः । कुठारो वा ।
भिनति येनेति भिदिरं वज्रम् । मदन्ते स्तुवन्ति स्वपन्ति वा यस्मिँस्तन्म-
न्दिरं गृहं नगरं वा । चन्दन्त्याह्लादयन्ति येन स चन्दिरश्चन्द्रमा हस्ती
वा । तेमत्याद्री भवत्यस्मिन् तत्तिमिरम् । नेत्ररोगो वा । यो मेहयति

मिहिरः । मुहिरः । मुचिरः । रुचिरम् । रुधिरम् । बधिरः ।
शुषिरम् ॥ ५१ ॥

अशोर्नित् ॥ ५२ ॥ अशिरः ॥ ५२ ॥

अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविरस्वदिराः ॥ ५३ ॥

सेचयति पृथिवीं मेघजनेन स मिहिरः । मूर्यो वा । मुह्यति यस्मै वा यो
मुह्यति स मुहिरः । काम्यः पदार्थोऽमभ्यो जनो वा । यो मुञ्चति स्वप-
दार्थमन्येभ्यो ददाति स मुचिरे दानशीलो वा । यद्रोचते प्रीतिकरं भवति
तद्रुचिरं शोभनम् । रुचिरं वस्त्रं रुचिरः पुत्रो रुचिरा कन्या वा । रुध्यते
चर्मणा यतद्रुधिरं शोणितम् । वध्यते शब्दश्रवणाच्चिरुच्यते स बधिरो
आत्रविकलः । किलच् प्रत्यस्य कित्वादिनिदितामिति नलोपः । शुष्यन्ति
पदार्था येन तच्छुषिरं छिद्रमाकाशो वा ॥

(५२) अश्नाति यः पदार्थान् सोऽशिराऽग्निः । धृष्टयाऽश्नाति
वाऽशिरो दुर्जनः ॥

(५३) अजिरादयः सप्त किरच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अजन्ति
गच्छन्ति यच्च तदजिरमङ्गनम् । गृहाग्रभागः । आंगन इति प्रसिद्धम् ।
शशति दिनाल्पत्वाच्छीघ्रं गच्छति तच्छिशिरमृतुर्हिमं शीतलं वस्तु वा ।
अथति विमुचति पुरुषार्थमिति शिथिलः पुरुषः । शिथिला कन्या । शिथि-
लानि तृणानि मृदूनोत्यर्थः । धातोरुपधाया इत्वं रेफस्य लोपः प्रत्ययस्यस्य
रेफस्य लत्वं च निपात्यते । गमनागमननिवृत्त्या तिष्ठतीति स्थिरं निश्च-
लम् । धातोराकारलोपः । स्फायते प्रवर्द्धते स स्फिरः । प्रभावो वा ।
आयभागस्य लोपो निपातनम् । गमनेऽसमर्थत्वात्तिष्ठतीति स्थविरः । वृद्धो
भिक्षुको वा । धातोर्वुक् ह्रस्वत्वञ्च । खदति हिनस्तीति खदिरः । वृक्ष-
भेदे वा ॥ बाहुलकात्—यः श्रेते स शिविरः शेरते यस्मिन् तत् शिविरं
स्थानं वा । शोङ् धातोर्वुक् ह्रस्वत्वञ्च ॥

सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इ-
लच् ॥ ५४ ॥ सलिलम् । कलिलम् । अनिलः । महिलः । भडिलः ।
भण्डिलः । शण्डिलः । पिण्डिलः । तुण्डिलः । कोकिलः । भविलः ॥ ५४
कमेः पश्च ॥ ५५ ॥ कपिलः ॥ ५५ ॥

गुपादिभ्यः कित् ॥ ५६ ॥ गुपिलः । तिजिलः । गुहिलम् ॥

(५४) सल्यादिभ्य इलच् । सलति गच्छतीति सलिलम् । जलं वा ।
कलति सङ्ख्याति तत् कलिलम् । मिश्रं दुःखेन साध्यं गहनामेति वा ।
अनिति जीवति जीवयति वा स अनिलः । वायुर्वा । यो महयति यं मह-
यन्ति येन वा मह्यते पूज्यते स महिलः पुमान् । महिलं स्थानम् । महिला
स्त्री वा । बाहुलकादिलच् इकारस्यैकारे सति महेला स्त्री इत्यपि सिद्धं
भवति । भड इति सौत्रो धातुः । भडति हिनस्तीति भडिलः शूरो वा ।
भडति परिचरति स्वामिनमिति भडिलः सेवकः । इत्यादि । भण्डयति
परिहमति येन स भण्डिलः । कल्याणं वा । शण्डति रोगयुक्तो भवतीति
शण्डिलः । ऋषिविशेषो वा । यस्य गोत्रापत्यं शाण्डिल्य इति प्रसिद्धम् । पिण्डति
सङ्घातं करोति स पिण्डिलः गणको वा । तुण्डति तोडति पृथक् करोति
स तुण्डिलः । उच्चनाभिर्जने वा । कोकत आदत्तेऽसौ कोकिलः । पक्षि-
विशेषो वा । यो भवति स भविलः । भवितुं योग्यो वा । बाहुलकात्
कुटति कौटिल्यं करोति स कुटिलः क्रूरकर्मा वा ॥

(५५) कमेरिलच् मस्य पः कामयतेऽसौ कपिलः । वर्णाभेदे मुनिविशेषो वा ॥

(५६) इलच् कित्वं गुणनिषेधार्थम् । गोपायति रक्षति प्रजा इति गुपिलः ।
राजा वा । तेजते तीक्ष्णो करोति वा तिज्यते सहायते सर्वैः स तिजिलः ।
चन्द्रमा वा । गूहते वृक्षैराच्छादितो भवतीति गुहिलं वनं वा । अन्येपि
पूजितुमादत्तुं योग्यः पूजिला विद्वान् । शोषयति सर्वमिति शुषिलो वायुः ।
देवते प्रकाशयति धर्ममिति देविलो धार्मिको वा ।

मिथिलादयश्च ॥ ५७ ॥ मिथिला ॥ ५७ ॥

पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक् ॥५८॥ पतेरः । कठेरः ।

कुठेरः । गडेरः । गुडेरः । दशेरः ॥ ५८ ॥

कुम्बेर्नलोपश्च ॥ ५९ ॥ कुबेरः ॥ ५९

शदेस्तश्च ॥ ६० ॥ शतेरः ॥ ६० ॥

मूलेरादयः ॥ ६१ ॥ मूलेरः । गुधेरः । गुहेरः । मुहेरः ॥ ६१ ॥

(५७) मिथिलादय इलच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । मथ्यते या सा मिथिला मथ्यन्ते शत्रवो यत्र सा मिथिला विदेहानां राज्ञां नगरी वा । अकारस्येत्वं निपात्यते । गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यां सा गतिला वेत्त लता वा । गमेस्तकारान्तादेशः । या तङ्कति कृच्छ्रेण जीवति सा तकिला । नलोपः । ओषधिर्वा । चमति भक्षयतीति चाण्डला काचिन्नदी वा । धातोर्दुगागमः । यः पथति निरन्तरं गच्छति स पथिलः पथिको वा । इत्यादि ॥

(५८) पतति गच्छतीति पतेरो गन्ता पक्षी वा । कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठेरः । कारागारिको वा कुठेरोपि कृच्छ्रे जीवो पर्णाशो वा । कटहर इतिप्रसिद्धम् । गडति सिञ्चतीति गडेरः मेघो वा । गुडति रक्षति स गुडेरः रक्षकः । दशति दष्टाभ्यामिति दशेरः । हिंसको जीवो वा । अनुनासिकलोपः ॥

(५९) कुम्बत्यन्यानाञ्छादयति कुबेरः । धनाध्यक्षो विद्वान् वा । इदि त्वादप्राप्तो नलोपः एरक् विधीयते ॥

(६०) शीयते शातयति दुःखाकरोतीति शतेरः शत्रुर्वा । धातोर्दकारस्य तकारादेशः ॥

(६१) मूलेरादय एरक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । यो मूलति सर्वोपरि तिष्ठति स मूलेरः । भूपतिर्वा । गुधति सर्वतो वेष्टयतीति गुधेरः । रक्षको वा । गूहते येन स गुहेरः । लोहघातनो वा । मुह्यति विक्षिप्त इव भवतीति मुहेरो मूर्खः । मुह्यत्यनेन वृषभादिरिति वा मुहेरः कणमर्दनादौ वृषभमुखबन्धनम् । मुहेर इत्येव भाषायां प्रसिद्धम् ॥

कबेरोतच् पदच ॥ ६२ ॥ कपोतः ॥ ६२ ॥

भातेर्डवतुप् ॥ ६३ ॥ भवान् ॥ ६३ ॥

कठिचकिभ्यामोरन् ॥ ६४ ॥ कठोरः । चकौरः ॥ ६४ ॥

किशोरादयश्च ॥ ६५ ॥ किशोरः । सहोरः ॥ ६५ ॥

कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच् ॥ ६६ ॥ कपोलः । गडोलः । गण्डोलः । कटोलः । पटोलः ॥ ६६ ॥

(६२) ओतच् प्रत्ययो वकारस्य प्रकारः । कबते विचित्रवर्णो भवतीति कपोतः । पक्षिभेदो वा ॥

(६३) भाति दीप्तो भवति दीपयति वा स भवान् । सर्वनामवाचकः सर्वनामसंज्ञकश्चाऽयं शब्दः ॥

(६४) कठति कृच्छ्रेण जीवति येन स कठोरः कठिनः पूर्यो वा । चकते तृप्यति स चकौरः पक्षिविशेषो वा ॥

(६५) किशोरादय ओरन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । किंशृणाति हिनस्तीति किशोरः । अश्वशावको वा । किमो मलोपः श्रुधातोऽपिलोपश्च निपातनम् । सोढुंशीलः सहोरः साधुर्वा । गायति शब्दं करोतीति गौरः । अरुणे श्वेते पीते निर्मले च वाच्यलिङ्गः । गौरः कुमारः । गौरी कन्या । गौरं कुलम् । गौरं कमलम् ॥ गौरः सर्पपः । इत्यादि । गैधातोराकारादेशे कृत ओरना सह वृद्ध्याकादेशः । आयादेशस्त्वात्वाप्राप्तौ भवति ।

(६६) कम्पते चलति स कपोलः । वदनैकदेशो वा । सूचेनिर्दिशादेव नलोपः । गडति सिंचति स गडोलः । गण्डति स गण्डोलः । वदनैकदेशो वा । गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटोलः कटुश्चालो वा । पटति गच्छति स पटोलः । फलविशेषो वस्त्रविशेषो वा । बाहुलकात्—कण्डति माद्यतीति कण्डोलः । चाण्डालो वा ॥

मीनातेरूरन् ॥ ६७ ॥ मयूरः ॥ ६७ ॥
 स्यन्देः संप्रसारणं च ॥ ६८ ॥ सिन्दूरम् ॥ ६८ ॥
 सितनिगमिमसिसच्यविधाङ्कुशिभ्यस्तुन् ॥ ६९ ॥ सेतुः ।
 तन्तुः । गन्तुः । मस्तुः । सक्तुः । ओतुः । धातुः । क्रोष्टुः ॥ ६९ ॥
 वसेरगारे णिञ्च ॥ ७० ॥ वास्तु ॥ ७० ॥
 पः किञ्च ॥ ७१ ॥ पीतुः ॥ ७१ ॥

(६७) मीनाति हन्तीति मयूरः । पक्षिविशेषो वा । धातोर्गुणादेशः ।
 बहुलवचनात्—मीनातेरात्वनिषेधः ॥

(६८) स्यन्दते प्रस्रवति तत् सिन्दूरम् । रक्तचूर्णं वृक्षभेदो वा ।
 इत्यादि । ऊरन् प्रत्यये यकारस्य संप्रसारणम् ॥

(६९) मिनोति बध्नातीति सेतुः । समुद्री वा । (तितुञ्चतथ०)
 इतीट् निषेधः । तनोति विस्तृणोतीति तन्तुः । सूत्रं वा । वरामुत्तमां विद्यां
 तनोति स वरतन्तुर्मुनिः । वरतन्तुना प्रोक्तो वारतन्तवीथो ग्रन्थः । गच्छतीति
 गन्तुः । पथिको वा । समन्ताद् गच्छति भ्रमतीति आगन्तुरभ्यागतो वा ।
 मस्यति परिणमतीति मस्तुः । दधानि निस्मृतमुदकं वा । सच्यन्ते समवेताः
 क्रियन्ते ते सक्तवः । पक्कययादिचूर्णं वा । अवति रक्षणादिकं करोति स
 ओतुः । विडालो वा । अव धातोर्ज्यस्त्वर इति सूत्रेणोपधावकरायोरुट् ।
 दधाति धरति पोषति वा स धातुः । अश्मनो विकारः । सुवर्णादिः शरीर-
 स्थवातादिर्वा । क्रोशत्याह्वयति रोदिति वा स क्रोष्टुः । क्रोष्टा शृगालो वा ।

(७०) वसन्ति प्राणिनो यत्र तद्वास्तु गृहं वा । अगारादन्यत्र णित्वा-
 भावः । वसन्ति येन तद्वस्तु द्रव्यं वा ।

(७१) पिबत्युदकादिकं पाति प्राणिनो रक्षति वा स पीतुः । अग्निः
 सूर्यो वा । कित्त्वादीत्वम् ॥

अर्त्तेश्च तुः ॥ ७२ ॥ ऋतुः ॥ ७२ ॥

कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च ॥ ७३ ॥ कन्तुः । मन्तुः ।

जन्तुः । गातुः । भातुः । यातुः । हेतुः ॥ ७३ ॥

चायः की ॥ ७४ ॥ केतुः ॥ ७४ ॥

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च ॥ ७५ ॥ अप्तुः ॥ ७५ ॥

कृज् कतुः ॥ ७६ ॥ क्रतुः ॥ ७६ ॥

एधिवह्योश्च तुः ॥ ७७ ॥ एधतुः । वहतुः ॥ ७७ ॥

(७२) चकारातुः किद्भवति पुनः पुनर्हृच्छति गच्छत्यागच्छतीति ऋतुः । वमन्तादिः स्त्रीणां रजःपतनकालो वा ॥

(७३) कामयते येन स कन्तुः कामश्चित्तं वा । मन्यते जानाति वा येन स मन्तुः । अपराधो वा । जन्यते शरीरादिधारणेन प्रादुर्भवति स जन्तु-जीवः । गायति षड्जादिस्वरानाऽऽलापयति स गातुर्गायकः । गाते गच्छतीति गातुः पथिको वा । भृङ्गगन्धर्वौ वा । भाति प्रकाशयतीति भातुः सूर्यो वा । याति प्रापयतीति यातुः । अध्वगः कालो वा । हिनोति येन यो वा कार्यरूपेण वर्धतेऽसौ हेतुः कारणम् ॥

(७४) चायते पूजयति । नशामयति आवयति वा स केतुर्ग्रहः । पाताका वा । धूमकेतुरुत्पातः ॥

(७५) आप्नोति व्याप्नोति सर्वान् पदार्थानिति, अप्तुः । शरीरं वा । तुप्रत्यये आप्लृधातोर्ह्रस्वत्वम् ॥

(७६) कृज् धातोः कतुः प्रत्ययो भवति यः क्रियते यया करोति वेति क्रतुः । प्रज्ञा यज्ञो वा कित्वाद् यण् गुणाऽभावश्च ॥

(७७) एधते वर्द्धतेऽसावेधतुः । पुरुषो वा । वहति भारमिति वहतुः । अनङ्वान् वा । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

जीवेरातुः ॥ ७८ ॥ जीवातुः ॥ ७८ ॥

आतृकन् वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ जैवातृकः ॥ ७९ ॥

कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः स्त्रियाम् ॥ ८० ॥ कर्षूः ।

चमूः । तनूः । धनूः । सर्जूः । खर्जूः ॥ ८० ॥

मृजेर्गुणश्च ॥ ८१ ॥ मर्जूः ॥ ८१ ॥

खड्डेर्दुद्धा ॥ ८२ ॥ खड्डूः । खडूः ॥ ८२ ॥

वहेर्धश्च ॥ ८३ ॥ वधूः । ८३ ॥

कपेर्छश्च ॥ ८४ ॥ कच्छूः ॥ ८४ ॥

(७८) जीव्यते येन यो वा जीवति स जीवातुः । जीवनमौषधं वा ॥

(७९) जीवधातोरातृकन् प्रत्ययस्तस्मिन् सति वृद्धिश्च भवति । यो जीवति पूर्णावस्थापर्यन्तं स जैवातृक आयुष्मान् निशाकरो वा ॥

(८०) कृष्यादिभ्य ऊः प्रत्ययः कर्षत्याकर्षति पदार्थानिति कर्षूः शुष्कगोमयोऽग्निर्दो वा । चमति भक्षयतीति चमूः । शत्रुभञ्जिणो सेना वा । तनोति कार्याणि येन सा तनूः शरीरं वा । दधन्ति धनमर्जयति स धनूः शस्त्रं वा । सर्जति उपार्जति कार्याणीति सर्जूः वैश्यो वा । खर्जति पोडयतीति खर्जूः । कण्डूर्वा ॥

(८१) मार्ष्टि शोधयतीति मर्जूः । शुद्धिर्वा । उप्रत्ययस्याकित्वा-
न्त्रित्यापि प्राप्ता वृद्धिर्गुणेन बाध्यते ॥

(८२) खडति भिनत्तीति खड्डूः । खडूः । बाहुजड्घयोराभूषणं मृतशय्या वा ।

(८३) वहति मुखानि प्रापयतीति वधूः । नवोढा स्त्री वा ॥

(८४) कषति हिनस्ति दुःखयतीति कच्छूः पामा वा । खाज इति प्रसिद्धा । षकारस्य छकारः ॥

णित्कशिपद्यत्तेः ॥ ८५ ॥ काशूः । पादूः । आरूः ॥ ८५ ॥

अणो डश्च ॥ ८६ ॥ आडूः ॥ ८६ ॥

लम्बेर्नलोपश्च ॥ ८७ ॥ अलाबूः ॥ ८७ ॥

के श्र एरङ् चास्य ॥ ८८ कशेरूः ॥ ८८ ॥

त्रो दुट् च ॥ ८९ ॥ तर्दूः ॥ ८९ ॥

दरिद्रातेर्यालोपश्च ॥ ९० ॥ दर्दूः ॥ ९० ॥

नृतिशृध्योः कूः ॥ ९१ ॥ नृतूः । शृधूः ॥ ९१ ॥

(८५) कश्यादिभ्य ऊ णिद्रवति । कष्टे गच्छति शास्ति वेति काशूः । विकलधातुर्जनः । शक्तिर्वा पद्यते गच्छति यया स पादूः । उपानहौ वा । ऋच्छति प्राप्नोति स आरूः पिङ्गलो वा ॥

(८६) अणति शब्दयतीति आडूः । णस्य डः । जलगामि द्रव्यं वा ॥

(८७) उप्रत्यये लम्बधातेर्नलोपो भवति । न लम्बतेऽधो न स्रवति गच्छति सा अलाबूः । तुम्बो वा ।

(८८) ककारोपपदात् शृधातेरूप्रत्ययस्तस्मिन् प्रकृतेरेडादेशः । कष्टे शास्ति स कशेरूः । तृणकन्दं वा । बहुलवचनादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते कशेरुरिति ह्रस्वान्तोऽपि दृश्यते ॥

(८९) तरति येन यया वा स तर्दूः दारुहस्तः पुरुषो यष्टिर्वा । तृधातोर्दुगागमः ॥

(९०) दरिद्राधातेरूप्रत्यये (इ० आ) इत्येतयोर्वर्णयोर्लोपः । दरिद्राति दुर्गतिं करोतीति दर्दूः कुष्ठमेदो वा । मृगश्वादित्वात् (रि० आ) इत्यनयोर्लोपे दर्दूरित्यपि सिद्धम् । अत्र सूत्रेऽपि (रि० आ) इत्येतयोर्लोपे दर्दूरिति भवति ॥

(९१) नृत्यतीति नृतूर्नर्तकः शर्धते कुत्सितं शब्दयतीति शृधूः अपानवायुर्वा । प्रत्ययस्य क्त्वाद् गुणनिषेधः ॥

ऋतेरम् च ॥ ९२ ॥ रतूः ॥ ९२ ॥

अन्दूदृम्फूजम्बूकम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः ॥ ९३ ॥

मृग्रोरुतिः ॥ ९४ ॥ मरुत् । गरुत् ॥ ९४ ॥

ग्रो मुट्च ॥ ९५ ॥ गर्मुत् ॥ ९५ ॥

हृषेरुलच् ॥ ९६ ॥ हर्षुलः ॥ ९६ ॥

(९२) ऋत इति सौचो धातुः ऋतीयते घृणां करोतीति रतूः सत्यं दिव्यनदो वा । धातोर्मागमः ॥

(९३) अन्दूप्रभृतयः शब्दाः कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्दति बध्नाति येन यया वा सा अन्दूः हस्तिबन्धनो शृङ्खला वा । जंजीर इति प्रसिद्धा । दृम्फ त्युत्कृष्टं क्लेशं ददातीति दृम्फूः सर्पजातिर्वा । जमन्ति भक्षयन्ति यां सा जम्बूः वृक्षविशेषजातिर्वा । धातोर्बुगागमः । बाहुलकादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते जम्बुरित्यपि दृश्यते । कामयते स कम्बूः परद्रव्यापहारो वा । धातोर्बुक् । कफं श्लेष्माणं लात्याददातीति कफेलूः । ओषधिविशेषो वा । एकारान्तत्वं कफशब्दस्य निपातनम् । कर्कं कण्टकं दधाति धरतीति कर्कन्धूः । वदरीफलं वा । कित्वादाकारलोपः । उपपदस्य नुगागमो निपातनम् । दिधि धैर्यमिन्द्रियदौर्बल्यात् स्यति त्यजतीति दिधिषूः । पुनर्भूवा निपातनात् षत्वम् ।

(९४) म्रियते मारयति वा स मरुत् मनुष्यजातिः पवनो वा । गिरति निगलतीति गरुत् पक्षो वा ॥

(९५) गिरति येन तत् गर्मुत् सुवर्णं तृणजातिभेदो वा ॥

(९६) हृष्यति तुष्टो भवतीति हर्षुलः । मृगः कामो वा । बाहुलकात्चटति वर्षत्यावृणोति वा स चटुलः शोभनो वा ॥

हृसृरुहियुपिभ्य इतिः ॥ ९७ ॥ हरित् । सरित् । रोहित् ।

योषित् ॥ ९७ ॥

ताडेरिलुक् च ॥ ९८ ॥ तडित् ॥ ९८ ॥

शमेढः ॥ ९९ ॥ शण्डः ॥ ९९ ॥

कमेरठः ॥ १०० ॥ कमठः ॥ १०० ॥

रमेर्वृद्धिश्च ॥ १०१ ॥ रामठम् ॥ १०१ ॥

शमेः खः ॥ १०२ ॥ शङ्खः ॥ १०२ ॥

कणेष्वः ॥ १०३ ॥ कण्ठः ॥ १०३ ॥

(६७) आहरति गृह्णाति द्रव्यमिति हरित् दिक् वर्णस्तृणमश्ववि-
शेषो वा । सरति गच्छतीति सरित् नदी वा । रोहति प्रादुर्भवतीति रोहित्
लताविशिष्टा हरिणी वा । युष इति सौत्रो धातुः । अथवा जुष इत्यस्य
वर्णविकारेण पाठः । जुष्यते सेव्यते प्रीणयति वा सा योषित् स्त्री वा ॥

(६८) ताडयति पीडयतीति तडित् । विद्युद्वा । प्रत्ययचलशेन
णिलोपेऽपि वृद्धिः स्यादिति लुग्विधीयते ॥

(६९) शाम्यति शान्तो भवतीति शण्डः स्वन्तञो वृषभः । सांड
इति प्रसिद्धः । नपुंसकं वा ॥ ॥

(१००) कामयतेऽसौ कमठः कच्छपो वा । कमठमिति भाण्डभेदो वा ।
बाहुलकात्-जीर्यत्यवस्थाहीनो भवतीति जरठः पाण्डुरङ्गो वा । शमठः ।
शान्तो वा ।

(१०१) रमतेऽस्मिन्निति रामठं हिङ्गुर्वा । अठ प्रत्यये रमधातोर्वृद्धिः ॥

(१०२) शाम्यतीति शङ्खः । निधिभेदः । जलजं ललाटास्थि ।
बाहुलवचनात्-खकारस्येत्संज्ञा न भवति ॥

(१०३) कणति येन शब्दं करोतीति कण्ठः । गलो ध्वनिर्धा ॥

कलस्तृपश्च ॥ १०४ ॥ तृपला ॥ १०४ ॥

शमेर्वश्च ॥ १०५ ॥ शवलः ॥ १०५ ॥

वृषादिभ्यश्चित् ॥ १०६ ॥ वृषलः ॥ १०६ ॥

कमेर्धुक् ॥ १०७ ॥ कम्बलः ॥ १०७ ॥

(१०४) तृपधातोः कलप्रत्ययः । तृप्यति यया सा तृपला लता वा ।
अत्र मूचे चकारग्रहणात् तृपधातेरपि कलप्रत्ययस्तेन तृपला इत्यपि
सिद्धम् । तृपला त्रिपला इत्योपधिविशेषपर्यायौ । बाहुलकात्—काम्यतेऽसौ
कमलः । कमलं पद्मं वा । उदकं ताम्रमौपद्यं च । मृगभेदः कमलः । कमला
श्रीपतिप्रिया वा । मण्डति भूषयति प्रतिपादयति वा स मण्डलः । मण्डलं
चक्राकारं देशभेदो बिम्बं कदम्बः कुण्डं यज्ञभेदः श्वा च । कुण्डति दहतीति
कुण्डलम् । वलयं पाशं कर्णभूषणं वा । पटति गच्छतीति पटलः । अक्षि-
रोगस्तिलकं वा । इत्यादि । छ्यति छिनति पराऽभिप्रायमिति छलम् ॥

(१०५) शपत्याक्रोशति स शवलः वर्णभेदो वा ॥

(१०६) वृषादिधातुभ्यः कलप्रत्ययश्चिद्ववति । वर्पति सिञ्चतीति
वृषलः शुद्धो वा । तस्य स्त्री वृषली । कीशति ग्लियति कोशति व्यवहर्तुं
जानातीति वा कुशलो निपुणः कुशलं क्षेममिति वा । बाहुलकाद्गुणो
कोशल इति देशभेदो वा । पलति गच्छति येन तत् पललम् । तिनचूर्णं
पङ्कं मांसं वा । दीव्यत्यधर्मिणो विजिगीषतीति देवलो धार्मिकः । सरति
सर्वत्र गच्छतीति सरलः । अकुटिल उदारो वा । धावति गच्छति शुद्धो
भवति वा स धवलः । श्वेतः शुद्धो वा । धावुधातोर्बाहुलकाद्ब्रह्मत्वम् ।
वृषादेराकृतिगणत्वात् केवलकवलतरलानलजम्बलपेशलमर्दलादयोऽपि श-
ब्दा द्रष्टव्या मुस्यति खण्डयति मोषयति चोरयति वा समुसलः । मुषलो
वा । मुशलं मुसलमिति लोहाग्रभागि कुट्टनसाधनम् । मुषलश्चौरो वा ॥

(१०७) काम्यतेऽभीप्स्यते यः स कम्बलः । ऊर्णाविकार उदकं वा ।
कमधातोः कलप्रत्यये बुक् ॥

लङ्गेर्वृद्धिश्च ॥ १०८ ॥ लाङ्गलम् ॥ १०८ ॥
 कुटिकशिकौतिभ्यो मुट् च ॥ १०९ ॥ कुट्मलम् । कश्म-
 लम् । कोमलम् ॥ १०९ ॥
 मृजेष्टिलोपश्च ॥ ११० ॥ मलम् ॥ ११० ॥
 चुपेरञ्चोपधायाः ॥ १११ ॥ चपलम् ॥ १११ ॥
 शकिशम्योर्नित् ॥ ११२ ॥ शकलम् । शमलम् ॥ ११२ ॥
 छो गुग्घ्रस्वश्च ॥ ११३ ॥ छगलः ॥ ११३ ॥

(१०८) लङ्गन्ति प्राप्नुवन्ति, अन्नादिकं येन तल्लाङ्गलम् । हलं
 वा । बाहुलवचनात्—कन्दत्याज्यति सा कदली । वृचभेदः केला इति
 प्रसिद्धा वा । बाहुलकाद्वातोर्नलोपः ॥

(१०९) कुटादिभ्यो विहितस्य कलप्रत्ययस्य मुट् । कुटतीति कुट्-
 मलः । बाहुलकात्—कुण्डति दहतीति कुणमलः । किञ्चद्विकसितपुष्पनाम्नो
 वा । कटे गच्छति शस्ति वा स कश्मलः कश्मलं कलमघं पापं वा । कौति-
 शब्दयतीति कोमलः । कोमलं मृदु जलं वा । बाहुलकात्—पिङ्क्ते वर्ण-
 यतीति पिङ्गलः । वर्णभेदो वा ।

(११०) यन् मृज्यते शोध्यते तन्मलम् । पुरीषं पापम् । कृपणः पुरुषो
 वा । मृजधातोः ष्टिलोपः ॥

(१११) चोपति मन्दं मन्दं गच्छति स चपलः । क्षणिकं शीघ्रं
 वा । चपला पिप्यली विद्युद्वा । धातोर्लृकारस्याकारादेशः ॥

(११२) शक्नोतीति शकलः खण्डो मत्स्यभेदो वा । शाम्यतीति
 शमलः । अशुद्धं वा ॥

(११३) छति छिनतीति छगलः छागो वर्करो वा । धातोर्गुगा-
 गमो ह्रस्वश्च ॥

अमन्ताड् डः ॥ ११४ ॥ दण्डः । रण्डा । खण्डः । मण्डः ॥
 बण्डः । अण्डः । षण्डः । गण्डः । चण्डः । पण्डः । पण्डा ॥ ११४ ॥
 क्वादिभ्यः कित् ॥ ११५ ॥ कुण्डम् । काण्डम् । गुडः । घुण्डः ॥ ११५ ॥
 स्थाचतिमृजेरालज्वालत्रालीयचः ॥ ११६ ॥ स्थालम् ।
 चात्वालः । मार्जालीयः ॥ ११६ ॥

(११४) अमिति प्रत्याहारग्रहणम् । अ, म, डः । गा, न इत्येते वर्णा
 अन्तेऽस्य तस्माड् डः प्रत्ययो भवति बहुलवचनादित्संज्ञानिषेधः । दाम्यन्त्यु-
 पशाम्यन्त्यनेन स दण्डः । यष्टिभेदो वा । रमतेऽसौ रण्डा विश्रवा नारी वा ।
 खण्डतेऽवदीर्यतेऽसौ खण्डः । विभागा मिष्टभेदो वा । खाण्ड इति प्रसिद्धः
 भिन्नः पदार्थो वा । मन्यते जानातीति मण्डः । मण्डा धात्री समाख्याता
 मण्डं पक्वौदनोदकम् । वनति शब्दयति सम्भजति वा । स बण्डः । छिन्न-
 हस्तको वा । अमन्ति संप्रयोगं प्राप्नुवन्ति येन सोऽण्डः प्राण्यङ्गावयवो
 वा । सनोति ददातीति षण्डः । नपुंसको वनं गोपः सङ्घातो वा । गच्छ-
 तीति गण्डः । कपोलव्याधिविशेषो वा । चणति ददातीति चण्डः
 हिंसकस्तीव्रो वा । कोपना स्त्री चण्डो । चडिकोप इत्यस्य घञन्तोपि
 चण्डः क्रोधी । पणायते व्यवहरति स्तौति वा । स पण्डः नपुंसकः पण्डा
 बुद्धिर्वा । फणति गच्छत्यनेति फण्डः । पन्था फण्डमुदरं वा ॥

(११५) कवर्गादिधातुभ्यो डः कित् भवति । कुणाति शब्दयत्युपक-
 रोति वा स कुण्डः । पत्यौ जीवति पुरुषान्तरादुत्पन्नः पुत्रो जलाधारविशेषो
 वा । कुण्डा कुण्डिका वा । गवतेऽव्यक्तशब्दं करोतीति गुडः । गोल इक्षुपाको
 वा । घोणते भ्राम्यतीति घुण्डः । भ्रमरो वा । काम्यते जनैस्तत्काण्डम् ।
 ग्रन्थैकदेशः । परिमाणविशेषो वायोऽवसरो वा ॥

(११६) तिष्ठन्त्यस्मिन् तत्स्थालम् । पात्रभेदो वा । थाल इति प्रसि-
 द्धम् । स्थाली सूपादिपचनी । गौरादित्वान् डीष् । चतधातोर्वालज् । चतने
 याचतेऽसौ चात्वालः चात्वालं यज्ञकुण्डं दर्भो वा । मृजेरालीयच् । मार्ष्टीति
 मार्जालीयः । विडालो वा ॥

पतिचण्डिभ्यामालम् ॥ ११७ ॥ पातालम् । चण्डालः ॥ ११७ ॥
 तमिविशिविडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन् ॥ ११८ ॥
 तमालः । विशालः । विडालः । मृणालम् । कुलालः । कपालम्
 पलालम् । पञ्चलाः ॥ ११८ ॥
 पतेरङ्गच् पक्षिणि ॥ ११९ ॥ पतङ्गः ॥ ११९ ॥
 तरत्यादिभ्यश्च ॥ १२० ॥ तरङ्गः । लवङ्गः ॥ १२० ॥

(११७) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पातालो देशः पादस्य तले वर्तते
 इति वा । पातालः पृषोदरादित्वात् सिद्धः । चण्डति कुप्यतीति चाण्डालः
 मातङ्गो वा । चण्डं कुपितमलं भूषणमस्येति समासेऽपि चण्डालः सिद्धः ॥

(११८) ताम्यन्ति काङ्क्षन्ति यं स तमालः वृक्षभेदो वा । विशति
 सर्वचेति विशालः । विशाला मानिनी भार्या विशालः सुन्दरः पुमान् ।
 विशालोज्जयिनी प्रोक्ता विशालं च बृहद् गृहम् । विडत्याक्रोशतीति
 विडालः । मार्जारो वा । स्त्री विडाली । मृणति हिनस्तीति मृणालः मृणा-
 लं पट्टमूलं वा । कोलति सङ्घातयतीति कुलालः । कुम्भकारो वा । कम्पते
 येन तत्कपालम् । नृशिरो घटखण्डो वा । पत्यते प्राप्यतेऽसौ पलालः ।
 निष्फलानि ब्रौह्मिणानि वा । प्यार इति प्रमिदुम् । पञ्चति व्यक्तं करोतीति
 पञ्चालः । देशविशिषो वा । बहुलवचनात्—शोधातेरपि कालन् । श्यन्ति
 सूक्ष्माणि कार्याणि कुर्वन्त्यत्र सा शाला गृहम् ॥

(११९) पक्षिण्यभिधेये पतधातेरङ्गच् प्रत्ययो भवति पतति गच्छ-
 तीति पतङ्गः पक्षी पक्षिणीत्युच्यमानेऽपि बाहुलकात् पतङ्गः सूर्योऽग्निरश्वः
 शलभः शालिभेदो वा । इत्यादीनामपि नामानि भवन्ति ॥

(१२०) तरति प्लवत्यनेन स तरङ्गः । जलोर्मिर्वस्त्रं भङ्गा वा ।
 लुनात्यनेन स लवङ्गः । ओषधिर्वा । तरत्याद्याकृतेगणः ॥

विडादिभ्यः कित् ॥ १२१ ॥ विडङ्गः । मृदङ्गः । कुरङ्गः ॥ १२१ ॥
 सृवृजोर्वृद्धिश्च ॥ १२२ ॥ सारङ्गः । वारङ्गः ॥ १२२ ॥
 गन् गम्यद्योः ॥ १२३ ॥ गङ्गा । अङ्गः ॥ १२३ ॥
 छापूखडिभ्यः कित् ॥ १२४ ॥ छागः । पूगः । खङ्गः ॥ १२४ ॥
 भृजः किन्नुट् च ॥ १२५ ॥ भृङ्गः ॥ १२५ ॥

(१२१) विडत्याक्रोशतीति विडङ्गः । ओपधिविशेषो वा । मृदनाति
 यं स मृदङ्गः । वाद्यभेदो वा । करति विक्षिपतीति कुरङ्गः । हरिणो
 वा । कुरङ्गो हरिणो स्त्रियां गौरादित्वान् डोप् । बाहुलकाद्-ऋकार-
 स्योत्वं रपरत्वं च ॥

(१२२) सृवृज्भ्यामङ्गच् धातोर्वृद्धिश्च । सरति सर्वत्र गच्छतीति
 सारङ्गः । पक्षी हरिणो भृङ्गो वा । यो वृणोति गृह्णाति स वारङ्गः
 खङ्गादिमुष्टिर्वा । बाहुलकात्-नृणाति नयति स नारङ्गः । रसः पिप्यलो-
 वृक्षफलभेदो वा ॥

(१२३) गच्छतीति गङ्गा । नदीभेदो वा । अतिवाऽद्यते भक्ष्यते-
 सावङ्गः । पुरोडाशो वा । बाहुलकात्-अमगत्यादिष्वित्यस्मादपि गन् ।
 गच्छति प्राप्नोति कर्माणि विषयान् वा येन तदङ्गम् । गात्रमुपायः प्रती-
 कमप्रधानं देशविशेषो वा ॥

(१२४) छादिभ्यो गन् किट् भवति । छिनत्तीति छागः । वर्करो वा ।
 पूयते मुखं येन स पूगः । क्रमुकः फलविशेषः । सुपारीति प्रसिद्धः । समूहो वा ।
 खडति भिनति येन स खङ्गः । शस्त्रं गण्डकः-गेंडा इति प्रसिद्धः ।
 बाहुलकात्-सेटत्यनाद्रियते स षिङ्गः । चञ्चलमना हारमध्यस्थो मणि-
 र्वा । बहुलवचनादेव सत्त्वनिषेधः ॥

(१२५) भृज्धातोर्गन् प्रत्ययः कित् तस्य च नुट् बिभर्ति धरति
 पुष्यति वा स भृङ्गः । भ्रमरो वा ।

शृणातेर्ह्रस्वश्च ॥ १२६ ॥ शृङ्गः ॥ १२६ ॥

गण् शकुनौ ॥ १२७ ॥ शार्ङ्गः ॥ १२७ ॥

मुदिग्रोर्गगौ ॥ १२८ ॥ मुद्गः । गर्गः ॥ १२८ ॥

अण्डन् कृसृभृवृजः ॥ १२९ ॥ करण्डः । सरण्डः । भरण्डः
वरण्डः ॥ १२९ ॥

शृदृभसोऽदिः ॥ १३० ॥ शग्त् । दरत् । भसत् ॥ १३० ॥

(१२६) कित् नुट् चेत्यनुवर्तते शृणाति हिनस्ति येन तत् शृङ्गम्
विषाणं पर्वताग्रं मत्स्यभेद ओषधिभेदः सुवर्णभेदो वा ।

(१२७) गण्प्रत्ययस्य गित्वादातोर्वृद्धिः पूर्ववन्नुट् च । शृणातीति
शार्ङ्गः पक्षी । बाहुलकात्प्रत्ययस्यादावकारागमेन शारङ्ग इत्यपि सिद्धं भवति ॥

(१२८) मुदधातोर्गक् । मोदतेऽसौ मुद्गः अन्नभेदो वा । मुद्गान्
लाति गृणातीति मुद्गलो मुनिः । यस्य गोत्रापत्यं मौद्गल्य इति प्रसिद्धम् ।
गृणात्युपदिशतीति गर्गः । ऋषिविशेषो वा । गृधातोर्गः प्रत्ययः ॥

(१२९) कृजादिभ्योऽण्डन् प्रत्ययः । क्रियतेऽसौ करण्डः पुष्पभाग्डभेदः
करण्डो वंशविकारपाचम् । पिटारी इति प्रसिद्धा । सरति गच्छतीति सरण्डः
पक्षी वा । बिभर्ति पुष्यतीति भरण्डः स्वामी । वृणोति स्वीकरोतीति
वरण्डः । मुखरोगः सन्दीहो वा । बाहुलकात्—तरति येन स तरङ्गः ।
जलतरणसाधनं वा । वनति संभजति धर्ममिति वतण्डः । ऋषिविशेषो वा ।
धातोस्तकारान्तादेशः । छमति भक्षयतीति छमण्डः । मातापितृशून्यो वा ।
शेतेऽसौ शयण्डः । विषयो वा । इत्यादयः शब्दा बहुलवचनादेव सिद्धा भवन्ति ।

(१३०) शृदृभसधातुभ्योऽदिः प्रत्ययः शृणाति हिनस्त्यस्मिन्निति
शग्त् । कालविशेष ऋतुर्वा । दीर्यतेऽदो दरत् हृदयं कूलं वा । बिभस्ति
भर्त्सयति प्रकाशते वा । स भसत् जघनं वा । बाहुलकात्—पर्षति स्निह्यति
प्रीतिकरं प्रसन्नं भवति चित्तमस्यां सा पर्षत् । सभा समाजो वा ॥

दृणातेः पुग्ग्रस्वश्च ॥ १३१ ॥ दृपत् ॥ १३१ ॥
 त्यजितनियजिभ्यो ङित् ॥ १३२ ॥ त्यद् । तद् । यद् ॥ १३२ ॥
 एतेस्तुट् च ॥ १३३ ॥ एतद् ॥ १३३ ॥
 सर्तेरटिः ॥ १३४ ॥ सरट् ॥ १३४ ॥
 लङ्घेर्नलोपश्च ॥ १३५ ॥ लघट् ॥ १३५ ॥
 पारयतेरजिः ॥ १३६ ॥ पारक् ॥ १३६ ॥
 प्रथेः कित्सम्प्रसारणं च ॥ १३७ ॥ पृथक् ॥ १३७ ॥
 भियः पुग्ग्रस्वश्च ॥ १३८ ॥ भिषक् ॥ १३८ ॥

(१३१) दीर्यतेऽमौ दृपत् । पाषाणो वा । अदिप्रत्यये धातोः पुक्
 ह्रस्वागमश्च भवति ।

(१३२) त्यजति क्लेशादिहिनो भवतीति त्यद् । तनुते विस्तृतो भवतीति
 तद् । यजति सर्वैः पदार्थैः सङ्गतो भवतीति यत् । ब्रह्मणो नामानि त्रयाणि ।
 त्यदादीनां सर्वनामसञ्ज्ञा भवति तेन सामान्यवाचकास्त्यदादयः ॥

(१३३) इण्धातोरादिः प्रत्ययस्तस्य तुडागमश्च । एति प्राप्नोतीत्ये-
 तत् । अस्यापि सर्वनामसञ्ज्ञा ॥

(१३४) सरति गच्छतीति सरट् । वायुर्मघो वा । सृधातोरादिः प्रत्ययः ॥

(१३५) लङ्घति शोषयतीति लघट् । वायुर्वा । धातोर्नलोपः ॥

(१३६) पारयति कर्म समापयतीति पारक् सुवर्णं वा । चौरादिका-
 त्पारिधातोराजिः प्रत्ययः ॥

(१३७) प्रथयति सङ्घाताद्विस्तृतो भवतीति पृथक् नानात्वं वा ।
 स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥

(१३८) विभेत्यसौ भिषक् । वैद्यो वा । सुमङ्गलभेषजाच्चेति निपातना-
 द् गुणे कृते भेषजम् । भेषजमेव भैषज्यम् ॥

युष्यसिभ्यां मदिक् ॥ १३९ ॥ युष्मद् । अस्मद् ॥ १३९ ॥
 अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिभुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् ॥ १४० ॥
 अर्मः । स्तोमः । सोमः । होमः । सर्मः । धर्मः । क्षेमम् ।
 क्षोमम् । भामः । यामः । वामः । पद्मम् । यक्ष्मः । नेमः ॥ १४० ॥
 जहातेः सन्वदाकारलोपश्च ॥ १४१ ॥ जिह्यः । १४१ ॥
 अवतेष्टिलोपश्च ॥ १४२ ॥ ओम् ॥ १४२ ॥

(१३९) योषति सेवतेऽसौ युष्मद् । युष सौत्वो धातुः । अस्यति प्रक्षि-
 पत्यन्यमित्यस्मद् । सर्वनामवाचकाविमौ ॥

(१४०) ऋच्छति प्राप्नोति सोऽर्मः । चक्षुरोगो वा । स्तौति येन स
 स्तोमः । सङ्घातो वा । सवत्यैश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः । कर्पूरश्चन्द्रमा वा ।
 हूयते दीयतेऽसौ होमः । यज्ञो वा । स्त्रियते गम्यते स सर्मा गमनम् । ध्रियते
 सुखप्राप्तये सेव्यते स धर्मः । पक्षपातरहितो न्यायः सत्याचारो वा । क्षय-
 त्यज्ञानं नाशयतीति क्षेमम् । कुशलं वा । क्षौति शब्दयतीति क्षोमम् ।
 वस्त्रभेदो वा । दुकूलमतसोऽकुसुमं च । भाति प्रकाशतेऽसौ भामः । क्रोधः
 सूर्या दीप्तिर्वा । यायते प्राप्यते स यामः । प्रहरो वा । वाति गच्छति ग्रन्थं
 वा गृह्णातीति वामः । शोभनः दुष्टः पार्श्वभेदो वा । पद्यते प्राप्नोतीति
 पद्मं कमलं निधिः शङ्खो वा । यक्षयते पूजयतीति यक्ष्मः । राजरोगो
 वा । नयतीति नेमः । प्रकारमूलं वा । अर्दुवाची तु सर्वनामसञ्ज्ञकः ॥

(१४१) मनित्यनुवर्तते । जहाति त्यजतीति जिह्यः । कुटिलो
 मन्दो वा ॥

(१४२) मन् प्रत्ययस्य टिलोपो धातोरुपधावकारयोः । अवति
 रक्षादिकं करोतीति ओम् । प्रसाव आरम्भोऽनुमतिर्वा । चादिषु पाठादस्या-
 ऽव्ययत्वम् ॥

ग्रसेरा च ॥ १४३ ॥ ग्रामः ॥ १४३ ॥

अविसिविसिशुषिभ्यः कित् ॥ १४४ ॥ ऊमम् । स्यूमः ।
सिमः । शुष्मम् ॥ १४४ ॥

इषियुधीन्धिदसिद्याधूसूभ्यो मक् ॥ १४५ ॥ इष्मः ।
युध्मः । इध्मः । दस्मः । श्यामः । धूमः । सूमः ॥ १४५ ॥

युजिरुचितिजां कुरुच ॥ १४६ ॥ युग्मम् । रुक्मम् ।
तिग्मम् ॥ १४६ ॥

(१४३) मन् । ग्रसतेति यो वा ग्रस्यते स ग्रामः । शालासमुदायः प्राणिनिवासो वा । सङ्ग्रामो युद्धं वा । शालीनां ग्रामः समूहः शालिग्रामः । एवं शब्दग्रामः । ग्रामो गानविद्यायां स्वर्गभेदश्च ॥

(१४४) मन्—कित् । अवति रक्षणादिकं भवति यच्च तत् ऊमम् । नगरं वा । टापि कृते बाहुलकादुस्वे च । उमा । विशिष्टा स्त्री वा । सीव्यति तन्तून् संतनोतीति स्यूमः । रश्मिर्वा । सिनोति बध्नातीति सिमः । सर्वनामसङ्ज्ञः सर्वपर्यायः । शुष्यति निस्सारं करोतीति शुष्मम् । अग्निर्वायुर्वा ॥

(१४५) य इच्छति य इष्यते स इष्मः । कामो वसन्त ऋतुर्वा । युध्यते यो येन वा स युध्मः । वाणो वा । य इन्धे दीप्यते वा येनेन्धे स इध्मः । समिद्धः । दस्यत्युपक्षयति दुःखयति वा स दस्मः । यजमानो वा । श्यायति गच्छति प्राप्नोति वा स श्यामः । हरितः कृष्णो वा । अप्रसूता स्त्री श्यामा लतौषधी वा । इत्यादि । धूनाति कम्पयतीति धूमः । अग्नि-सम्भवो वा । सूते जनयति प्राणिगर्भं विमुञ्चतीति सूक्ष्मोऽन्तरिक्षं वा । बाहुलकात्—ईते गच्छति कम्पते वा तदीर्मम् । वर्णं वा । क्षीति शब्दयतीति सा क्षुमा । अतसो वा । जजन्ति जायते तज्जन्म । उत्पत्तिर्वा ॥

(१४६) मक् । युज्यते तद्युग्मम् । द्वयोरैककर्मणि सम्बन्धः । रोचते प्रदीप्तवर्णो भवति स रुक्मो वर्णभेदो वा । तद्वर्णयोगादुक्मं सुवर्णम् । रुक्मो वर्णोऽस्यास्तीति रुक्मिणी स्त्री । तेजते द्विनतीति तिग्मम् । तीक्ष्णम् । विशेष्यलिङ्गोऽयं शब्दः तिग्मा धोः । तिग्मस्तीवो वा ॥

हन्तेर्हि च ॥ १४७ ॥ हिमम् ॥ १४७ ॥

भियः पुग् वा ॥ १४८ ॥ भीमः । भीष्मः ॥ १४८ ॥

घर्मग्रीष्मौ ॥ १४९ ॥

प्रथेः पिवन्पवन्ष्वनः संप्रसारणं च ॥ १५० ॥ पृथिवी ।
पृथ्वी । पृथ्वी ॥ १५० ॥

अशूप्रुपिलटिकणिरवटिविशिभ्यः कन् ॥ १५१ ॥ अश्वः ।
प्रुष्वः । लट्वा । कण्वम् । खट्वा । विश्वः ॥ १५१ ॥

(१४७) मक् । हन्त्युष्णं दुर्गन्धिं वा तद्धिमम् । हेमन्त ऋतुस्तुषार-
श्चन्दनं वा । महत् हिमं हिमानी । डीप् आनुक् ॥

(१४८) बिभेति विभ्यति वा यस्मात् यस्या वा स भीमः । भीमा
वा । भीष्मः । भीष्मा वा । भीमो भयानकः । पाण्डुपुत्रो वा । भीमा भयानका
सेना यस्य स भीमसेनः । एवं भीष्मसेनो वा ॥

(१४९) मक् प्रत्ययान्तौ निपात्येते । जिघर्ति चरति नश्यति दीप्यते
वा प्राणिनो जगद्वा येन स घर्मः । यज्ञ आतपो ग्रीष्म ऋतुः स्वेदो वा ।
ग्रसते शीतं रसादिकं वा स ग्रीष्मः । अत्युष्णकालो वा । ग्रसधातोर्ग्रीभावाः ।
पुगागमश्च निपातनात् ॥

(१५०) प्रथते विस्तोर्णा भवतीति पृथवी । पृथिवी । पृथ्वी । इत्ये-
कार्थास्त्रयः । भूमिरन्तरिक्षं वा ॥

(१५१) अश्नुते व्याप्नोतीत्यश्वः । तुरङ्गो वह्निर्वा । अजादिपाटात्
स्त्रियामश्वा । यः प्रुष्णाति स्निह्यति सिञ्चति पूरयति वा स प्रुष्वः । ऋतुः
सूर्या वा । लट्वाति बाल इव भवतिसा लट्वा । नियत स्त्रीलिंगः । करञ्जभेदः ।
फलं वाद्यं पक्षिभेदो वा । ऋणति निमीलति चेष्टेऽमौ कण्वः । कण्वं
पापं कण्वो मुनिर्वा । येनादावध्यापिता काण्वो शास्त्रेति प्रमिद्धा वा ।
खट्यते काङ्क्ष्यते या सा खट्वा । शय्याभेदो वा । विशति सर्वत्र स
विश्वः । विश्वं जगत । विश्वाऽतिविषया वा । सर्वादिपाटात्सर्वनामसञ्ज्ञश्च ॥

इण्शीभ्यां वन् ॥ १५२ ॥ एवः । शेवः ॥ १५२ ॥

सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपट्प्रह्वेष्व अतन्त्रे ॥ १५३ ॥

शेवायहजिह्वाग्रीवाऽप्वामीवाः ॥ १५४ ॥

कृगृदृभ्यो वः ॥ १५५ ॥ कर्वः । गर्वः । शर्वः । दर्वः ॥ १५५ ॥

(१५२) एति प्राप्नोतीत्येवः । बाहुलकात्—एवेत्यवधारणोऽव्ययम् ।
शेतेऽसौ शेवः । मुखं मेढ्रं वा ॥

(१५३) सर्वादयो वन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । सरतीति सर्वः ।
संपूर्णवाची सर्वनाममञ्जो विशेषणम् । नितरां घर्षति पिनष्टीति निघृष्वः ।
गुणाभावः । खुरं वा । रेपति हिनस्तीति रिष्वो हिंसकः । लपति कामयतेऽसौ
लष्वः । नर्तको वा । शेतेऽसौ शिवः । धातोर्ह्रस्वत्वम् । शिव ईश्वरः
शिवं भद्रं सुखमुदकं च । शिवा हरीतकी । पद्यन्ते गच्छन्त्यच्चेति पट् ।
भूलोको वा । प्रजहाति त्यजति स प्रह्वः । नम्रो वा । अकारलोपो निपा-
तनम् । ईपते हिनस्त्यज्ञानमिति ईष्वः । आचार्यो वा । अतन्त्र इति
किम् । मर्ता, मारक इत्यादि सूत्रेषु पठिताः सर्वादिशब्दा यौगिका माभूवन् ।
बाहुलकात्—ह्रसति शब्दयति ह्रस्वः । वामन एकमात्रो वर्णो वा ॥

(१५४) शेवादयो वच्नन्ता निपात्यन्ते । शेतेऽसौ शेवा । लिङ्गाकृतिर्वा ।
यजतीति यङ्गः यजमानो वा । जकारस्य हकारः जयति यया सा जिह्वा ।
इन्द्रियं वा । धातोर्हुक् । निगलति यया सा श्रोत्रा शरीराङ्गं वा । धातो-
ग्रीभावः । आप्नोति यया सा अप्वा । कण्ठस्थानं वा । मोनाति हिन-
स्तीति मोवः । उदरकृमिर्वा ॥

(१५५) किरति विक्षिपति चित्समिति कर्वः । कामो वा । गिरतीति
गर्वः । अहङ्कारो वा । शृणाति दुःखमिति शर्वः परमेश्वरः सुखं वा ।
दृणाति विदारयति प्राणिन इति दर्वः हिंसको जनो वा ॥

कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः ॥ १५६ ॥ युवा ।
 वृषा । तक्षा । राजा । धन्वा । द्युवा । प्रतिदिवा ॥ १५६ ॥
 सप्तशूभ्यां तुट् च ॥ १५७ ॥ सप्त । अष्ट ॥ १५७ ॥
 नञि जहातेः ॥ १५८ ॥ अहः ॥ १५८ ॥
 श्वनुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मज्जन्यमन्विश्वप्सन्परिज्व-
 न्मातरिश्चन्मघवन्निति ॥ १५९ ॥ श्वा । उक्षा । पूषा । प्लीहा । क्लेदा ।

(१५६) यौति मिश्रयत्यामिश्रयति वा स युवा मध्यावस्थस्तरुणो
 जनो वा । वर्षतीति वृषा सूर्यो वा । तक्षति तनूकरोति स तक्षा वर्धकिर्वा ।
 राजते प्राप्तो भवतीति राजा भूपतिश्चन्द्रमा वा । धन्वति गच्छतीति
 धन्वा । वाणक्षेपणं वा । द्यौत्यभिगच्छतीति द्युवा । सूर्यो वा । प्रतिदीव्यन्ति
 यस्मिन् स प्रतिदिवा । दिवसो वा । बहुलवचनात्—केवलादपि दिवधातोः
 कनिन् तेन दिवा दिवानौ । इत्याद्यपि सिद्धम् । दशतीति दशन् । संख्या-
 विशेषो वा । नौतीति नवन् संख्या वा । बाहुलकाद् गुणः ॥

(१५७) सपति समवेतीति सप्तन् संख्याभेदे वा । अश्नुते व्याप्रो-
 तीत्यष्टन् । संख्या वा । बाहुलकात्—पञ्चति व्यक्तिकरोतीति पञ्चन् संख्या-
 वाचको वा ॥

(१५८) जहाति त्यजति पृथक्करोत्यन्धकारमित्यहः दिनम् ।

(१५९) श्वनादयस्त्रयोदश शब्दाः कनिन्ता निपात्यन्ते । श्वयति
 गच्छति वर्धतेऽसौ श्वा । कुक्करो वा । स्त्रियां ङीष् शुनो । उक्षति मिश्रयतीति
 उक्षा बलीवर्दी वा । पूषति वर्धतेऽसौ पूषा । सूर्यो वायुर्वा । प्लिह्यते
 प्राप्यतेऽन्तरिति प्लीहा । कुक्षिव्याधिर्वा । धातोरुपधादीर्घत्वम् ।
 क्लिद्यत्याद्रीभवतीति क्लेदा चन्द्रमा वा । धातोरुगुणः । स्त्रियति प्रीतिं

स्नेहा । मज्जा । मूर्द्धा अर्यमा । विश्वप्सा । परिज्वा ।
मातरिश्वा । मघवा ॥ १५९ ॥

इत्युणादिषु प्रथमः पादः ॥ १ ॥

करोतीति स्नेहा । व्याधिर्वा । धातोर्गुणः । मूर्धति बध्नाति स मूर्द्धा शिरो
वा । उकारस्य दीर्घो वकारस्य धकारश्च । मज्जति शुन्यतीति मज्जा
अस्थिसारो वा । अर्यं स्वामिनं मिमीते मन्यते जानातीति अर्यमा ।
आदित्यो वा । आकारलोपः । विश्वं प्साति भक्षयतीति विश्वप्सा अग्निर्वा ।
परितो जवति वेगवान् भवतीति परिज्वा । चन्द्रमाः । जु इति सौत्रो
धातुस्तस्य यणादेशः । मातरि अन्तरिक्षे श्रवयति गच्छति वर्द्धते वा, अथवा
मातरि श्वसिति जीवयति शेते वा, स मातरिश्वा वायुर्वा । मघ्यते पूज्यतेऽसौ
मघवा सूर्ध्वो वा । महधातोर्हकारस्य घत्वंबुगागमश्च । मघवदिति तका-
रान्तोऽप्ययं शब्दो दृश्यते । तत्र मघं धनमस्यास्तीति मघवान् मघवन्तौ ।
मघवन्तः । इति मतुवन्तः । कनिनन्तस्तु । मघवा । मघवानौ । मघ-
वानः । मघवन् । मघवानम् । मघवानौ । मघोनः । अस्मिन् सूच इति
शब्दः प्रकारार्थः । एवं विधा अन्येऽपि कनिनन्ता शब्दा यथाप्रयोगं साध्याः ।
पादसमाप्त्यर्थो वेति शब्दः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे प्रथमः पादः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपादारम्भः

—:—

कृहृभ्यामेणुः ॥ १ करेणुः । हरेणुः ॥ १ ॥

हनिकुपिनीरमिकाशिभ्यः कथन् ॥ २ ॥ हाथः । कुष्ठः ।

नीथः । रथः । काष्ठम् ॥ २ ॥

अवे भृजः ॥ ३ ॥ अवभृथः ॥ ३ ॥

उषिकुपिगार्त्तिभ्यस्थन् ॥ ४ ॥ ओष्ठः । कोष्ठः । गाथा । अर्थः ॥ ४ ॥

सर्तेर्णित् ॥ ५ ॥ सार्थः ॥ ५ ॥

(१) करोतीति करेणुः हस्ती हस्तिनी वा । हरति स हरेणुः । गन्ध-
द्रव्यं कलापो वा । मटर इति प्रसिद्धः ॥

(२) यो हन्यते येन वा स हथः । दुःखितः शस्त्रविशेषो वा ।
कुष्णाति निरन्तरं कर्षतीति कुष्ठम् । व्याधिभेदः । कूट इत्याग्नौपधिर्वा ।
नीयते स नीथः । नयनं वा । शोभनो नीथोऽस्यास्तीति मुनीथो धर्मशीलः ।
रमते यस्मिन् येन वा स रथः । यानं शरीरं पादो वेतसो वा । काशते
दीप्यते तत्काष्ठम् । इन्धनं स्थानं कालमानं वा । काष्ठा दिक् दारु-
हरिद्रा वा ॥

(३) कथन् । अवबिभर्तीति, अवभृथः । पक्षिभेदो यज्ञान्त स्नानं वा ।

(४) आपति यो दहति येन वा स ओष्ठः । मुखावयवो वा ।
कुष्णाति निरन्तरं कर्षति स कोष्ठः । कोष्ठं कुक्षिः कुशूलमन्तर्गृहं वा ।
गीयते या सा गाथा वाग्भेदः श्लोको वा । अर्थते प्राप्यतेऽसार्थः । शब्दानां
वाच्यो धनं कारणं वस्तु प्रयोजनं निवृत्तिर्विषयो वा । बाहुलकात्—अयति
तनूकरोतीति श्रोथः । रोगविशेषो वा । शोतनूकरण इत्यस्यात्वनिषेधः ॥

(५) सरति गच्छति स सार्थः समूहो वा । थन्प्रत्ययस्य णित्वाद् वृद्धिः ॥

जृवृज्भ्यामूथन् ॥ ६ ॥ जरूथम् । वरूथः ॥ ६ ॥
 पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् ॥ ७ ॥ पीथः । तीर्थम् ।
 तुथः । उक्थम् । रिक्थम् । सिक्थम् ॥ ७ ॥
 अर्तेर्निरि ॥ ८ ॥ निर्ऋथः ॥ ८ ॥
 निशीथगोपीथावगथाः ॥ ९ ॥
 गश्चोदि ॥ १० ॥ उद्गीथः ॥ १० ॥
 समीणः ॥ ११ ॥ समिथः ॥ ११ ॥

(६) जीर्यति वयोहीना भवति स जरूथः मांसं वा । वृणोति येन स्वीकरोति स वरूथः । लोहेन रथावरणं वा ॥

(७) यः पिबति यं वा स पीथः । सूर्यो घृतं वा । तरन्ति येन यच्च वा ततोर्थम् । गुरुर्यज्ञः पुरुषार्थो मन्त्रो जलाशयो वा । यो येन वा तुदति व्यथां प्राप्नोति स तुथः । अग्निरञ्जनं तुत्या नीलो ओषधिर्गोवडवा वा । सूक्ष्मैलावा । छोटी इलाची इति प्रसिद्धा । उच्यते परितो भाष्यते यत्तदुक्थम् । सामवेदे वा । य उक्थमधीते वेति वा स औक्थिकः । रिणाक्ति पृथक् करोतीति यत्तदु रिक्थम् । दायादधनं सुवर्णं वा । बाहुलकात्—ऋचभुतावित्यस्मादपिथक् । ऋचति यदर्थं स्तौतेति ऋक्थम् । धनं वा । सिञ्चति प्रसादयति तत्सिक्थम् । मधुच्छिष्टम् । मोम इति प्रसिद्धम् । ओद । त्रिमृतं मण्डं वा ॥

(८) निगन्तरमृच्छन्ति गच्छन्ति यस्मिन्नसौ निर्ऋथः । सामवेदे वा ॥

(९) नितरां शतेऽस्मिन् स निशीथः । अर्दराच । सर्वगतो वा । गां वाणो पृथिवी वा पातीति गोपीथः । पण्डितो राजा वा । गावः पिबन्त्युदक्रमस्मिन् स जलाशयो वा । अवगतेऽवगच्छते जानीतेऽसाववगाथ । प्राप्तः स्नानं वा ॥

(१०) उदुपपदाद्गाधातोस्थक् । य उद्गीयत उच्चैः शब्दायते स उद्गीथः । सामध्वनिः प्रणवो वा ॥

(११) समेति सम्यक् प्राप्नोति पदार्थानिति समिथः । अग्निर्वा ॥

तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः ॥ १२ ॥

स्फायितश्चिवश्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिटृपिवन्द्युन्दिश्वि-
तिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिस्विदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसि-
दम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक् ॥ १३ स्फारम् ।
तक्रम् । वक्रः । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रः । तृप्रः ।
दृप्रः । वन्द्रः । उद्रः । श्वित्रम् । वृत्रः । वीरः । नीरम् ।

(१२) तिथादयस्त्र्यक्प्रत्ययान्ता निपाताः । तेजते सहातेऽसौ तिथः ।
अग्निः कामो वा । पर्पति मिञ्चति यो येन वा तत् पृष्ठम् । शरीरस्य
पश्चाद्भागः स्तोत्रं वा । यो येन वा गवतेऽव्यक्तशब्दं करोति तद् गूथम् ।
अपानमार्गः पुरीषं वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यूथः । समुदायो
वा । यः प्रवते गच्छति येन वा स प्रोथः । तुरङ्गनासिका । प्रस्थितः
पुरुषो वृक्षभेदः प्रियमुदकमन्नं स्त्रीगर्भश्च । प्रोथ उच्यते ॥

(१३) यः स्फायते वर्द्धतेऽसौ स्फारः । सुवर्णादिर्विकारो बुद्बुदो वा ।
बलि रेफे यन्लोपः । तनक्ति संकोचयतीति तक्रम् । मथितं दधि वा । वञ्चति
प्रलम्भते स वक्रः । कुटिलः । क्रूरो वा । शक्नोति यः स शक्रः । समर्थः कुटजो
वृक्षविशेषो वा । क्षिप्यते प्रेर्यते तत् क्षिप्रम् । शोघं वा । क्षुनति संपिनाति यः स
क्षुद्रः । अधमः क्रूरः कृपणो वा । अल्पे वाच्यलिङ्गः । क्षुद्रा वेश्या । कण्ट-
कारिका (भटकटाई) तथा मधुमक्षिका च । सर्पति गच्छतीति सृप्रः । चन्द्रमा
वा । यस्तृप्यति येन वा स तृप्रः । पुरोडाशो वा । दृप्यति हृष्यति मुह्यति वा स
दृप्रः । बलवान् वा । वन्दतेऽभिवदति स्तौति वा स वन्द्रः सत्कर्ता वा । उनति
क्लियति स उद्रः । जलचरो वा । सम्यगुनतीति समुद्रः । अनिदितामिति
नलोपः । श्वेतते वर्णाविशिष्टो भवतीति श्वित्रम् । कुष्ठभेदो वा । वर्तते सदैवा-
सौ वृत्रः । मेघः । शत्रुस्तमः । पर्वतश्चक्रं वा । अजति गच्छति शत्रून् वा
प्रक्षिपति स वीरः । सुभटः श्रेष्ठश्चतुष्पथं वा । वीरा क्षीरका कोली, पतिपुत्रवती
स्त्री मदिग मधुपर्णिकौषधिर्वा । नयति शरीरमिति नीरम् । जलम् वा ।

पद्रः । मद्रः । मुद्रा । खिद्रः । छिद्रम् । भिद्रम् । मन्द्रः ।
चन्द्रः । दह्रः । दस्त्रः । दभ्रः । उस्त्रः । वाश्रः । शीरः । हस्त्रः ।
सिध्रः । शुभ्रम् ॥ १३ ॥

चकिरम्योरुखोपधायाः ॥ १४ ॥ चुक्रम् । रुम्रः ॥ १४ ॥
वौकसेः ॥ १५ ॥ विकस्त्रः ॥ १५ ॥

पद्यते गच्छन्त्यस्मिन् वा स पद्रः । ग्रामः संवेशः स्थानं वा । माद्यतीति
मद्रः । हर्षो देशभेदो वा । मोदन्ते हृष्यन्ति यया सा मुद्रा यन्त्रिता सुवर्णा-
दिधातुमया वा । यः खिद्यते येन वा दीनो भवतीति स खिद्रः । रोगो
दरिद्रो वा । छिद्यते यतच्छिद्रम् । विवरं वा । भिनति येन तद् भिद्रं वज्रो
वा । मन्दते स्तौतीति मन्द्रः गम्भीरध्वनिर्वा । चन्दति हर्षयति दीपयति
वा स चन्द्रः कर्पूरश्चन्द्रमा वा । दहति भस्मीकरोतीति दह्रः दावाग्निर्वा ।
दस्यति रोगानुपचयतीति दस्त्रः । वैद्यश्चैरो वा । यो दभ्नाति दम्भं करोति
स दभ्रः । क्षुद्रो जनः समुद्रो वा । वसतीति उस्त्रः । राश्रमर्वा । उस्त्रा गौः ।
वाश्यते शब्दयतीति वाश्रम् । पुरीषं दिवसो मन्दिरं चतुष्पथं वा । शीते-
ऽसौ शीरः । महासर्पो वा । हसतीति हस्त्रः । मूर्खो वा । सेधति गच्छति
सिध्यति वा स सिध्रः । साधुर्वृक्षजातिर्वा । कुत्सिताः मिट्टा वृक्षाः सिध्रका
स्तासां वनं सिध्रकावणम् । वनं पुरगामिश्रकासिध्रकेति सूत्रेण गत्वम् । शोभते
दीप्यते तत् शुभ्रम् रुचिरं शुक्रं पाण्डुरं वा । बाहुलकान् मेशति शब्दयतीति
मिश्रः संयोगो वा । पुण्डति खण्डयतीति पुण्ड्रः । दुष्टो वा । सिनोति बध्नाति
मांसरुधिरादिकमिति सिगः । नाडी वा । मुस्यति खण्डयतीति मुस्रम् । नेत्रो-
दकं वा । अस्यतीति, अस्रम् । रुधिरं वा । अस्रम् पिबतीति, अस्रपो दंशः ॥

(१४) चकते तृप्यति प्रतिहन्यते वा । स चुक्रः । अस्रमस्रवेतस-
मित्यादि । रमन्तेऽस्मिन् स रुम्रः । अरुणः शोभनो वा ॥

(१५) विकसति विशेषतया गच्छतीति विकुस्रः । चन्द्रमा वा कस
धातोरुपधाया उत्त्वम् ॥

अमितम्योर्दीर्घश्च ॥ १६ ॥ आम्नम् । ताम्रम् ॥ १६ ॥

निन्देर्नलोपश्च ॥ १७ ॥ निद्रा ॥ १७ ॥

अर्देर्दीर्घश्च ॥ १८ ॥ आर्द्रम् ॥ १८ ॥

शुचेर्दश्च ॥ १९ ॥ शूद्रः ॥ १९ ॥

दुरीणो लोपश्च ॥ २० ॥ दूरम् ॥ २० ॥

कृतेश्छः कू च ॥ २१ ॥ कृच्छ्रम् । क्रूरः ॥ २१ ॥

रोदेर्णिलुक् च ॥ २२ ॥ रुद्रः ॥ २२ ॥

(१६) अम्यते सम्भज्यते सेध्यते तदम्नम् । चूतो वा । ताम्यति काङ्क्षतीति । ताम्रम् । धातुभेदो रक्तवर्णो वा ।

(१७) या निन्दति यया वा सा निद्रा शयनं वा ॥

(१८) आर्दतिगच्छति याचते वा तत् आर्द्रम् । सरसद्रव्यमाद्रां नक्षत्रं वा ॥

(१९) दीर्घश्चानुवर्तते । शोचतीति शूद्रः सेवको वा । पुंयोगे शूद्रस्य स्त्री शूद्री शूद्रा तज्जातिर्वा ॥

(२०) दुरुपदादिग्धातोर्क् धातोश्च लोपः । दुःखेनेयते प्राप्यते तदूरम् । विप्रकृष्टं वा ॥

(२१) कृतधातोर्न्त्यस्य छः सर्वस्य च कू इत्येताबादेशौ रक् च । कृन्तति छिनतीति कृच्छ्रं क्रूरश्च कठिनं दुःखं खलो वा ॥

(२२) पापिनो रोदयतीति रुद्रः । ईश्वरः प्राणादिदश रुद्रा जीवो वा । बाहुलकादन्यत्रापि धात्वन्तरे सञ्ज्ञाछन्दसोः सामान्यप्रत्ययादौ च णेरुक् । पाशं बन्धनं धारयतीति पाशधरः । शूनधरः । चक्रधरः । वज्रधरः । शक्तिधरो वा । कुमारः । उदक्रधरो मेघः । दण्डधरो राजा । अथ सर्वत्राचि प्रत्यये धृवातोः परस्य णेरुक् । पर्णानि शोषयति मोचयति रोहयति वा स पर्णशुट् । पर्णमुट् । पर्णशुट् । इति ग्यन्तात् शुषधातोः क्तिप् णेरुक् । जप्तवन्मुत्वादकार्यम् । वान्ति पर्णशुषो वाता वान्ति पर्णमुचोऽपरे । ततः पर्णं ह्य वान्ति ततो देवः प्रवर्षति ॥

जोरी च ॥ २३ ॥ जीरः ॥ २३ ॥

सुसूधाञ्जृग्धिभ्यः क्रन् ॥ २४ ॥ सुरः । सूरः । धीरः ।
गृध्रः ॥ २४ ॥

शुसिचिमीनां दीर्घश्च ॥ २५ ॥ शूरः । सीरः । चीरम् ।
मीरः ॥ २५ ॥

वा विन्धेः ॥ २६ ॥ वीध्रम् ॥ २६ ॥

वृधिवपिभ्यां रन् ॥ २७ ॥ वर्ध्रम् । वप्रः ॥ २७ ॥

(२३) जुधातोर्गकि प्रत्यय ईकारादेशः । जवति सूक्ष्मो भवतीति
जीरः । अणुः खड्गो वणिग्द्रव्यं वा । महाभाष्यकारसम्मत्या, रकि ज्यः
सम्प्रसारणम् । भा० १ । १ । ४ । ज्यावयाहानावित्यस्य रकि प्रत्यये सम्प्रसा-
रणम् । जिनात्यवस्थां जहातीति जीरः । तथा महाभाष्यकारसम्मत्या
जीवधातोर्दानुक् । जावति प्राणान् धारयतीति जीरदानुः । वैदिकं रूपमेतत् ।
अत्र च जीवधातोर्वन्ति वलोपः । ऊठनिषेधश्च बाहुलकादेव । इत्यादि ॥

(२४) सुनोति सवति उत्पादयत्यैश्वर्यवान् वा भवतीति सुरः ।
देवसंज्ञो विद्वान् स्त्रियां सुरा मद्यं वा । सूयते वा सुवति प्राणिनः सम-
र्थयतीति सूरः । सूर्यो वा । दधाति सर्वान् पोषयति वा स धीरः पण्डितो
वा । गृध्यत्यभिकाङ्क्षतीति गृध्रः । पर्त्तिवशेषो वा ॥

(२५) शु इति सौत्रो धातुः । शवति गच्छतीति शूरः । विक्रमशालः
पुरुषो वा । सिनोति बध्नातीति सीरः । हलं वा । चिनोतीति चीरम् ।
वत्कलं वा । मिनोति प्रक्षिपतीति मीरः । समुद्रो वा ॥

(२६) विश्लेषेण्येन्धते प्रदीप्यते तद्वीध्रम् । स्वभावशुद्धः ॥

(२७) वर्द्धते तद्वर्ध्रम् । चर्म वा । वपति बीजं छिनत्ति वा स वप्रः ।
पिता केदारः प्राकारो रोधो वा ॥

ऋजेन्द्राग्रवज्रवेप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुकशुक्लगौ-
रवन्नेरामालाः ॥ २८ ॥

समि कस उकन् ॥ २९ ॥ सङ्कसुकः ॥ २९ ॥

(२८) ऋजाद्येकोनविंशतिः शब्दा निपात्यन्ते । अर्जति गच्छति
तिष्ठति वा स ऋजः । नायको वा । गुणाभावः । इन्दति परमैश्वर्यवान्
भवतीति इन्द्रः । ममर्थोऽन्तराऽऽत्मादित्यो योगो वा । अङ्गति गच्छतीति
अग्रम् । प्रधानमुपरिभागो वा । वजति प्राप्नोति प्राप्यते वा स वज्रः ।
हीरकं शस्त्रं वा । वपति धर्ममिति विप्रः । मेधावी वा । कुम्बत्याच्छाद-
यतीति कुब्रम् । अरण्यं वा । चुम्बति यो येन वा तच्चुब्रम् । मुखं वा ।
अत्रोभयवेदितोऽपि नलोपः । यः क्षुरति विलिखति येन वा छिनतीति स
क्षुरः । छेदनद्रव्यं कोकिलाक्षं गोक्षुरो लोमच्छेदकं नापितशस्त्रं वा ।
खुरति छिनति यो येन वा स खुरः शफं वा । अत्रोभयत्र रक्ति रेफलोपो
गुणाऽभावश्च । भन्दते कल्याणं करोतीति भद्रम् कल्याणम् । नकारलोपः ।
उच्यति समवैतीति उग्रः । महेश्वर उत्कटः क्षत्रं वा । विभेत्यस्मात्स
भेरः । भेरी दुन्दुभिर्वा गौरादित्वान् ङीष् । पक्षे भेरशब्दस्य लत्वम् ।
भेलो जलतरणद्रव्यं वृद्धकायः कातरो वा । शुच्यते पवित्रीभवतीति शुक्रम्
ब्रह्माग्निराषाढः प्राणिबीजं नेत्ररोगो वा । अस्यैव व्यवस्थितविभाषया पक्षे
लत्वम् शुक्लः श्वेतं रजतं वा । गवतेऽव्यक्तं शब्दयतीति गौरः । श्वेतो रक्त-
वर्णो वा । गौरी स्त्री । ङीष् । वनति सम्भजतीति वनूः विभागी । एति
गच्छति यया सा इरा । उदकं मद्यं वा । इरावान् समुद्रः ऐरावती नदी ।
इरया मद्येन माद्यतीति, इरम्मदः । माति मानहेतुर्भवतीति माला । पुष्पा-
दिस्रक् । मालं क्षेत्रम् । मालो जनः । बाहुलकात्—तितिक्षते येन तनी-
ब्रम् । तीक्ष्णं वा । जस्य वो दीर्घत्वं च धातोः ॥

(२९) सम्यक् कसति गच्छतीति सङ्कसुकः संशयमापन्नश्चञ्चलो दुर्जनो वा ।

पचिनशार्णुकनकनुमौ च ॥ ३० ॥ पाकुः । नंशुकः ॥ ३० ॥

भियः कुकन् ॥ ३१ ॥ भीरुकः ॥ ३१ ॥

कुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि ॥ ३२ ॥ रजकः । इक्षुकुट्टकः ।
तक्षकः । ध्रुवकः । अभ्रकम् । चरकः । चषकः । भञ्जकः । शालभ-
ञ्जिका । काष्ठपुत्रिका । पुष्पप्रचायिका । शुनकः । भषकः ॥ ३२ ॥

(३०) पचनशधातुभ्यां णुकन् प्रत्ययः पचधातोश्चम्य कः । नशधातो-
र्नुस्च । पचतीति पाकुः । सूपाकारो वा । नश्यतीति नंशुकः । अणुवाचको वा ॥

(३१) यो विभेति यस्माद्वा स भीरुकः कातरो वा ॥

(३२) शिल्पिनि संज्ञायां च गम्यमानायां सोपपदादनुपपदाद्वा
सामान्याद्वातोः कुन् भवति । रजतीति रजकः । वस्त्रशोधको वा । इक्षून्
कुट्टयतीति इक्षुकुट्टकः । गौडिकस्येयं संज्ञा । तक्षति तनूकरोतीति तक्षको
वर्धकः । शिल्पो । ध्रुवको गर्भमोचको जनः संज्ञा वा । अभ्रति गच्छति येन
तदभ्रकमौषधं सञ्ज्ञा वा । चरतीति चरको वैद्यकशास्त्रं गन्ता वा । चषति
भक्षयत्यस्मिन्निति चषकं पानपात्रं शालं वा भञ्जतीति भञ्जकः । मत्स्यभेदः
प्राकारो वा । शालान् भञ्जन्ति यस्यां सा शालभञ्जिका क्रीडा । काष्ठं
पुत्रयति यस्यां सा काष्ठपुत्रिका क्रीडा । पुष्पैः प्रचाय ते पूजयन्ति यस्यां सा
पुष्पप्रचायिका क्रीडा वा । शुनति गच्छतीति शुनकः श्वः । भषति भर्त्स-
यतीति भषकः श्वः वा । आमलते समन्तादुपारयतीत्यामलको वृक्षभेदः ।
गौरादित्वान् डोष् । आमलको । कलामंशं पाति रक्षतीति कलापकश्चन्द्रमा
वा । मल्लते गन्धं धरतीति मल्लिका पुष्पजातिर्वा । कन्यते दीप्यते काम्य-
तेऽभीप्स्यते वा तत्कनकं सुवर्णं वा । कटत्यावृणोत्यङ्गमिति कटकमाभू-
षणं वा । कडा इति प्रसिद्धं । शिखरं राजधानी नितम्बं वा । लटति बाल
इव भवतीति लटको दुर्जनो वा । इत्यादिषु शिल्पिसंज्ञयोः कुन् बोध्यः ॥

रमेरश्च लो वा ॥ ३३ ॥ रमकः । लमकः ॥ ३३ ॥

जहातेर्दे च ॥ ३४ ॥ जहकः ॥ ३४ ॥

ध्मो धम च ॥ ३५ ॥ धमकः ॥ ३५ ॥

हनो बध च ॥ ३६ ॥ बधकः ॥ ३६ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ३७ ॥ कुहकः । कृतकम् । भिदकः । छिद-
कम् । रुचकम् । लङ्गकः । उज्भकः ॥ ३७ ॥

कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम् ॥ ३८ ॥ कार्षकः । कृषकः ॥ ३८ ॥

उदकश्च ॥ ३९ ॥

वृश्चिऋषोः किकन् ॥ ४० ॥ वृश्चिकः । कृषिकः ॥ ४० ॥

(३३) रमतेऽसौ रमकः । रमणशीलो वा । लमकोऽपि स एव ॥

(३४) जहाति त्यजति हानिं करोतीति जहकः त्यागी कालो वा ॥

(३५) धमति शब्दं करोतीति अग्निं वा संयुनक्ति स धमकः कर्म-
कारो वा ॥

(३६) हन्तीति बधको हिंसकः ॥

(३७) बहुलवचनादन्यत्रापि कुन् । कोहयति विस्मयं कारयतीति
कुहकः । दाम्भिको नोहागे वा । कृन्तति छिनतीति कृतकं मिथ्या वा ।
भिनति येन स भिदकः खड्गो वा । छिनति येन ताच्छिदकं वज्रो वा ।
गेचतेऽनेन तद्रुचकं मातुलुङ्गकं वा । विजौरा नोवू इति प्रसिद्धं वा ।
लङ्गति गच्छतीति लङ्गकः । प्रियो वा । उज्भत्युत्सृजतीति, उज्भकः ।
योगो मेयो वा ॥

(३८) कृषतीति कार्षकः कृषको वा कृषीबलः ॥

(३९) उनति क्लेदयतीत्युदकं जलं वा ॥

(४०) वृश्चि । छिनतीति वृश्चिकः विषो जीवविशेषः शूककीटो
वा । केंचुश्चा इति प्रसिद्धः । कृषति येन स कृषकः फालो वा ॥

प्राडि पणिकषः ॥ ४१ ॥ प्रापणिका । प्राकषिकः ॥ ४१ ॥
 मुषेर्दीर्घश्च ॥ ४२ ॥ मूषिकः ॥ ४२ ॥
 स्यमेः सम्प्रसारणं च ॥ ४३ ॥ सीमिकः ॥ ४३ ॥
 क्रिय इकन् ॥ ४४ ॥ क्रयिकः ॥ ४४ ॥
 आडि पणिपनिपतिखनिभ्यः ॥ ४५ ॥ आपणिकः । आप-
 निकः । आपतिकः । आखनिकः ॥ ४५ ॥
 श्यास्त्याहृज्विभ्य इनच् ॥ ४६ ॥ स्येनः । श्येनः । हरिणः ।
 अविनः ॥ ४६ ॥

(४१) प्रकर्षेण समन्तात्पणायत्यसौ प्रापणिकः । पण्यविक्रयो वा ।
 प्राकपति हिनस्तीति प्राकषिकः पारदारिको वा ॥

(४२) मुष्णाति पदार्थानिति मूषिकः । आखुर्वा । स्त्रियां मूषिका ।
 अजादित्वाट्ठाप् ॥

(४३) स्यमति शब्दयतीति सीमिकः । वृक्षभेदो वा ॥

(४४) क्रीणाति द्रव्येण पदार्थान्तरं ददाति गृह्णाति वा स क्रयिकः
 क्रेता । विक्रयिको विक्रेता ॥

(४५) समन्तात्पणायति व्यवहृति स आपणिकः । वैश्यो वा ।
 आपण्येन व्यवहरतीति तद्वृत्ते ठक् सिद्धे नित्स्वरार्थं वचनम् । आपना-
 यतीति, आपनिकः । म्लेच्छजातिर्वा । समन्तात् पततीत्यापतिकः । श्येनो
 वा । समन्तात् खनतीत्याखनिकः । मूषिको वराहो वा ॥

(४६) श्यार्थति गच्छतीति श्येनः । पक्षिभेदो वा । स्त्यायति शब्द-
 यति संघातयतीति स स्येनः । चैरो वा । हरतीति हरिणः । मृगः । पाण्डु-
 वर्णो वा । स्त्रियां हरिणी सुन्दरी छन्दोभेदो हरितवर्णा वा । अवति
 रक्षणादिकं करोतीति, अविनः । अध्वर्युर्वा ॥

वृजेः किञ्च ॥ ४७ ॥ वृजिनम् ॥ ४७ ॥

अर्जेरज च ॥ ४८ ॥ अजिनम् ॥ ४८ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ४९ ॥

द्रुदक्षिभ्यामिनन् ॥ ५० ॥ द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥ ५० ॥

अर्तेः किरिञ्च ॥ ५१ ॥ इरिणम् ॥ ५१ ॥

वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च ॥ ५२ ॥ विपिनम् । तुहनम् ॥ ५२ ॥

(४७) इनच् कित् । वृक्ते वर्जयतीति वृजिनः केशः पापं वक्त्रो वा ॥

(४८) अजति गच्छति क्षिपति वा । तत् अजिनम् । चर्म वा ।

अजादेशो वीभावनिवृत्यर्थः ॥

(४९) कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठिनम् । कठोरं वा । कुण्डते दहतीति कुण्डिनः । ऋषिर्वा । यस्यापत्यं कौण्डिन्यः । वर्द्धते प्रधानो भवतीति बर्हिणः । मयूरो वा । फलति विशोर्णा भवतीति फलिनः । फलवान् वृद्धो वा । नलति गन्धयुक्तो भवतीति नलिनम् । कमलं वा । मस्यति परिणमतीति ममिनम् । सुषिष्टं वा । मलते धरतीति मलिनः । मलयुक्तो वा । द्रुह्यति जिघांसतीति द्रुहिणः । ब्रह्मा वा । अन्धकारं द्यत्यवखण्डयतीति दिनम् । दिवसं वा । इनचः कित्वादाकारलोपः ॥

(५०) द्रवति गच्छति द्रूयते प्राप्यते वा । तद् द्रव्यं सुवर्णं पराक्रमो वा । दक्षते वर्धते शोघकारो भवति वा । स दक्षिणः सरलो वामभागः परतन्त्रोऽनुवर्तनं च स्त्रियां दक्षिणादानं प्रतिष्ठा वा ॥

(५१) ऋच्छन्ति गच्छन्ति यश्च यस्माद्वा जनास्तात्, इरिणम् । शून्यमूषरभूमिर्वा ॥

(५२) यत् वेपते कम्पते यत्र वा तद्विपिनम् । गहनं वा । तोहति गच्छति याचते वा ततुहिनम् । हिमं वा । गुणे कृते ह्रस्वः ।

तलिपुलिभ्यां च ॥ ५३ ॥ तलिनम् । पुलिनम् ॥ ५३ ॥
 गर्वेरत उच्च ॥ ५४ ॥ गुर्विणी ॥ ५४ ॥
 रुहेश्च ॥ ५५ ॥ रोहिणः ॥ ५५ ॥
 महेरिनण् च ॥ ५६ ॥ माहिनम् । महिनम् ॥ ५६ ॥
 किञ् वचिप्रच्छिश्चिस्तुद्रुप्रुज्वा दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥ ५७ ॥
 वाक् । प्राट् । श्रीः । सूः । द्रूः । कटप्रूः । जूः ॥ ५७ ॥

(५३) तालयति प्रतिष्ठति तलिनम् । विरलं पृथग्भूतं स्वल्पं
 स्वच्छं वा । पोलयति महान् भवतीति पुलिनम् । जलमामोष्यं वा ॥

(५४) गर्वति प्राप्नोति गर्वयति मुञ्चति वा सा गुर्विणी
 गर्भिणी वा ॥

(५५) रोहति बीजेन जायते स रोहिणः । चन्दनवृक्षो वा । जाति-
 वाचकात् स्त्रियां ङीप् रोहिणी गौर्वा । प्रज्ञादित्वादण् रोहिणः ॥

(५६) महति मह्यते पूज्यते वा तन्माहिनं महिनम् । राज्यं वा ।
 चादिनजनुवर्तते ॥

(५७) वक्ति शब्दानुच्चारयति यया सा वाक् । पृच्छतीति प्राट् । शब्दं
 पृच्छतीति शब्दप्राट् शिष्यो वा । शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । छोः शूडनुना-
 सिके चेति छस्य शः । अयति आर्यते वा सा श्रीः । ईश्वररचना शोभा
 वा । या स्रवति यस्या वा सा सूः यज्ञसाधनं वा । द्रूयते प्राप्यते दुःख-
 मनया सा द्रूः । हिरण्यं वा । कटेन कटिभागेन प्रवते गच्छतीति कटप्रूः ।
 कामुको जनः कीटो वा । जवति शीघ्रं गच्छतीति जूः । शशोऽश्वो वृषभ
 आकाशं विद्या वा । बाहुलकात्—प्रवर्षन्ति मेघा यस्यां सा प्रावृट् ।
 ऋतुः । द्वारयति संवृणोति यया सा द्वाः द्वारौ । उदकेन श्वयति वर्धते
 तत् उदश्वित् तक्रं वा । ऋचन्ति स्तुवन्ति यया सा ऋक् ॥

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च ॥ ५८ ॥ आपः ॥ ५८ ॥

परौ व्रजेः षश्च पदान्ते ॥ ५९ ॥ परिव्राट् ॥ ५९ ॥

हुवः श्लुवञ्च ॥ ६० ॥ जुहूः ॥ ६० ॥

स्रुवः कः ॥ ६१ ॥ स्रुवः ॥ ६१ ॥

चिक् च ॥ ६२ ॥ स्रुक् ॥ ६२ ॥

तनोतेरनश्च वः ॥ ६३ ॥ त्वक् ॥ ६३ ॥

ग्लानुदिभ्यां डौ ॥ ६४ ॥ ग्लौः । नौः ॥ ६४ ॥

चिरव्ययम् ॥ ६५ ॥

(५८) आप्नुवन्ति शरीरमित्यापः । अस्य नित्यं बहुवचनत्वं स्त्रीत्वं च । अपः । अर्दाभः । अर्दुभ्यः । इत्यादि ॥

(५९) क्तिप् । परितः सर्वतो व्रजति स परिव्राट् । परिव्राजौ । परिव्राजः । संन्यासी वा ॥

(६०) जुहोति ददात्यति वा यया सा जुहूः । सुभेदो वा ॥

(६१) स्रवति घृतमस्मात् स स्रुवः । यज्ञसाधनं वा । बहुलवचनात्—ध्रुवति स्थिरं भवतीति ध्रुवम् । निश्चलं वा ॥

(६२) स्रु धातोश्चिक् प्रत्ययोऽपि भवति । घृतमस्याः स्रवति सा स्रुक् । यज्ञोचितद्रव्यं वा ॥

(६३) तनोति विस्तृता भवतीति त्वक् । त्वचौ । त्वचः । शरीरावरणं चर्म वल्कलं वा ॥

(६४) ग्लायति हर्षक्षयं करोतीति ग्लौः । चन्द्रमा वा । नुदति प्रेरयतीति नौः । जलतरणसाधनं वा ॥

(६५) अचस्थ एजन्तप्रत्ययान्तश्च्यन्त एवाव्ययसंज्ञो भवति । एतेन नियमे-नोणादीनां व्युत्पन्नपक्षे कृन्मेजन्त इत्यनेनाच्यन्तानामव्ययसंज्ञा न भवति । अग्लौ ग्लौः संपद्यत इति ग्लौकरोति । ग्लौ भवति ग्लौ स्यात् । नौकरोति इत्यादि । ग्लौः । नौः । अत्र केवलानामव्ययसंज्ञाऽभावाद्धिभक्तिलुङ् न भवति ॥

रातेडैः ॥ ६६ ॥ राः ॥ ६६ ॥

गमेडोः ॥ ६७ ॥ गौः ॥ ६७ ॥

भ्रमेश्व डूः ॥ ६८ ॥ भ्रूः । अग्रेगूः ॥ ६८ ॥

दमेडोसिः ॥ ६९ ॥ दोः ॥ ६९ ॥

पणोरिज्यादेश्व वः ॥ ७० ॥ वणिक् ॥ ७० ॥

वशः कित् ॥ ७१ ॥ उशिक् ॥ ७१ ॥

भृज उच्च ॥ ७२ ॥ भुरिक् ॥ ७२ ॥

(६६) राति ददाति रायते दीयते वा सा राः । रायौ । रायः । धनं सुवर्णं वा । चि्व प्रत्यये रैकरोति । इत्यादि ॥

(६७) गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः । पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वा । गौरिवाऽयो गमनं प्राप्तिर्वाऽस्येति गवयो गोसदृशो वनपशुविशेषः । स्त्री गवयो । गौरादित्वान् डीष् । चि्वप्रत्यये गोकरोतीत्यादि । द्योतन्ते लोका अस्यां वा यया द्योतते सा द्यौः । अन्तरिक्षं वा । द्यावौ । द्यावः । इत्यादि ॥

(६८) चाटु गमधातोर्डः । भ्रमति चलतीति भ्रूः । नेत्रयोरुपरि रेखा वा । अग्रे गच्छतीत्यग्रेगूः । सेवको वा ॥

(६९) दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दोः । दोषौ । दोषः । बाहुर्वा ॥

(७०) पणायति व्यवहरतीति वणिक् । वणिजौ । वणिजः । वैश्यो वा । प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् वाणिजः ॥

(७१) वष्टि यं कामयते यत्काम्यते वा स उशिक् । उशिजौ । उशिजः । अग्निर्घृतं वा ॥

(७२) इजिः कित् । भरति सर्वं धरतीति भुरिक् । भूमिर्वा । भुरिजौ । भुरिजः ॥

जसिसहोरुरिन् ॥ ७३ ॥ जसुरिः । सहुरिः ॥ ७३ ॥
 सुयुरुवृत्रो युच् ॥ ७४ ॥ सवनः । यवनः । रवणः । वरणः ॥ ७४ ॥
 अशोरशच् ॥ ७५ ॥ रशना ॥ ७५ ॥
 उन्देर्नलोपश्च ॥ ७६ ॥ ओदनः ॥ ७६ ॥
 गमेर्गश्च ॥ ७७ ॥ गगनम् ॥ ७७ ॥
 बहुलमन्यत्रापि ॥ ७८ ॥

(७३) जस्यति मुञ्चति जामयति हिनस्ति वेति जसुरिः । वञ्जं वा । सहते भारमिति सहुरिः । सूर्यो भूमिर्वा ॥

(७४) सवत्युत्पादयति सुनोति निस्सारयति रसान् वा स सवनः । चन्द्रमा वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यवनः । स्नेच्छभेदो वा । रौति शब्दयतीति रवणः । कोकिलः पक्षी वा । वृणोति स्वीकरोतीति वरणः । उदकं वृक्षभेदो वा ॥

(७५) युच् धातेरशदेशश्च । अश्नुते व्याप्नोतीति रशना । स्त्रियः कटिभूषणं वा । दन्त्यसकारवांस्तु रसनाशब्दो नन्द्यादित्वाल्ल्युप्रत्ययान्तः । रसयत्यास्वादयति ययासा रसना जिह्वा । कृल्ल्युटो बहुलमितिकरणे ल्युः ॥

(७६) उनत्याद्रौ भवतीत्योदनः । भक्तं वा ॥

(७७) मस्य गः गच्छन्त्यस्मिन्निति गगनम् । आकाशं वा ॥

(७८) अन्यधातुभ्योपि बहुलं युच् प्रत्ययो भवति । द्योततेऽसौ द्योतनः प्रदीपो वा । स्यन्दते प्रस्रवति गच्छतीति स्यन्दनः । रथो वा । नयते प्राप्नोति रूपं येन तन्नयनम् । नेत्रं वा । चन्दत्याह्लादयतीति चन्दनम् । सुगन्धिवृक्षो वा । रोचतेऽसौ रोचना । गोरोचनमौषधं वा । अस्यति प्रक्षिपतीति, असनः । पीतवर्णः शालवृक्षो वा । राजानमततीति राजातनः । पुष्पं वा । शृणोत्यनया सा श्रवणा नक्षत्रं वा । एवमन्येऽपि यथाप्रयोगं युच्प्रत्ययान्ताः शब्दाः साध्याः ॥

रञ्जेः क्युन् ॥ ७९ ॥ रजनम् ॥ ७९ ॥

भूसूधूभ्रस्त्रिभ्यश्छन्दसि ॥ ८० ॥ भुवनम् । सुवनम् । निधु-
वनम् । भृजनम् ॥ ८० ॥

कृपृवृजिमन्दिनिधात्रः क्युः ॥ ८१ ॥ किरणः । पुरणः । वृज-
नम् । मन्दनम् । निधनम् ॥ ८१ ॥

धृषेर्धिषच् सञ्ज्ञायाम् ॥ ८२ ॥ धिषणा ॥ ८२ ॥

(७९) रजति वस्त्रागयनेन तद्रजनम् । कुमुभं वा । स्त्रियां ङिप् ।
रजनो हरिद्रा । ल्युट्प्रत्यये सति रञ्जनमित्येव स्वरभेदश्च भवति । बाहु-
लकात्—कल्पतेऽसौ कृपणः । लोभयुक्तो वा ॥

(८०) क्युन् । भवतीति भुवनम् । लोको वा । बहुलवचनाद् भाषायामपि
प्रयुज्यते । सूते सूयते वा स सुवनः । ईश्वरः सूर्या वा । धूनीति कम्पयतीति
धुवनः । अग्निर्वा । निधुवनम् । रतिक्रीडा वा । यद् यस्मिन् वा भृज्जति
परिपक्वं भवतीति भृज्जनम् । अन्नभर्जनकपालं वा ॥

(८१) किरति विक्षिपत्यन्धकारमिति किरणः । पिपतिं पालयति
पूरयति वा स पुरणः । जलैः पूर्यो भवतीति समुद्रो वा । वृक्ते वर्जयतीति
वृजनम् । अन्तरिक्षं बलं वा । यो येन वा मन्दते स्तौति स्वपिति कामयते
वा तन् मदनम् । स्तोत्रं वा । नितरां दधाति यत्तन्निधनम् । मरणं वा ।
बाहुलकात्—केवलादपि धनम् ॥

(८२) धृष्णीति प्रागल्भ्यं ददाति स धिषणः गुरुः । धिषणा बुद्धिर्वा ।
अत्र सञ्ज्ञाग्रहणेन ज्ञायते । उणादयः सामान्यार्थे यौगिका भवन्तीति ।
सञ्ज्ञायास्तस्मिन्नर्थे रुढत्वात् । यदि च प्रकृतिप्रत्ययविभागेन उणादिभ्यो
यौगिकोऽर्थो न निस्सरेत् तर्हि सर्व उणादिस्थाः शब्दाः सञ्ज्ञावाचका एव
स्युः । पुनः सञ्ज्ञाग्रहणमनर्थकं स्यात् ॥

हन्तेर्धुरच् ॥ ८३ ॥ घुरणः ॥ ८३ ॥

वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच् ॥ ८४ ॥

संश्चत्पद्देहत् ॥ ८५ ॥

छन्दस्यसानच् शुजृभ्याम् ॥ ८६ ॥ शवसानः । जरसानः ॥ ८६ ॥

(८३) हन्ति हनने न वा प्रादुर्भवति स घुरणः । शब्दो वा ॥

(८४) पृषदादयो वर्तमानार्थवाचका अतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शतृवच्चैषां कार्यं भवतीति । पर्षति सिञ्चति हिनस्ति वा तत् पृषत् । मृगविशेषो विन्दुर्वा । पृषती । पृषन्ति स्त्रियां पृषती । बर्हति वर्धतेऽसौ बृहत् । महत्यर्थे त्रिलिङ्गः । स्त्रियां बृहती छन्दोभेदो वा । महति पूजयति पूज्यते वा तन्महत् । महान् । महतो भावो महिमा । स्त्रियां डोप् । महती । नारदस्य सप्ततन्त्री वीणा वा । गच्छतीति जगत् । धातोर्जगादेशः । संसारे नपुंसकं वायुर्वा जगत् पुंसि । जङ्गमवाचिनि त्रिलिङ्गः । स्त्रियां जगती छन्दोभेदो जनो वा ॥

(८५) एतेऽप्यतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । संश्चयतेऽसौ संश्चत् कुहको वा । प्रत्ययस्य सुट् धातोर्लिकारलोपश्च । संश्चायते धूमः । भृशादित्वात् क्यङ् । तृप्नोति प्रीणयतीति तृपत् । छचं वा । विशेषेण हन्तीति वेहत् । विहन्ति गर्भमिति गर्भोपघातिनो गौर्वा । वेरुपमर्गस्यैकारादेशो धातोश्च टिलोपः । पूर्वसूत्रात् पृथक्करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम् । तेन वेहतौ । वेहतः । संश्चतौ । इत्यादि सिद्धम् ॥

(८६) शवन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स शवसानः । मार्गो वा । जीर्यति वयसा हिनो भवतीति जरसानः वृद्धो जनो वा । बाहुलकाद्-दृणाति तमोविदारयतीति दरसानः । प्रकाशो वा । तरयति येन स तरसानः । नौका वा । वृणोतीति वरसानः । कृतदारो वा ॥

ऋज्रजिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित् ॥ ८७ ॥ ऋज्रजसानः ।

वृधसानः । मन्दसानः । सहसानः ॥ ८७ ॥

अर्त्तेर्गुणः शुट् च ॥ ८८ ॥ अर्शसानः ॥ ८८ ॥

सम्यानच् स्तुवः ॥ ८९ ॥ संस्तवानः ॥ ८९ ॥

युधिबुधिदृशः कित् ॥ ९० ॥ युधानः । बुधानः । दृशानः ॥ ९० ॥

हुचर्लः सनो लुक् छलोपश्च ॥ ९१ ॥ जुहुराणः ॥ ९१ ॥

श्वितेर्दश्च ॥ ९२ ॥ शिश्विदानः ॥ ९२ ॥

मुचियुधिभ्यां सन्वच् ॥ ९३ ॥ मुमुचानः । युयुधानः ॥ ९३ ॥

(८७) ऋज्रजत्योपध्यादिकं पाचयतीति ऋज्रजसानः । मेघो वा । वर्धतेऽसौ वृधसानः । पुरुषो वा । मन्दते स्तुत्यादिकं करोतीति मन्दसानः जीवोऽग्निर्वा । सहतेऽसौ सहसानः । मयूरो यज्ञो वा ॥

(८८) य ऋच्छति प्राप्नोति सर्वान् स, अर्शसानः । अग्निर्वा । धातोर्गुणः प्रत्ययस्य शुडागमश्च ॥

(८९) सम्यक् स्तौतीति संस्तवानः । वाग्मी वा ॥

(९०) युध्यतेऽसौ युधानः । शुचुर्वा । बुध्यते स बुधानः । आचार्यो वा । पश्यतीति दृशानः । लोकपालः सूर्यो वा । बाहुलकात् -कल्पते समर्थो भवतीति कृपाणः । खड्गो वा । पापयति स्थूलो भवतीति पाषाणः । णित्वाद्बृद्धिः ॥

(९१) हुच्छति कुटिलो भवतीति जुहुराणः । चन्द्रमा वा ॥

(९२) सनो लुक् तकारस्य दकारः । किदित्यनुवृत्तेर्गुणनिषेधः । श्वेततेऽसौ शिश्विदानः पापकर्मा वा ॥

(९३) मुञ्चत्यसौ मुमुचानो मोचकः । युध्यतेऽसौ युयुधानो योद्धा ॥

तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः सञ्ज्ञायां चानिटौ ॥ ९४ ॥
 शंस्ता । शंस्तारौ । क्षत्ता । क्षत्तारौ ॥ ९४ ॥
 नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृदुहितृ ॥ ९५ ॥
 सावसेर्ऋन् ॥ ९६ ॥ स्वसा ॥ ९६ ॥

(९४) शंस्यादिभ्यः क्षदादिभ्यश्च यथाक्रमं तृन्तृचौ तौ चानिटौ । शंसति स्तौतीति शंस्ता स्तोता । अप्तृन्तृजिति सूत्रे नप्तृप्रभृतेः पृथक् पाठादौणादिकयोस्तृन्तृचोर्ग्रहणं न भवति । तेन शंस्तारौ । शंस्तरः इत्यादिषु दीर्घा न भवति । शास्ति शिञ्चते धर्मादिकमिति शास्ता । पण्डितो वा । प्रशास्ता राजा । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः । परिगणनादीर्घः । क्षद् संवृताविति सौचो धातुः । क्षदति संवृणोतीति क्षत्ता । सारथिर्द्वारपालो वैश्यायां शूद्राज्जातो वा । क्षुनति संपिनिष्टि येन स क्षोत्ता मुसलो वा । उन्नयति कार्याणीत्युन्नेता । ऋत्विग्वा । मन्यते जानात्यसौ मन्ता । विद्वान् । हन्तीति हन्त । चौरौ वा । धाता । ईश्वरो वा । उपदेष्टा गुरुः । इत्यादि ॥

(९५) नप्चादयो दश तृन्तृजन्ता निपात्यन्ते । नपतीति नप्ता । पौत्रो दौहित्रो वा । नप्तुः पुत्रः प्रनप्ता स्यात् । नप्त्रो पौत्रो । नजः प्रकृतिभावः । नयतेः पुक् । नयतीति नेष्टा । ऋत्विग्वा । त्विष्यतेऽसौ त्वष्टा । सूर्यो वा इकारस्याकारः । जुहोतीति होता यजमानो वा । व्यापकत्वेन सर्वं पुनातीति पोता विष्णुरीश्वरः । भ्राता । सोदर्यो वा । जकारलोपः । जायां कन्यां मातिमिनोति मिमीते मार्जयति वा स जामाता दुहितुः पतिः । मृजधातोः सति रेफजकारलोपः । मानयति सत्करोतीति माता । उत्पादिका वा । स्वस्मादित्वात् टाप्निषेधः । पातिरक्षतीति पिता । जनको वा । दोग्धि कार्याणि प्रपूरयतीति दुहिता पुत्रो वा । दुहितुरपत्यं दौहित्वः ॥

(९६) सुष्टृस्यतीति स्वसा भगिनी वा ॥

यतेर्वृद्धिश्च ॥ ९७ ॥ याता ॥ ९७ ॥

नत्रि च नन्देः ॥ ९८ ॥ ननन्दा । ननान्दा ॥ ९८ ॥

दिवेर्ऋ ॥ ९९ ॥ देवा ॥ ९९ ॥

नयतेर्ङिञ्च ॥ १०० ॥ ना ॥ १०० ॥

सव्ये स्थश्छन्दसि ॥ १०१ ॥ सव्येष्टा ॥ १०१ ॥

अत्तिस्मृधृम्यम्यश्यवितृभ्योऽनिः ॥ १०२ ॥ अरणिः ।

सरणिः । धरणिः । धमनिः । अमनिः । अशनिः । अवनिः ।

तरणिः ॥ १०२ ॥

(९७) यततेऽसौ याता । भ्रातृणां भार्याः परस्परं यातारो भवन्ति ॥

(९८) न नन्दति तुष्यतीति ननान्दा । बाहुलकाद् वृद्ध्यभावे—
ननन्दा । पत्युर्भगिनी वा ॥

(९९) दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवा । पत्युः कनोयान् भ्राता वा ॥

(१००) ऋप्रत्ययस्य डित्वाट्टिलोपः । कार्याणि नयतीति ना । नरौ ।
नरः । बहुकेशा बहुर्वा ॥

(१०१) डित्वादाकारलोपः । सव्ये वामभागे तिष्ठतीति सव्येष्टा ।
सारथिर्वा सप्तम्या अलुक् ॥

(१०२) ऋच्छति प्राप्नोति येन स, अरणिः । अग्न्युत्पत्तये मथनी
द्वे शरणी वा । सरन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स सरणिः । मार्गो वा । गयन्ता-
त्सृधातोरनिः सारणिः स्त्रियां सारणी । बाहुलकात्—शृणाति हिनस्तीति
शरणिः । धरति सर्वमिति धरणिः पृथिवी वा । धमिः सौत्वो धातुः । धमति
प्रापयति रसादिकमिति धमनिः नाडी वा । अमतीत्यमनिः । गतिर्वा । येना-
श्नाति योऽश्नुते व्याप्नोति वा स, अशनिः । वज्रं वा । अवति रक्षणा-
दिकं करोतीत्यवनिः । भूमिर्वा । तरति येन यया वा स सा वा तरणिः ।
सूर्यः कुमारी नौक्रीषधिभेदा वा । बाहुलकात्—रजतीति रजनिः रात्रिर्वा ।
नलोपः । स्त्रियां रजनी द्राक्षा हरिद्रा वा ॥

आङि शुषे सनश्छन्दसि ॥ १०३ ॥ आशुशुक्षणिः ॥ १०३ ॥

कृषेरादेश्च धः ॥ १०४ ॥ धर्षणिः ॥ १०४ ॥

अदेर्मुट् च ॥ १०५ ॥ अद्मनिः ॥ १०५ ॥

वृतेश्च ॥ १०६ ॥ वर्त्तनिः ॥ १०६ ॥

क्षिपेः किञ्च ॥ १०७ ॥ क्षिपणिः ॥ १०७ ॥

अर्चिशुचिहसृपिछादिछर्दिभ्य इतिः ॥ १०८ ॥ अर्चिः ।

शोचिः । हविः । सर्पिः । छदिः । छर्दिः ॥ १०८ ॥

बृहेर्नलोश्च ॥ १०९ ॥ बर्हिः ॥ १०९ ॥

द्युतेरिसिन्नादेश्च जः ॥ ११० ॥ ज्योतिः ॥ ११० ॥

(१०३) सन्नन्तादाङ्पूर्वादिनिः प्रत्ययः । समन्तात् शुष्यन्ति पदार्था येन स आशुशुक्षणिः । अग्निर्वा ॥

(१०४) कृपतीति धर्षणिः । पुंश्चली स्त्री वा । डोप् धर्षणो ॥

(१०५) अतीत्यद्मनिः । अग्निर्वा ॥

(१०६) वर्तते यस्मिन्निति वर्त्तनिः । मार्ग एकपदो वा ॥

(१०७) क्षिपत्यनेन शब्दन् स क्षिपणिः । आयुधं वा ॥

(१०८) अर्चति येन तदर्चिः । दीप्तिर्वा । शोचति शोचयतीति शोचिः । प्रकाशो वा । हूयते यत्तद्विः । होमयोग्यं वस्तु वा । यत्येन वा सर्पति तत् सर्पिः । घृतं वा । छादयति येन तच्छदिः । छादनं तृणादिच्छादनसाधनं वा । इस्मन्त्रनिति ह्रस्वादेशः । छर्दति यत्तच्छर्दिः । वमनं व्याधिर्वा । बाहुलकात्—समन्तादवतीति, आविः । प्राकट्यम् । अन्ययशब्दोऽयम् ॥

(१०९) बृंहति वर्द्धते तद् बर्हिः । दर्भो वा ॥

(११०) द्योतते प्रकाशते तज्ज्योतिः । अग्निः सूर्यादिकं वा । ज्योतिरधिकृत्य कृतो ग्रन्थो ज्योतिषम् । सञ्ज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद् वृद्धिनिषेधः ॥

वसौ रुचेः सञ्ज्ञायाम् ॥ १११ ॥ वसुरोचिः ॥ १११ ॥
 भुवः कित् ॥ ११२ ॥ भुविः ॥ ११२ ॥
 सहो धश्च ॥ ११३ ॥ सधिः ॥ ११३ ॥
 पिबतेस्युक् ॥ ११४ ॥ पाथिः ॥ ११४ ॥
 जनेरुसिः ॥ ११५ ॥ जनुः ॥ ११५ ॥
 मनेर्धश्छन्दसि ॥ ११६ ॥ मधुः ॥ ११६ ॥
 अर्त्तिपृवपियजितनिधनितपिभ्यो नित् ॥ ११७ ॥ अरुः ।
 परुः । वपुः । यजुः । तनुः । धनुः । तपुः ॥ ११७ ॥
 एतेर्णिच्च ॥ ११८ ॥ आयुः ॥ ११८ ॥

(१११) वसूनग्न्यादीन् रोचतेऽसौ वसुरोचिः । यज्ञो वा । बाहुल-
कात्—केवलादपि रोचिः ज्वाला वा ॥

(११२) इति कित् । यो भवति यस्मिन् वा स भुविः समुद्रो वा ॥

(११३) इति सधिः । संहते भारमिति सधिः । अनङ्वान् वा ॥

(११४) पिबति यो येन वा तत् पाथिः चक्षुः समुद्रो वा ॥

(११५) जायते यतज्जनुः । जनुषो । जननं वा । बाहुलकान्मन-
धातोर्ऽपि मन्यते जानातीति मनुः । मनुषो ॥

(११६) मन्यते बुध्यते यद्येन वा तत् मधु पवित्रद्रव्यं वा ॥

(११७) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुः । आदित्यो वृणो वा । पिपति
येन तत् परुः । ग्रन्थिर्वा । वपति बीजादिकमस्मात्तद्वपुः शरीरं वा । यजति
येन तज्जुः । वेदविशेषो वा । तनोति कार्याण्यनेन ततनुः शरीरं वा ।
दिधन्ति धनादिकं प्राप्नोति येन तद्वनुः वाणक्षेपणं वा । तपति दुःख-
यतीति तपुः सूर्योऽग्निः शत्रुर्वा ॥

(११८) ईयते प्राप्यते यतदायुः । जीवनं वा । जटापूर्वाज्जटायुः ।
पक्षिराजः ॥

चक्षेः शिञ्च ॥ ११९ ॥ चक्षुः ॥ ११९ ॥

मुहेः किञ्च ॥ १२० ॥ मुहुः ॥ १२० ॥

कृग्शृवृश्चतिभ्यः ष्वरच् ॥ १२१ ॥ कर्वरः । गर्वरः । शर्व-
री । वर्वरः । चत्वरम् ॥ १२१ ॥

नौ षदेः ॥ १२२ ॥ निषद्वरः ॥ १२२ ॥

इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ॥

(११९) चक्षते रूपमनुभवन्त्यनेन तच्चक्षुः । नेचं वा । चक्षुषा गृह्यत
इति चाक्षुषं रूपम् ॥

(१२०) मुह्यति भ्रान्तो भवतीति मुहुः । पौनः पुन्येऽर्थेऽव्ययं वा ॥

(१२१) किरति विक्षिपतीति कर्वरः । व्याघ्रो दुष्टो वा कर्वरो
रात्रिव्याघ्रो दुष्टा वा । गिरति निगरीतीति गर्वरोऽहंकारः । अहङ्कारयो-
गाद् गर्वरो नायकः । शृणाति हिनमि प्रकाशमिति शर्वरो रात्रिर्वा ।
वृणातीति वर्वरः । प्राकृतजनो वा । चतते याचते स्वीक्रियते यत्तत् चत्व-
रम् । अङ्गनं वा ॥

(१२२) निषीदति यो यत्र वा स निषद्वरः । षड्को निषद्वरो
रात्रिर्वा ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे द्वितीयः पादः ॥

अथ तृतीयापादारम्भः ॥

—:०*०:—

छित्त्वरछत्त्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्टर-
संयहराः ॥ १ ॥

इण्सिञ्जिदीडुष्यविभ्यो नक् ॥ २ ॥ इनः । सिनः । जिनः ।
दीनः । उष्णः । ऊनः ॥ २ ॥

(१) छित्त्वाद्य एकादश शब्दाः प्वरच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
छिनतीति छित्त्वरः धूर्तः । शत्रुश्छेदनद्रव्यं वा । छदतेऽपवारयतीति छत्त्वरः ।
गृहं लताच्छादितं स्थानं वा । अत्रोभयत्र धातुदकारस्य तकारः । डुधाञ्
धारणे पा पाने, मा माने । एषामीत्वमन्त्यस्य । दधातीति धीवरः ।
नौवाहको वा । पिबति दुग्धादिकमिति पीवरः स्यूलो वा । माति मीना-
ति हिनस्ति वा स मीवरः । हिंसको वा । चिनोति तृणादिना चीयते
वा स चीवरः । चीवरं वस्त्रं मुनिस्थानं वा । धातोर्दीर्घादेशः । तीरयति
कर्मसमाप्तिं करोतीति तीवरो जातिविशेषो वा । रेफलोपो गुणाभावश्च ।
नयतीति नीवरः । गुणनिषेधः । परिव्राट् वा । गाहते विलोडयतीति
गह्वरम् । गहनं वा । ह्रस्वादेशः । कटति वर्षत्यावृणोति वा तत् कट्टरम् ।
भोज्यं व्यञ्जनं वा । संयच्छतीति संयद्वरः । नृपो वा । मकारस्य दकारः ।
बाहुलकात्—उपजुहोतीत्युपह्वरः । रथो वा । प्वरच् प्रत्ययस्य पित्वात्
स्त्रियां छित्वरी । इत्यादि सर्वत्र डोष् ॥

(२) एतीति इनः । ईश्वरो राजा प्रभुः सूर्यो वा । इनेन स्वामिना
सह वर्तत इति सेना । सिनोति बध्नातीति सिनः । काणो वा । जय-
तीति जिनः । अतिवृद्धो जयशीलो नास्तिकभेदो वा । दीयते क्षीणो भव-
तीति दीनः । दुःखी वा । ओषति दहतीत्युष्णम् । ईषतप्तं वा । वाच्य-
लिङ्गः । अवति रक्षादिकं करोतीत्यूनः । असंपूर्णं वा ॥

फेनमीनौ ॥ ३ ॥

कृषेर्वर्णे ॥ ४ ॥ कृष्णः ॥ ४ ॥

वन्धेधिबुधी च ॥ ५ ॥ बुध्नः । बुध्नः ॥ ५ ॥

धापृवस्यज्यतिभ्यो नः ॥ ६ ॥ धानाः । पर्णम् । वस्त्रः । वेनः ।

अन्नः ॥ ६ ॥

लक्षेरट्मुट् च ॥ ७ ॥ लक्ष्णम् । लक्ष्मणम् ॥ ७ ॥

वनेरिञ्चोपधायाः ॥ ८ ॥ वेन्ना ॥ ८ ॥

(३) स्फायते वर्द्धते स फेनः । हिण्डोरः । समुद्रफेन इतिप्रसिद्धः । जलविकारो वा । फेनायते नदी । मीनाति हिनस्तीति मीनः । राश्यन्तरो मत्स्यो वा ॥

(४) कृषतीति कृष्णो नीलवर्णो वा कृष्णा पिप्यली वा । बाहुलकात् जिघर्ति चरति चितं यया सा घृणा दौर्मनस्यं वा ॥

(५) ब्रध्नातीति ब्रध्नः बुध्नातीति । बुध्नः । ब्रध्नो महान् सूर्यो वा । बुध्नो मेघो मूलमन्तरिक्षं वा ॥

(६) दधातीति धानाः अग्निपक्वा यवा वा । नित्यं स्त्रीलिङ्गो बहुवचनञ्च । पिपति पालयति पूरयति वा तत् पर्णम् । पर्णं वा । वसति येन स वस्त्रः । मूल्यं वेतनं वा । अजति गच्छति प्राप्नोति वा स वेनः । कमनीयः प्रजापतिरोश्वरो वा । अतिरि निरन्तरं गच्छतीति अन्नः । सूर्यो वा । बाहुलकात्—शृणोतीति श्रीणः । षड्गुर्वा ॥

(७) लक्षयतीति लक्ष्णः । लक्ष्मणम् । चिह्नं नाम वा । रामभ्राता लक्ष्मणो वा । हंसस्त्री लक्ष्णा सारसी वा ॥

(८) वन्यते सम्भज्यते या सा वेन्ना । नदी वा ॥

सिद्धेष्टेयू च ॥ ९ ॥ स्योनः ॥ ९ ॥

कृवृजृसिद्रूपन्यनिस्वपिभ्यो नित् ॥ १० ॥ कर्णः । वर्णः ।

जर्णः । सेना । द्रोणः । पन्नः । अन्नम् स्वप्नः ॥ १० ॥

धेट इच्च ॥ ११ ॥ धेनः । धेना ॥ ११ ॥

तृषिशुषिरसिभ्यः कित् ॥ १२ ॥ तृष्णा । शुष्णः । रत्नम् ॥ १२ ॥

सुत्रो दीर्घश्च ॥ १३ ॥ सूना ॥ १३ ॥

रमेस्त च ॥ १४ ॥ रत्नम् ॥ १४ ॥

(६) सीव्यति तन्तून् सन्तनोतीति स्यूनः । आदित्यो वा । टिभा-
गस्य यू इत्यादेशः । बाहुलकात्—केवलोऽपि न प्रत्ययस्तेन ऊठादेशे कृते
स्योनः सुखी स्योनं सुखमित्यपि सिद्धं भवति ॥

(१०) नो नित् । किरति विक्षिपतीति कर्णः । ओच्च क्षत्रियविशेषो वा ।
वृषोति व्रियतेवा सवर्णः । ब्राह्मणादिः शुक्लादिः स्तुतिर्यशोरूपमक्षरं स्वीकारश्च ।
जीर्यतीति जर्णः । चन्द्रमा वृद्धो वा । सिनोति बध्नाति शक्नोति सेना । इनेन
सह वर्तत इति पूर्वमुक्तम् । द्रवति गच्छतीति द्रोणः । कृष्णक्रीको मानविशेषो-
ऽर्जुनगुरुर्वा । द्रोणी जलसेचनी वा । पनायति स्तौतीति पन्नः । सर्पो वा । अनिति
जीवयतीत्यन्नेनादनादिकं वा । यः स्वपिति यत् सुप्यते वा स स्वप्नः । निद्रा वा ॥

(११) धयन्ति पिबन्ति यस्मात्स धेनः समुद्रो धेना नदी वा ।
आतृत्वनिवृत्यर्थ इकारादेशः ॥

(१२) तृष्यति काङ्क्षति पिपासति वा यया सा तृष्णा । लिप्सा
पिपासा वा । शुष्यति रसादिकमिति शुष्णः । सूर्योऽग्निर्वा । रसति शब्दय-
तीति रत्नम् । द्रव्यं वा ॥

(१३) यः सुनोति यत्र वेति सूना । जन्तुबधस्थानं वा ॥

(१४) गयन्ताद्रमेर्न प्रत्ययो मस्य तश्चादेशः । रमयति हर्षयतीति
रत्नम् । जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्वि रत्नं प्रचक्षते । अश्वरत्नम् । गजरत्नम् ।
मणिरत्नम् । स्त्रीरत्नम् । इत्यादि ॥

रास्त्रासास्त्रास्थूणावीणाः ॥ १५ ॥

गादाभ्यामिष्णुच् ॥ १६ ॥ गेष्णुः । देष्णुः ॥ १६ ॥

कृत्यशूभ्यां क्स्त्रः ॥ १७ ॥ कृत्स्त्रम् । अक्ष्णम् ॥ १७ ॥

तिजेदीर्घश्च ॥ १८ ॥ तीक्ष्णम् ॥ १८ ॥

श्लिपेरञ्चोपधायाः ॥ १९ ॥ श्लक्ष्णम् ॥ १९ ॥

यजिमनिगुन्धिदसिजनिभ्यो युच् ॥ २० ॥ यज्युः । मन्युः ।
गुन्ध्युः । दस्युः । जन्युः ॥ २० ॥

भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युक् ॥ २१ ॥ भुज्युः । मृत्युः ॥ २१ ॥

(१५) रसति शब्दयतीति रास्त्रा । गन्धद्रव्यं वा । मस्ति स्वर्पिति
यया सा सास्त्रा । गवादीनां कण्ठाऽधोभागश्चर्म वा । तिष्ठति छादना-
दिकमनया सा स्थूणा गृहस्तम्भो वा । आकारस्य ऊ आदेशः । वेति
व्याप्नोति शब्दोऽस्याः सा वीणा वाद्यविशेषो वा । निपातनाण्णत्वम् ॥

(१६) गायति शब्दं करोतीति गेष्णुः । गायको वा । ददातीति
देष्णुः । दानशीलो वा ॥

(१७) कृन्तति स्वल्पमिति कृत्स्त्रम् । संपूर्णं वा । अश्नुते व्याप्नोती-
त्यच्णम् । अखण्डं वा ॥

(१८) तितिचते तत् तीक्ष्णम् । तीव्रम् । वाच्यलिङ्गोऽयं शब्दः ।
तीक्ष्णा बुद्धिः । तीक्ष्णः पुरुषः । तीक्ष्णं घृतम् ॥

(१९) क्स्त्रः । श्लिष्यतीति श्लक्ष्णम् । सुकुमारं चिलिङ्गेषु वा ।

(२०) यजतीति यज्युः । अश्वयुवा । मन्यतेऽसौ मन्युः । शोकः क्रोधो वा ।
शुन्ध्यतीति शुन्ध्युः । अग्निर्वा । दस्यति नाशयति परषदार्थानिति दस्युः । तस्करो
वा । जायते प्रादुर्भवतीति जन्युः । शरीरो वा । बाहुलकादनादेशाभावः ॥

(२१) यो भुनक्ति यत्र वा स भुज्युः पात्रं वा । म्रियत इति मृत्युः ।
शरीरवियोगो वा स्त्रीलिङ्गः पुंलिङ्गश्च ॥

सरतेरयुः ॥ २२ ॥ सरयुः ॥ २२ ॥

पानीविपिभ्यः पः ॥ २३ ॥ पापम् । नीपः । वेष्पः ॥ २३ ॥

च्युवः किञ्च ॥ २४ ॥ च्युपः ॥ २४ ॥

स्तुवो दीर्घश्च ॥ २५ ॥ स्तूपः ॥ २५ ॥

सुशृभ्यां निञ्च ॥ २६ ॥ सूपः । शूर्पम् ॥ २६ ॥

क्युभ्यां च ॥ २७ ॥ कूपः । यूपः ॥ २७ ॥

खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः ॥ २८ ॥

(२२) यः सरति यत्र जलानि वा सरन्ति स सरयुः । नदी वा ।
अयूप्रत्यय इति पाठान्तरम् । सरयुः ॥

(२३) पान्ति रक्षन्त्यात्मानमस्मादिति पापमधर्मे वा । तञ्जीगात्पापः
पुरुषः । नयतीति नेपः । पुरोहितो वा । वेवेष्टि व्याप्नोतीति वेष्पः । पेयमुदकं वा ॥

(२४) च्यवते प्राप्नोति वदति वा येन स च्युपः । मुखं वा ॥

(२५) स्तौतीति स्तूपः । भूमिसमुच्छ्राये यज्ञवेदिर्वा ॥

(२६) किद् दीर्घश्च । सुनोति सूयते पच्यते वा स सूपः पक्वं द्विद-
लान्नं वा । शृणाति हिनस्तीति शूर्पं मानभेदोऽन्नशोधकं पात्रं वा ॥

(२७) कित् दीर्घश्च । कौति शब्दयतीति कूपः । यौति मिश्रय-
तीति यूपः । यज्ञशालास्तम्भो वा ॥

(२८) खष्पादयः पप्रत्ययान्ता निपाताः । खनतीति खष्पः । क्रोधो
बलात्कारो वा । नकारस्य षत्वम् । यत् शीलति समादधाति तत्
शिल्पम् कौशलं वा । ह्रस्वादेशः । शष्यते हन्यते तच्छष्पम् । बालतृणं
कान्तिचयो वा । षत्वम् । बाधते दुःखयतीति बाष्पम् । नेत्रजलमूष्मा वा ।
धकारस्य सत्वम् । रौति शब्दयतीति रूपम् । आकृतिः स्वभावः सौन्दर्यं
वा, दीर्घादेशः । पिपतीति पर्पम् । गृहं बालतृणं वा । तलयति प्रतिष्ठां
करोतीति तल्पम् । शय्या स्त्रियो वा । बालहुकात्—चमति भक्षयतीति
चम्पा । नगरो वा । पाति रक्षतीति पम्पा । नदी वा । ह्रस्वत्वं मुडागमश्च ॥

स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच् ॥ २९ ॥ स्तनयित्नुः ।
 हर्षयित्नुः । पोषयित्नुः । गदयित्नुः । मदयित्नुः ॥ २९ ॥
 कृहनिभ्यां कृत्नुः ॥ ३० ॥ कृत्नुः । हत्नुः ॥ ३० ॥
 गमे सन्वच्च ॥ ३१ ॥ जिगत्नुः ॥ ३१ ॥
 दाभाभ्यां नुः ॥ ३२ ॥ दानुः । भानुः ॥ ३२ ॥
 वचेर्गश्च ॥ ३३ ॥ वग्नः ॥ ३३ ॥
 धेट इच्च ॥ ३४ ॥ धेनुः ॥ ३४ ॥
 सुवः कित् ॥ ३५ ॥ सूनः ॥ ३५ ॥
 जहातेर्ह्येन्यलोपश्च ॥ ३६ ॥ जह्नुः ॥ ३६ ॥

(२९) स्तनयति शब्दयतीति स्तनयित्नुः । मेघो विद्युद्वा । हर्षय-
 तीति हर्षयित्नुः । हर्षयिता । सुवर्णं वा । पोषयतीति पोषयित्नुः । पोष-
 यिता । गादयतीति गदयित्नुः । वावटूको वा । मादयतीति मदयित्नुः ।
 मदिरा वा । अत्र सर्वत्र अयामन्तात्वायेत्नु० इति सूत्रेण णेरयादेशः ॥

(३०) करोतीति कृत्नुः । शिल्पो वा । यो हन्ति येन वा स हत्नुः ।
 व्याधिः शास्त्रं वा ॥

(३१) गमयति शरीराणीति जिगत्नुः प्राणो वा ॥

(३२) ददातीति दानुः । दानशीलो ब्रुद्ध्यादिविचक्षणो वा । भाति
 दीप्यतेऽसौ भानुः सूर्यः प्रकाशः किरणो वा । स्वर्भानू राहुः । चित्रभानुः
 सूर्योऽग्निर्वा । बृहद्भानुरग्निः ॥

(३३) वक्तीति वग्नः । वाचालो वा ॥

(३४) धर्यान्ति पिबन्ति यस्यः सा धेनुः । नवप्रसूता गौर्वा । कनि सति
 धेनुका हरितनी वा ॥

(३५) सूयत उत्पद्यतेऽसौ सूनः । अनुजः पुत्रः सूर्यो वा ॥

(३६) जहाति दोषानिति जह्नुः । कश्चिद्वाजर्षिर्वा ॥

स्थो णुः ॥ ३७ ॥ स्थाणुः ॥ ३७ ॥

अजिवृरीभ्यो निच्च ॥ ३८ ॥ वेणुः । वर्णुः । रेणुः ॥ ३८ ॥

विषेः किच्च ॥ ३९ ॥ विष्णुः ॥ ३९ ॥

कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः ॥ ४० ॥ कर्कः । दाकः । धाकः ।
राका । अर्कः । कल्कः ॥ ४० ॥

सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक् ॥ ४१ ॥ सृकः । वृकः । भूकम् ।
शुष्कः । मुष्कः ॥ ४१ ॥

(३७) तिष्ठतीति स्थाणुः शुष्कवृक्षो निश्चलो वा ॥

(३८) अजति गच्छति प्रक्षिपति वा स वेणुः । वंशो राजविशिषो वा ।
वियते सम्भजतीति वर्णुः । गदो देशभेदो वा । रिणाति गच्छति हिनस्ति
हन्यते वा स रेणुः । धूलिः । सुरेणुः सुवर्णरजः । त्रसरेणुः सुरेणुर्वा ॥

(३९) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगदिति विष्णुर्जगदीश्वरः ॥

(४०) बहुलवचनान्न ककारस्येत्सञ्ज्ञा । करोतीति कर्कः । अग्निः
शुक्लाश्वो दर्पणो घटो वा । ददातीति दाकः । यजमानो वा । दधातीति
धाकः । आधारोऽनङ्गान् वा । राति ददातीति राका । पौर्णमासो नदीभेदो
वा । अर्चयतीत्यर्कः । अर्कपर्णं स्फटिकं सूर्यो वा । कलते शब्दयतीति कल्कम् ।
दम्भः क्लिष्टं वा । बाहुलकात्—रमतेऽसौ रञ्जकः कृपणो मन्दो वा ।
कपिलकादित्वाल्लत्वे कृते । लङ्का दुष्टनगरी वृक्षशाखा पुंश्चलो वा ॥

(४१) सरतीति सृकः वाणो वज्रं वायुस्तपलं वा । वृणोतीति वृकः
काकः श्वापदो वा । वृक एव वार्कण्यः । भवतीति भूकम् । छिद्रं कालो
वा । शुष्यतीति शुष्कः । नीरसो वा । मुष्यत आव्रियत इति मुष्कः अण्ड-
कोषः सङ्घातो वा । मुष्कोऽस्यास्तीति मुष्करः । बाहुलकादवति रक्षण-
हेतुर्भवतीत्योकः । राशिः स्थानं वा । मूर्च्यते बध्यतेऽसौ मूकः । वचनवर्जितो
वा । रेफवकारयोर्लोपः ॥

शुकवल्कोल्काः ॥ ४२ ॥

इण्भीकापाश्ल्यतिमर्चिभ्यः कन् ॥ ४३ ॥ एकः । भेकः ।

काकः । पाकः । शल्कम् । अत्कः । मर्कः ॥ ४३ ॥

नौ हः ॥ ४४ ॥ निहाका ॥ ४४ ॥

नौ सदेर्डिच्च ॥ ४५ ॥ निष्कः ॥ ४५ ॥

स्यमेरीट् च ॥ ४६ ॥ स्यमीका । स्यमिकः ॥ ४६ ॥

अजियुधुनीभ्यो दीर्घश्च ॥ ४७ ॥ वीकः । यूका । धूकः ।

नीकः ४७ ॥

(४२) शुकादयः कप्रत्ययान्ता निपाताः । शोभतेऽसौ शुकः पक्षि-
जातिर्यासपुत्रो वा । बलते संवृणोति येन तत् वल्कलं वा । ओषति दहतीति
उल्का । विद्युदग्नेर्ज्वाला वा । षकारस्य लत्वम् ॥

(४३) एति प्राप्नोतीत्येकः । मुख्योऽन्यः केवलो वा । यो विभेति
यस्माद्वा स भेकः । मण्डूको मेघो वा । कायति शब्दयतीति काकः । वायसे
वा । पिबत्यसाविति पाकः शिशुर्वृद्धो वा । श्ल्यति गच्छति श्ल्यते वा
तत् शल्कम् वल्कलं वा । अतति निरन्तरं गच्छतीत्यत्कः । पथिकः शरी-
रावयवो वा । मर्च इति सौचो धातुः मर्चति चेष्टतेऽसौ मर्कः । शरीरवायुर्वा ।
बाहुलकात्—श्यतीति शाकम् । स्यतीति साकं वा ॥

(४४) नितरां जहाति त्यजतीति निहाका । गोधिका वा ॥

(४५) निषोदतीति निष्कः । परिमाणभेदो वा ॥

(४६) स्यमति शब्दयतीति स्यमीकः । वल्मीको वृक्षभेदो वा ।
चकारादिडागमे स्यमिकः ॥

(४७) अजति गच्छतीति वीकः । वायुः पक्षो वा । यौतीति यूका ।
शिरः केशजन्तुर्वा । धूनीति कम्पयतीति धूकः । वायुर्वा । नयतीति नीकः ।
वृक्षविशेषो वा ॥

ह्रियो रश्च लो वा ॥ ४८ ॥ ह्रीका । ह्लीका ॥ ४८ ॥
शकेरुनोन्तोन्त्युनयः । ४९ ॥ शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः ।
शकुनिः ॥ ४९ ॥

भुवो भिच् ॥ ५० ॥ भवन्तिः ॥ ५० ॥
कन्युच् क्षिपेश्च ॥ ५१ ॥ क्षिपण्युः । भुवन्युः ॥ ५१ ॥
अनुङ् नदेश्च ॥ ५२ ॥ नदनुः । क्षिपणुः ॥ ५२ ॥
कृवृदारिभ्य उनन् ॥ ५३ ॥ करुणा । वरुणः । दारु-
णम् ॥ ५३ ॥

(४८) जिह्रेति लज्जां करोतीति ह्रीका ह्लीका लज्ज वा ॥

(४९) उन, उन्त, उन्ति, उनि, इत्येते प्रत्यया भवन्ति । शक्नो-
तीति शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः । पक्षिनामानि वा ॥

(५०) भवन्ति पदार्था यस्मिन् स भवन्तिः । वर्तमानकालो वा ।
कामयतेऽसौ कुन्तिः । स्त्रियां कुन्तो । धातोः कुरादेशः प्रत्ययादिलोपश्च ।
अवतीति, अवन्तिः । राजा वा । वदतीति वदन्तिः । कोलाहलो वा ।
किं वदन्तो जनश्रुतिः । कुन्त्यादयो बाहुलकादेव भवन्ति ॥

(५१) चाद् भुवः । क्षिप्यति प्रेरयतीति क्षिपण्युः । वसन्त ऋतुर्वा ।
भवतीति भुवन्युः । स्वामी सूर्यो वा ॥

(५२) चात् क्षिपेः । नदत्यव्यक्तं शब्दं करोतीति नदनुः मेघो वा ।
क्षिप्यतीति क्षिपणुः वायुर्वा ॥

(५३) किरति विक्षिपति दुर्गुणमिति करुणः । वृक्षभेदो वा । करुणा
कृपा वा । करुणा शीलमस्येति कारुणिकः । वृणोति विनियते वाऽसौ वरुणः ।
उत्तमं जलं वृक्षभेदो वा । दारयति यत् येन वा तद्धारुणं भीषणं वा ॥

त्रो रश्च लो वा ॥ ५४ ॥ तरुणः । तलुनः ॥ ५४ ॥
 क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित् ॥ ५५ ॥ क्षुधुनः । पिशुनः ।
 मिथुनम् ॥ ५५ ॥
 फलेर्गुक् च ॥ ५६ ॥ फल्गुनः ॥ ५६ ॥
 अशोर्लशश्च ॥ ५७ ॥ लशुनम् ॥ ५७ ॥
 अर्जेर्णिलुक् च ॥ ५८ ॥ अर्जुनः ॥ ५८ ॥
 तृणाख्यायां चित् ॥ ५९ ॥ अर्जुनम् ॥ ५९ ॥
 अर्त्तेश्च ॥ ६० ॥ अरुणः ॥ ६० ॥
 अजियमिशीङ्भ्यश्च ॥ ६१ ॥ वयुनम् । यमुना । शयुनः ॥ ६१ ॥

(५४) उनन् । तरतीति तरुणः । तलुनः । युवा वृक्षभेदो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीप् तरुणो तलुनो वा युवतो ॥

(५५) क्षुध्यति भोक्तुमिच्छतीति क्षुधुनः । स्नेच्छजातिर्वा । पिशत्यवयवं करोतीति पिशुनः खलः सूचको वा । मेथति जानाति ज्ञायते हिनस्ति वा तन्मिथुनम् । द्वयोः संयोगो राशिर्वा ॥

(५६) फलति निष्पन्नो भवतीति फल्गुनः शुक्लो वा ॥

(५७) उनन् । अश्न्यते भुज्यते यतल्लशुनम् । औषधरूपः कन्दो वा ॥

(५८) उनन् अर्जयतीत्यर्जुनः । शुक्लो मयूरो वृक्षभेदो वा । अर्जुनो । सौरभेयो ॥

(५९) अर्जयति यतदर्जुनं तृणम् । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

(६०) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुणः सूर्यः कुष्ठं रक्तं वा ॥

(६१) वीयते गम्यतेऽचेति वयुनम् । मन्दिरं वा । यच्छतीति यमुना । नदीभेदो वा । शेतेऽसौ शयुनः । अजगरो वा ॥

वृत्तृवदिवचिवसिह्निकमिकपिभ्यः सः ॥६२॥ वर्षम् । तर्पः ।
वत्सः । वक्षः । वत्सम् । हंसः । कंसः । कक्षम् ॥६२॥

प्लुषेरञ्चोपधायाः ॥ ६३ ॥ प्लक्षः ॥ ६३ ॥

मनेर्दीर्घश्च ॥ ६४ ॥ मांसम् ॥ ६४ ॥

अशोर्देवने ॥ ६५ ॥ अक्षः ॥ ६५ ॥

स्नुवृश्चिकृत्यृषिभ्यः कित् ॥६६॥ स्नुषा । वृक्षः । कृत्सम् ।
क्रक्षम् ॥ ६६ ॥

(६२) वृणाति स्वीकरोतीति वर्षम् । मंशत्सरो वृष्टिरार्यावर्तौ मेघौ वा । स्त्रियां
बहुवचनान्तो वर्षाः प्रावृषि ऋतौ । तर्पति येन यत्नं वा स तर्पः । समुद्रो वा । वद-
तीति वत्सः । बालो वा वक्तव्यस्मिन्निति वक्षः । वक्षः स्थलं वा । वसत्यस्मिन्निति
वत्सम् । निवासस्थानं वा । हन्तीति हंसः । निर्लोभः सूर्यः पक्षिभेदो श्वभेदः शरी-
रस्थो वायुर्वा । कामयते परपदार्थान्निति कंसः । तैजसद्रव्यं पाचं तस्करो वा ।
कपति हिनस्तीति कक्षम् । तृणं लतावनसमीपं बाहुमुलं वा । बाहुलकात्-राजते
दीप्यते सा राजा लाक्षा । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । यौतीति योषा स्त्री वा ॥

(६३) प्लोषति दहतीति प्लक्षः । पिप्पलं पर्कटी वा । पाकरि
इति प्रसिद्धा । द्वीपभेदो गृहस्य द्वारपार्श्वे वा ॥

(६४) मन्यते ज्ञायतेऽनेन तन्मांसम् । शरीरोपचयो वा ॥

(६५) अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षः । अक्षाणीन्द्रियाणि तुषं चक्रं शकटं
व्यवहारो वा ॥

(६६) स्नौति प्रस्रवतीति स्नुषा । यवीयसो भ्रातृभार्या वा । वृश्च्यते
छिद्यतेऽसौ वृक्षः । वृक्षवरण इत्यस्मादपोगुपधात् के प्रत्यये वृक्षइतिसिध्यति ।
अर्थभेदायात्र वृश्चग्रहणं तेन छेद्यत्वात् कार्यं जगदपि वृक्ष उच्यते ।
कृन्तति छिनतीति कृत्समुदकम् । ऋपति गच्छतीति ऋक्षम् । नक्षत्रसा-
मान्यं वा । बाहुलकात्-समन्तान्मेपति हिनस्तीत्यामिक्षा । क्षीरविकारो
वा । लिश्यतेऽल्पाभवतीति लिक्षा । शिरः केशजन्तुर्वा । रोहति बीजा-
ज्जायतेऽसौ रुक्षः । वृक्षजातिः प्रीतिहीनो वा ॥

ऋपेर्जातौ ॥ ६७ ॥ ऋक्षः ॥ ६७ ॥

उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च ॥ ६८ ॥ उत्सा । गुत्सः । कुक्षः ॥ ६८ ॥

गृधिपण्योर्दकौ च ॥ ६९ ॥ गृत्सः ॥ पक्षः ॥ ६९ ॥

अशोः सरन् ॥ ७० ॥ अक्षरम् ॥ ७० ॥

वसेश्च ॥ ७१ ॥ वत्सरः ॥ ७१ ॥

संपूर्वाच्चित् ॥ ७२ ॥ संवत्सरः ॥ ७२ ॥

कृधूमदिभ्यः कित् ॥ ७३ ॥ कृसरः । धूसरः । मत्सरः ॥ ७३ ॥

पतेरश्च लः ॥ ७४ ॥ पत्सलः ॥ ७४ ॥

(६७) ऋपति गच्छतीति ऋक्षः । मृगजातिभेदो भल्लूकः । पूर्वसूच्येण सिद्धे जातिनियमाद्यौगिके ऋषधातोः पः प्रत्ययो वा ॥

(६८) उनति क्रियतीत्युत्सः । जलस्रवणस्थानमृषिर्वा । गुध्नाति रोषं करोतीति गुत्सः । हारभेदः पुष्पगुम्फो वा । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुक्षः । जटरस्थानं वा ॥

(६९) चित् गृध्यति अभिकाङ्क्षतीति गृत्सः । कामो वा । गकारस्य भष्भावनिवृत्त्यर्थो दकारादेशः । पणायति स्तौति व्यवहरति वा येन यत्र वा स पक्षः । मामार्द्धः पार्श्वभागः साध्यविरोधः समूहो बलं मित्रसहायो वा ॥

(७०) अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षरम् । ब्रह्म वर्णो मोक्ष उदकं वा ॥

(७१) वसन्त्यस्मिन्निति वत्सरः । वर्षो वा ॥

(७२) चित्वादन्तोदात्तस्वरः । सम्यग्वसन्त्यत्र स संवत्सरः ॥

(७३) यः करोति क्रियते वा स कृसरः । तिलौदनं मिश्रं वा । धूनातीति धूसरः । ईषत्यागदुरो वा । माद्यतीति मत्सरः । असह्यपरसंपत्तिर्जनः कृपणः क्रुद्धो वा । मत्सरा मत्तिका वा ॥

(७४) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पत्सलः । पन्था वा ॥

तन्यृषिभ्यां क्सरन् ॥ ७५ ॥ तसरः । ऋक्षरः ॥ ७५ ॥
 पीयुक्कणिभ्यां कालन् ह्रस्वं सम्प्रसारणञ्च ॥ ७६ ॥ पियालः ।
 कुणालः ॥ ७६ ॥
 कठिकुषिभ्यां काकुः ॥ ७७ ॥ कठाकुः । कुषाकुः ॥ ७७ ॥
 सत्तेर्दुक् च ॥ ७८ ॥ मृदाकुः ॥ ७८ ॥
 वृतेर्वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ वार्त्ताकुः । वार्त्ताकम् ॥ ७९ ॥
 पदेर्नित्संप्रसारणमलोपश्च ॥ ८० ॥ पृदाकुः ॥ ८० ॥
 म्र्युवचिभ्योऽन्युजागूजक्रुचः ॥ ८१ ॥ सरण्युः । यवागूः ।
 वचक्रुः ॥ ८१ ॥
 भ्रानकः शीङ्भियः ॥ ८२ ॥ शयानकः । भयानकः ॥ ८२ ॥

(७५) तनोतीति तसरः । सूत्रवेष्टनो वा । ऋषति प्राप्नोति वा स
 ऋक्षरः । ऋत्विग्वा ॥

(७६) पीयुः मौचो धातुः पीयति तर्पयतीति पियालः । वृक्षभेदे वा ।
 चिरोंजी इति प्रसिद्धा । कृणाति शब्दं करोतीति कुणालः । देशभेदे वा ।
 बाहुनकात्—भजतीति भगालम् । नरमस्तकं वा । कुत्वं च ॥

(७७) कठतीति कठाकुः पक्षी वा । कुषति निष्कर्षतीति कुषाकुः । अग्निः सूर्यो वा ॥

(७८) सरतीति मृदाकुः । वायुर्वा । सरन्त्यापोऽस्यामिति मृदाकुर्नदी ॥

(७९) वर्ततेऽमौ वार्त्ताकुः । हिङ्गुली । वृन्ताक इति प्रसिद्धम् । बाहु-
 लकादुकारस्य अ, ई भवतः । वार्त्ताकम् । वार्त्ताकी वा ॥

(८०) पर्दते कुतिसत्तं शब्दं करोतीति पृदाकुः । व्याघ्रः मर्षा वा ॥

(८१) सरतीति सरण्युः । मेषो वायुर्वा । यौति मिश्रयतीति यवा-
 गूः । दुग्धे पक्ववचूर्णं वा । वक्तोति वचक्रुः वाचालः प्राज्ञो वा ॥

(८२) श्रैतेऽमौ शयानकः । अजगरो वा । बिभेत्यस्मादिति भयानको भयप्रदः ॥

आएको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः ॥ ८३ ॥ लवाणकः । धवा-
णकः । शिङ्घाणकः । धाणकः ॥ ८३ ॥

उल्मुकदर्विहोमिनः ॥ ८४ ॥

ह्रियः कुक् रश्च लो वा ॥ ८५ ॥ ह्रीकुः । ह्लीकुः ॥ ८५ ॥

हसिमृग्रिण्वामिदमिलूपधूर्विभ्यस्तन् ॥ ८६ ॥ हस्तः । मर्तः ।
गर्तः । एतः । वातः । अन्तः । दन्तः । लोतः । पोतः । धूर्तः ॥ ८६ ॥

(८३) लुनाति येन तल्लवाणकम् । दाचं वा । धूनोतीति धवाणकः ।
वायुर्वा । शिङ्घाति समन्ताज्जिघ्रतीति शिङ्घाणकः । श्लेष्मा वा ।
बाहुलकात्—ककारलोपे शिङ्घाणम् । काचपाचं लोहनामिकयोर्मलं वा ।
दधाति धीयते वा स धाणकः । व्यवहारयोग्यद्रव्यभागा वा ॥

(८४) ओपति दहतीत्युल्मुकम् । ज्वलदङ्गारो वा । मुकप्रत्ययो धातोः
पकारस्य लत्वम् । दृणाति विदारयति येन स दर्विः । परिषेपणपाचं वा ।
विन् प्रत्ययः । जुहोतीति होमी । यजमानो वा । अन्नं मिन्प्रत्ययः ॥

(८५) जिह्नेति लज्जां करोतीति ह्रीकुर्लज्जावान् । ह्रीकुः ।
जतुचपुणो लाक्षादिर्वा ॥

(८६) हसतीति हस्तः । नक्षत्रं करो वा । हस्तोऽस्यास्तीति हस्तो ।
म्रियतेऽसौ मर्तः । मनुष्यो वा । मर्त एव मर्त्यः स्वार्थे यत् । गिरति निग-
लति स गर्तः । अवटः पतनस्थानं वा । एति प्राप्नोति यं स एतः ।
विचित्रवर्णो वा । स्त्रियां, एनो एता । वातीति वातः । वायुर्व्याधिर्वा ।
अमति गच्छतीति, अन्तः । नाशः समीपं तत्त्वस्वरूपं मनोहरं वा । दाम्य-
त्युपशाम्यति यो येन वा स दन्तः । दशनो वा । शोभना दन्ता यस्याः
सा मुदती युवतिः । दन्तावलो दन्तुरो वा हस्तो । लुनातीति लोतः ।
अश्रुश्चिन्हं वा । पुनातीति पोतः । बालो बह्वित्री वा । धूर्वतीति धूर्तः ।
शटे लवणं धतूरं वा । बाहुलकात्—तोसति शब्दयतीति तूस्तम् । पापं
जटा वा । तूस्तं करोति तूस्तयति । छपति छिनतीति छातः । दुर्बलो
वा । अभितो स्नायतीति, अभिस्नातः । हर्षक्षीणो वा ॥

नञ्याप इट् च ॥ ८७ ॥ नापितः ॥ ८७ ॥

तनिमृङ्भ्यां किञ्च ॥ ८८ ॥ ततम् । मृतम् ॥ ८८ ॥

अञ्चिघृसिभ्यः क्तः ॥ ८९ ॥ अक्तम् । घृतम् । सितम् ॥ ८९ ॥

दुतनिभ्यां दीर्घश्च ॥ ९० ॥ दूतः तातः ॥ ९० ॥

जेर्मूट् चोदात्तः ॥ ९१ ॥ जीमूतः ॥ ९१ ॥

लोष्टपलितौ ॥ ९२ ॥

(८७) नाप्नोति सत्कर्माणीति नापितः । केशच्छेदको वा ॥

(८८) तनोतीति ततम् । वीणादिकं वाद्यं वा । म्रियते येन तन्मृ-
तम् । याचितं भैक्ष्यं वा ॥

(८९) यदन्क्ति प्रकटीकरोति तदक्तम् । व्याघ्रः परिमितं वा ।
जिघर्ति सञ्चलति दीप्यते वा तत्, घृतम् । उदकं सर्पिः प्रदीप्तं वा ।
सिनोति बध्नातीति सितम् । शुक्रं वा । बहुलवचनात्—हूर्च्छति कुटिलं
भवतीति मुहूर्तम् । घटिकाद्वयकालो वा । धातोर्मुडागमे राल्लोप इति
ल्लोपः । ऋच्छत्यात्मानं प्राप्नोतीति ऋतम् । यथार्थं वा । वसति यचेति
वस्तम् । स्थानं वा ॥

(९०) दवति गच्छति दुनोत्युपतपति वा स दूतः । बहुकार्यसा-
धको राजभृत्यो वा । स्त्रियां दूतो । तनोति कार्याणीति तातः । पिता
वा । बाहुलकात्—स्यति कर्मसमाप्तिं करोतीति सीता चञ्चे हलेन कृता
रेखा स्त्रीविशेषो वा ॥

(९१) धातोर्दीर्घः प्रत्ययस्य मूढुदात्तत्वं च । यो जयति येन
वा । स जीमूतः । मेघः पर्वतो वा ॥

(९२) लोष्टे सङ्घातो भवतीति लोष्टम् । मृत्पिण्डो वा । पल्यते
प्राप्यते तत् पलितम् । वृद्धावस्थया केशादीनां शुक्लत्वं वा ॥

हृश्याभ्यामितन् ॥ ९३ ॥ हरितः । श्येतः ॥ ९३ ॥
 रुहेरश्च लो वा ॥ ९४ ॥ रोहितः । लोहितम् ॥ ९४ ॥
 पिशोः किञ्च ॥ ९५ ॥ पिशितम् ॥ ९५ ॥
 श्रुदक्षिस्पृहियृहिभ्य आय्यः ॥ ९६ ॥ श्रवाय्यः । दक्षाय्यः ।
 स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यः ॥ ९६ ॥
 दधातेर्दित्वमित्वं षुक् च ॥ ९७ ॥ दधिपाय्यः ॥ ९७ ॥
 वृत्र एण्यः ॥ ९८ ॥ वरेण्यः ॥ ९८ ॥
 स्तुवः केय्यश्छन्दसि ॥ ९९ ॥ स्तुवेय्यम् ॥ ९९ ॥
 राजेरन्यः ॥ १०० ॥ राजन्यः ॥ १०० ॥

(९३) हरतीति हरितः । वर्णभेदे वा । श्यायति गच्छतीति श्येतः ।
 श्यामवर्णो वा । स्त्रियां हरिणी । हरिता । श्येनी श्येता ॥

(९४) रोहति प्रादुर्भवतीति रोहितः । मृगमत्स्ययोर्भेदे रोहितं
 रुधिरं वा । लोहितोऽङ्गारको रुधिरम् रक्तवर्णो वा ॥

(९५) पिश्यते ऽवयवरूपं क्रियते तत् पिशितं मांसं वा ॥

(९६) आवयतीति श्रवाय्यः । दानपशुर्वा । दत्तयति वर्धतेऽसौ दक्षाय्यः ।
 गृध्रो वा । स्पृहयतीति स्पृहयाय्यः । अभीप्सुर्नक्षत्रं वा । गर्हयति पदार्थान्
 गृह्णातीति गृहयाय्यः । गृहस्वामी वा । आय्यप्रत्यये शेरयादेशः ॥

(९७) दधिम्यति समापयतीति दधिपाय्यो घृतम् । निपातनात् पत्वम् ॥

(९८) व्रियते स्वीक्रियतेऽसौ वरेण्यः । श्रेष्ठो वा ॥

(९९) स्तूयतेऽसौ स्तुवेय्यः पुरन्दरो वा । कमेय्य इति पाठान्तरं
 तदा स्तुपेय्यः ॥

(१००) राजते दीप्यतेऽसौ राजन्यः । अग्निर्वा । क्षत्रियजातौ तु
 राज्ञोऽपत्यं राजन्यः । तत्रान्त्यस्वरितः ॥

शृग्म्योश्च ॥ १०१ ॥ शरण्यम् । रमण्यम् ॥ १०१ ॥

अर्त्तेर्निञ्च ॥ १०२ ॥ अरण्यम् ॥ १०२ ॥

पर्जन्यः ॥ १०३ ॥

वदेरान्यः ॥ १०४ ॥ वदान्यः ॥ १०४ ॥

अमिनक्षियजिबधिपतिभ्योऽत्रन् ॥ १०५ ॥ अमत्रम् । नक्ष-
त्रम् । यजत्रम् । बधत्रम् । पतत्रम् ॥ १०५ ॥

गडेरादेश्च कः ॥ १०६ ॥ गडत्रम् । कलत्रम् ॥ १०६ ॥

वृत्रश्चित् ॥ १०७ ॥ वरत्रा ॥ १०७ ॥

(१०१) शृणाति हिनस्तीति शरण्यम् । अज्ञानं वा । रमतेऽस्मिंस्त-
द्रमण्यम् । गृहं वा ॥

(१०२) ऋच्छन्ति गृहाद् गच्छन्ति यत्र तदरण्यम् । वनं वा ।
महदरण्यमरण्यानी ॥

(१०३) पर्षति सिञ्चतीति पर्जन्यः । मेघः समर्थो वा । निपातनात्-
षकारस्य जकारः ॥

(१०४) उद्यते वदतीति वा स वदान्यः । वाग्मी त्यागी वा ॥

(१०५) अमति प्राप्नोति यत्र तत् अमत्रम् पात्रं वा । नक्षति गच्छतीति
नक्षत्रम् । तारका वा । इज्यते यजति वा तद् यजत्रम् । अग्निहोत्रं होता
वा । बधोति हिनः स्थाने बधादेशो निपात्यते । हन्ति येन तद् बधत्रम् ।
आयुधं वा । पतति गच्छति येन तत्पतत्रम् वाहनं लोमानि वा ॥

(१०६) गडति सिञ्चतीति गडत्रम् । बाहुलकादुस्य लः । कल-
त्रम् । कटिभागो भार्या वा ॥

(१०७) वृणोत्युद्धादिकं यया या वा सा वरत्रा चर्मरज्जुर्वा ॥

सुविदेः कत्रन् ॥ १०८ ॥ सुविदत्रम् ॥ १०८ ॥

कृतेर्नुम् च ॥ १०९ ॥ कृन्तत्रम् ॥ १०९ ॥

भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्ष्यभ्योऽतच् ॥ ११० ॥
भरतः । मरतः । दर्शतः । यजतः । पर्वतः । पचतः । अमतः । तमतः ।
नमतः । हर्ष्यतः ॥ ११० ॥

पृषिरञ्जिभ्यां कित् ॥ १११ ॥ पृषतः । रजतम् ॥ १११ ॥

खलतिः ॥ ११२ ॥

(१०८) सुष्ठु विद्यते तत् सुविदत्रम् कुटुम्बं वा ॥

(१०९) कृन्तति छिनति येन तत्कृन्तत्रम् । लाङ्गलं वा ॥

(११०) भरति पुष्पातीति भरतः । राजभेदे नटो रामानुजो वा ।
म्रियतेऽसौ मरतः मृत्युर्वा । पश्यन्ति येन स दर्शतः । चन्द्रः सूर्यो वा ।
यजतीति यजतः । ऋत्विग्वा । पर्वति पूर्णोभवतीति पर्वतः । पर्वविद्यतेऽ-
स्मिन्निति मत्वर्थोऽयस्तकारप्रत्ययो वा । गिरिर्वा । पचति येन स पच-
तः । अग्निर्वा । अमति गच्छतीति अमतः । रेणुर्वा । ताम्यति काङ्क्ष-
तीति तमतः । तृष्णापरो वा । नमतोति नमतः नम्रो वा । हर्षयति गच्छ-
तीति हर्ष्यतः । अश्वो वा । बाहुलकात्—मलते स्वरूपं धरतीति मालती ।
उपधादीर्घो गौरादित्वान् ङीष् ॥

(१११) पृषति मिञ्चतीति पृषतः । विन्दुर्मृगो वा । रजति प्रियं
भवतीति रजतम् । रूप्यं शुक्रं वा ॥

(११२) खलति सञ्चलतीति खलतिः । निष्केशशिराः पुरुषो वा ।
धातोः सलोपः प्रत्ययान्तस्येत्वं निपातः ॥

शीङ्शपिरुगमिवश्चिजीविप्राणिभ्योऽथः ॥ ११३ ॥ शयथः ।
शपथः । रवथः । गमथः । वञ्चथः । जीवथः । प्राणथः । दरथः
शमथः । दमथः ॥ ११३ ॥

भृञ्शिवत् ॥ ११४ ॥ भरथः ॥ ११४ ॥
रुविदिभ्यां ङित् ॥ ११५ ॥ रुवथः । विदथः ॥ ११५ ॥
उपसर्गे वसेः ॥ ११६ ॥ आवसथः । संवसथः ॥ ११६ ॥
अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहि-
भ्योऽसच् ॥ ११७ ॥ अतसः । अवसः । चमसः । तमसः ।

(११३) श्येतेऽसौ शयथः । अजगरो वा । शय्यत आकुशयत इति
शेषथः । निश्चयकरणं वा । रौतीति रवथः कोकिलो वा । गच्छतीति गमथः
पथिको वा । वञ्चति प्रलम्भयतीति वञ्चथो धूर्तः । अस्य स्थाने वन्दीति
पाठान्तरे वन्दथः स्तोता स्तुत्यो वा । जीवतीति जीवथ आयुष्मान् । प्राणि-
तीति प्राणथः । बलवान् वा । बाहुलकात्-दृणातीति दरथः । दिक्षु
प्रसरणं गर्तो वा । शाम्यतीति शमथः । शान्तिः । दाम्यतीति दमथः ।
दमो वा ॥

(११४) विभर्तीति भरथः । लोकपालो राजा वा ॥

(११५) रौतीति रवथः । श्वा वा । वेतीति विदथः । योगी वा ॥

(११६) समन्ताद्वसति यत्र स आवसथः । गृहं वा । सम्यगवसन्ति
यत्र स संवसथः । ग्रामो वा ॥

(११७) अतति निरन्तरं गच्छतीत्यतसः । वायुर्वा । स्त्रियामतसो ।
अवति रक्षादिकं करोतीत्यवसः । राजा वा । चमति भक्षयति येन स
चमसः । गौरादित्वाच्चमसो । ताम्यति काङ्क्षतीति तमसः । ध्वान्तं वा ।

नमसः । रभसः । लभसः । नभसः । तपसः । पतसः ।

पनसः । पणसः । महसम् ॥ ११७ ॥

वेजस्तुट् च ॥ ११८ ॥ वेतसः ॥ ११८ ॥

वहियुभ्यां णित् ॥ ११९ ॥ वाहसः । यावसः ॥ ११९ ॥

वयश्च ॥ १२० ॥ वायसः ॥ १२० ॥

दिवः कित् ॥ १२१ ॥ दिवसम् ॥ १२१ ॥

कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच् ॥ १२२ ॥ करभः । शरभः ।

शलभः । गर्दभः ॥ १२२ ॥

नमतीति नमसः । अनुकूलं वा । रभतेऽसौ रभसः । वेगो हर्षो वा । लभते-
ऽसौ लभसः । अश्वबन्धनं वा । नभते हिनस्तीति नभसः । आकाशं वा ।
तपति तापहेतुर्भवतीति तपसः । चन्द्रमा वा । पततीति पतमः । पक्षी वा ।
पनायति स्तौतीति पनसः । कष्टकिफलं वा । महतीति महसम् । ज्ञानं वा ।
बाहुलकात्—अम्यते प्राप्यते तत्तामरसम् । कमलं वा । प्रत्ययस्य णित्वाद्
वृद्धिर्धातोश्च तुट् । स्यति कर्म समापयतीति साध्वसम् । पश्चाद् ज्ञानं वा ।
धातोर्युक् । कङ्कते चंचलं भवतीति कीकसम् । अस्थि वा । धातोः कीका-
देशः । तरतीति तरसम् । मांसं वा ॥

(११८) वयति तन्नून् संतनोतीति वेतसः । वृक्षभेदो वा ॥

(११९) वहतीति वाहसः । अजगरो वा । यौति मिश्रयत्यमिश्र-
यति वा स यावसः । तृणसन्ततिर्वा ॥

(१२०) वयते गच्छतीति वायसः काको वा ॥

(१२१) दीव्यति प्रकाशते सूर्यो यच्च तद्विवसम् । दिवसो वा । अर्द्धादिपाठाद्द्विलिङ्गः ॥

(१२२) किरति विक्षिपतीति करभः । हस्तस्य बहिर्भागो वालो
वा । शृणातीति शरभः । आरण्यानां मध्ये हिंसकविशेषपशुजातिः । शलते
गच्छतीति शलभः । पतङ्गो वा । कलते संख्यां करोति स कलभः । करि-
शावको वा । गर्दयति शब्दं करोतीति गर्दभः । खरो वा ॥

ऋषिवृषिभ्यां कित् ॥ १२३ ॥ ऋषभः । वृषभः ॥ १२३ ॥

रूपेर्निहृप् च ॥ १२४ ॥ लुषभः ॥ १२४ ॥

रासिवल्लिभ्यां च ॥ १२५ ॥ रासभः । बल्लभः ॥ १२५ ॥

जृविशिभ्यां भृच् ॥ १२६ ॥ जरन्तः । वेशन्तः ॥ १२६ ॥

रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः पिदाशिषि ॥ १२७ ॥ रोहन्तः ।

नन्दन्तः । जीवन्तः । प्राणन्तः । रोहन्ती ॥ १२७ ॥

तृभूवहिवसिभासिसाधिगडिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च ॥ १२८ ॥

तरन्तः । भवन्तः । वहन्तः । वसन्तः । भासन्तः । साधन्तः ।

(१२३) ऋषति गच्छतीति ऋषभः । वर्षतीति वृषभः । श्रेष्ठपर्यायो वलीवर्द्धो वा ॥

(१२४) रोषति हिनस्तीति लुषभः । मत्तहस्ती वा ॥

(१२५) रासति शब्दयतीति रासभः । खरो वा । बल्लते संवृणोतीति बल्लभः प्रियो वा ॥

(१२६) प्रत्ययादिभकारस्य भोऽन्त इत्यन्तादेशः । जीर्यति स जरन्तः । महिषो वा । विशति प्रवेशं करोतीति वेशन्तः अल्पजलाशयो वा । बाहुलकात्—अर्हति पूज्यो भवतीति, अर्हन्तः ॥

(१२७) रोहतीति रोहन्तः । वृक्षभेदो वा । नन्दति समृद्धियुक्तो भवतीति नन्दन्तः । पुत्रो वा । यो जीवति स जीवन्तः । औषधं वा । प्राणिति श्वासप्रश्वासान् प्रवर्तयति स प्राणन्तः । वायुर्वा । पित्वात् स्त्रियां ङीप् । प्राणन्तो । रोहन्तो । नन्दन्तो । जीवन्तो ॥

(१२८) भृच् । यस्तरति येन यच्च वा स तरन्तः समुद्रस्तरन्तो नौका वा । यो भवतीति यत्र वा स भवन्तः । कानो वा । वहति कार्याणि प्रापयतीति वहन्तः वायुर्वा । यो वसति यत्र वा स वसन्तः ऋतुभेदो वा । भासयते दीप्यतेऽसौ भासन्तः । सूर्यो वा । साध्नीति कार्याणीति साधन्तः । भिक्षुको वा ।

गण्डयन्तः । मण्डयन्तः । जयन्तः । नन्दयन्तः ॥ १२८ ॥

हन्तेर्मुट् हि च ॥ १२९ ॥ हेमन्तः ॥ १२९ ॥

भन्देर्नलोपश्च ॥ १३० ॥ भदन्तः । १३० ॥

ऋच्छेररः ॥ १३१ ॥ ऋच्छरः । १३१ ॥

अक्तिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित् ॥ १३२ ॥ अररः ।

कमरः । भ्रमरः । चमरः । देवरः । वासरः । १३२ ॥

गण्डयति सेचयतीति गण्डयन्तः । मेघो वा । मण्डयति शोभितं करोतीति मण्डयन्तः । भूषणं वा । जयतीति जयन्तो जयशोभः । स्त्रियां जयन्तो पुष्पभेदो वा । विजयन्तः कश्चिद्राजविशेषस्तस्य प्रासादो वैजयन्तः । वैजयन्तो पताका । नन्दन्ति येन स नन्दन्तः । आनन्दकरो वा । अतः पूर्वसूचेऽपि नन्दिः पठितः । अत्र पुनर्यहणमनाशिष्यपि यथा स्यात् ॥

(१२६) यो हन्ति शीतेन स हेमन्तः । ऋतुभेदो वा ॥

(१३०) भन्दते कल्याणं करोतीति भदन्तः प्रव्रजितो वा ॥

(१३१) ऋच्छति गच्छति स ऋच्छरः । ऋच्छरा वेश्या वा । बाहुलकात्—वदतीति वदरम् । वदर्याः फलं वा । कन्दति वैकल्यं करोतीति कदरः श्वेतखदिरो वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे गौरादित्वान् ङीप् कदलो । कदरो । वदरो । मन्दरकन्दरशीकरकोटरश्वरसमरवर्वरवर्करकर्परपिङ्गराम्बराडम्बरजर्जरकर्करनखरतोमरप्रभृतयोऽपि—अप्रत्ययान्ता बहुलवचनादेव साधनीयाः ॥

(१३२) ऋच्छति गच्छति यतः स अररः । कपाटो वा । कामयतेऽसौ कमरः । कामुको वा । भ्राम्यतीति भ्रमरः षट्पदः । कामुको वा । चमति भक्षयतीति चमरः । मृगभेदो वा । गौरादित्वात् स्त्रियां ङीष् । चमरो सुरा गौः । चमर्या अयं चामरो बालसमूहः । दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवरः । विधवाया द्वितीयः पतिः पत्युः कनिष्ठभ्राता । वासयतीति वासरः मङ्गलादिवारो वा ॥

कुवः करन् ॥ १३३ ॥ कुररः । १३३ ॥

अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन् ॥ १३४ ॥ अङ्गारः । मदारः ।
मन्दारः ॥ १३४ ॥

गडेः कड च ॥ १३५ ॥ कडारः । १३५ ॥

शृङ्गारभृङ्गारौ ॥ १३६ ॥

कञ्जमृजिभ्यां चित् ॥ १३७ ॥ कञ्जारः । मार्जारः । १३७ ॥

कमेः किदुच्चोपधायाः ॥ १३८ ॥ कुमारः ॥ १३८ ॥

(१३३) कौति शब्दयतीति कुररः । पक्षिभेदो वा ।

(१३४) अङ्गति गच्छति स अङ्गारः । निर्धूमोऽग्निर्भूमिविकारो वा ।
माद्यति मतो भवतीति मदारः । वराहो वा । मन्दते स्तौतीति मन्दारः ।
निम्बतसरर्कवृक्षो वा । बाहुलकान्मन्दधातोरारुप्रत्ययोऽपि भवति । मन्द-
तेऽसौ मन्दारः । निम्बाकौ वा ॥

(१३५) गडति सिञ्चतीति कडारः । पीतवर्णो वा ॥

(१३६) शृणाति हिनस्तीति शृङ्गारः । हस्तिशोभा नाट्यरसो
दम्पत्योरन्योऽन्यं सम्भोगस्पृहा वा । अच धातोर्नुस् ह्रस्वादेशश्च । विभर्ति
पुष्यतीति भृङ्गारः । सुवर्णपात्रविशेषो वा । स्त्रियां भृङ्गारो कीटजाति-
भेदो वा । भर्गार इति प्रसिद्धः ॥

(१३७) कञ्जति रौतीति कञ्जारः । मयूरो व्यञ्जनं वा । मार्ष्टि
शुन्यतीति मार्जारः । विडालो वा । स्त्रियां मार्जारी ॥

(१३८) चिदनुवर्तते । कामते भोगानिति कुमारः । शिशुर्युवरा-
जो वा । कुमारक्रीडायामित्यस्मादपि पचाद्यचि कृते कुमारशब्दो व्युत्प-
द्यते तदपायान्तरमर्थभेदश्च ॥

तुषारादयश्च ॥ १३९ ॥ तुषारः । कासारः । सहारः ॥ १३९ ॥

दीडो नुट् च ॥ १४० ॥ दीनारः ॥ १४० ॥

सर्त्तेरपः षुक् च ॥ १४१ ॥ सर्षपः ॥ १४१ ॥

उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन् ॥ १४२ ॥ उपपः । कुटपः ।
दलपः । कचपम् । खजपम् ॥ १४२ ॥

कणोः सम्प्रसारणश्च ॥ १४३ ॥ कुणपम् ॥ १४३ ॥

कपश्चाक्रवर्मणस्य ॥ १४४ ॥

विटपविष्टपविशिपोलपाः ॥ १४५ ॥

(१३९) यस्तुष्यति येन वा तत्तुषारम् । हिमं वा । कामते शब्दयति निन्दति
वा स कामारः । सरमी वा । सहतीति सहारः । आस्रभेदे वा । तर्कयति
भाषतेऽसौ तर्कारः । स्त्रियां गौरादित्वात् तर्कारि । जयन्ती विशेषनता वा ॥

(१४०) दीयते जयति येन वा स दीनारः । सुवर्णाभरणं वा ॥

(१४१) सरति गच्छति स सर्षपः । कटुस्त्रिहवान् वा ॥

(१४२) ओषति दहति स उपपः । अग्निः सूर्यो वा । कुटतीति कुटपः । मान-
भाण्डं वा । दालयति विदारयतीति दलपः । प्रहारो वा । कचते बध्नातीति
कचपम् । शाकपात्रं वा । खजति मथ्नाति मथ्यत इति खजपम् । घृतं वा ॥

(१४३) कृणति शब्दं करोतीति कुणपः । शवो मृद्भेदे वा ॥

(१४४) चाक्रवर्मणस्य मते कपे सति प्रत्ययस्यादिरुदात्तः । अन्य-
मते सङ्घातस्यादुदात्तत्वम् ॥

(१४५) कपप्रत्ययान्ता निपाताः वेष्टति शब्दयति वायुनेति विटपः ।
शाखाविस्तारो वा । विशन्ति यच्चेति विष्टपम् । भुवनं वा । त्रिविष्टपः ।
मुखविशेषभोगो वा । धातौर्षकारस्य पत्वम् । प्रत्ययस्य तुट् च । त्रिवि-
ष्टप इति वा । विशन्ति यच्चेति विशिपम् । मन्दिरं वा । प्रत्ययादेरित्वम् ।
बलते संवृणोतीत्युलपम् । कोमलतृणं वा । धात्वादेः सम्प्रसारणम् ॥

वृतेस्तिकन् ॥ १४६ ॥ वर्तिका ॥ १४६ ॥

कृतिभिदिलतिभ्यः कित् ॥ १४७ ॥ कृत्तिका । भित्तिका ।
लत्तिका ॥ १४७ ॥

इष्यशिभ्यां तकन् ॥ १४८ ॥ इष्टका । अष्टका ॥ १४८ ॥

इणस्तशन्तशसुनौ ॥ १४९ ॥ एतशः । एतशाः ॥ १४९ ॥

विपतिभ्यां तनन् ॥ १५० ॥ वेतनम् । पत्तनम् ॥ १५० ॥

दृदलिभ्यां भः ॥ १५१ ॥ दर्भः । दल्भः ॥ १५१ ॥

(१४६) वर्ततेऽसौ वर्तिका पक्षिभेदो वा । यस्तु वृत्तु. धातोर्बुल्-
प्रत्यये वर्तका शब्दस्तच्च वार्तिकेनेत्वनिषेधाद्वर्तका इत्येव । तत्रोणादी-
नामव्युत्पन्नत्वाद्वर्तका व्युत्पन्न इति भेदः ॥

(१४७) कृन्ततीति कृत्तिका । नक्षत्रं वा । भिनत्तीति भित्तिका
भित्तिर्वा । लततीति लत्तिका गोधा वा ॥

(१४८) इष्यतेऽसाविष्टका । अश्नुते सा अष्टका । वैदिककर्मविशेषो
वा । बाहुलकात्—मस्यति परिणमतीति मस्तकम् । शिरो वा । दधातीति
धातकम् । स्त्रियां धातकी पुष्पभेदः ॥

(१४९) एति प्राप्नोतीति एतशः । एतशाः । एतशौ । अश्वो ब्राह्मणो
वा । एकोऽदन्तोऽपरः सान्तः ॥

(१५०) वेति प्राप्नोति खादति वा तद्वेतनम् । भृतिर्वा । वेतनेन
जीवति वैतनिकः कर्मकरः । पतति गच्छतीति पत्तनम् । नगरं वा ॥

(१५१) दृणाति विदारयतीति दर्भः । कुशो वा । दलते विशीर्णो
भवतीति दल्भः । ऋषिश्चक्रं वा ॥

अर्तिगृभ्यां भनन् ॥ १५२ ॥ अर्भः । गर्भः ॥ १५२ ॥
 इणः कित् ॥ १५३ ॥ इमाः ॥ १५३ ॥
 असिसञ्जिभ्यां क्थिन् ॥ १५४ ॥ अस्थि । सक्थि ॥ १५४ ॥
 छुपिकुषिशुषिभ्यः क्सिः ॥ १५५ ॥ छुक्षिः । कुक्षिः ।
 शुक्षिः ॥ १५५ ॥
 अशेर्नित् ॥ १५६ ॥ अक्षिः ॥ १५६ ॥
 इपेः क्सुः ॥ १५७ ॥ इक्षुः ॥ १५७ ॥
 अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः ॥ १५८ ॥ अवीः । तरीः । स्तरीः ।
 तन्त्रीः ॥ १५८ ॥

(१५२) इयति गच्छतीत्यर्भः । शिशुर्वा । अल्पोऽर्भोऽर्भकः । गिरति
 गृणात्युपदिशतीति गर्भः । जठरं तत्रस्थो वा । गर्भादप्राणिनोति तारका-
 दित्वादितच् । गर्भिताः शालयः । प्राणिनि तु गर्भिणी ॥

(१५३) एतोति इभः । हम्तो वा ॥

(१५४) अस्थिति प्रक्षिपति येन तत् अस्थि । कीकसं शरीरान्तर-
 वयवो वा । सजतीति सक्थि । ऊरुदेशो वा ॥

(१५५) प्लोषति दहतीति प्लुक्षिः । अग्निर्वा । कुष्णाति निष्कृष-
 तीति कुक्षिः । जठरं गर्भाशयो वा । शोषयतीति शुक्षिः । वायुर्वा । अन्ता-
 न्तर्गतो णिच् तस्य च पर्णशुद्धत् गिलुक् ॥

(१५६) अश्नुते व्याप्नोति विषयान् येन तदक्षि । नेचं वा ॥

(१५७) इप्यते स इक्षुः । मधु तृणं वा ॥

(१५८) अवतीति अवीः । रजस्वला स्त्री वा । तरति यया सा तरीः ।
 नौका वस्त्रादिरक्षकं भाण्डं वा । स्तृणोत्याच्छादयतीति स्तरीः । धूमो वा ।
 तन्त्रयति कुटुबं धरतीति तन्त्रीः । वीणा वा । शिलोपः ॥

यापोः किद् हे च ॥ १५९ ॥ ययीः । पपीः ॥ १५९ ॥
लक्ष्मेर्मुट् च ॥ १६० ॥ लक्ष्मीः ॥ १६० ॥

इत्युणादिषु तृतीयः पादः ॥

(१५९) याति प्रापयति स ययीः । अश्वो वा । पिबति पाति रक्ष-
तीति वा स पपीः । सूर्यश्चन्द्रो वा ॥

(१६०) लक्षयति पश्यत्यङ्कयति वा सा लक्ष्मीः । विभूतिर्वा ।
लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः । लक्ष्म्या अक्षेति पामादिपाठान्मत्वर्थो यो नः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे तृतीयः पादः ॥

वातप्रमीः ॥ १ ॥

ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यङ्गिकुयुकुशिभ्यः कन्निच्यतु-
जलिजिष्णुजिष्ठजिसन्स्यनिथिन्नल्पसासानुकः ॥ २ ॥ रत्निः ।
तन्यतुः । अञ्जलिः । वनिष्णुः । अञ्जिष्ठः । अर्पिसः । मत्स्यः ।
अतिथिः । अङ्गुलिः । कवसः । यवासः । कृशानुः ॥ २ ॥

(१) वात इव प्रमिणीति प्रक्षिपतीति वातप्रमीः । अतिशोघ्रगामी
हरिणविशेषो वा । पुंलिङ्ग एवायं शब्दः । वातप्रमीन् मृगान् । डौ तु वात-
प्रमी । अमि वातप्रमीम् । बाहुलकात्—उच्यते काम्यतेऽसौ उशो वाञ्छा
तत्कुशला नरा अस्मिन् सन्तीति उशोनरो देशः । अत्र बहुलवचनादेव
सम्प्रसारणम् ॥

(२) एभ्यो द्वादशधातुभ्यः कन्निजादयो द्वादश प्रयत्या यथासंख्यं
भवन्ति । ऋच्छति गच्छतीति रत्निः । बहुमुष्टिहस्तो वा । प्रसृताङ्गुलि-
रत्निः । तनु—यतुच् । तनोति विस्तृणीतीति तन्यतुः । वायूरातिर्वा । अञ्ज-
अलिच् । अनक्ति घ्यक्तं करोतीति, अञ्जलिः । संयुतौ करौ वा । वनु-
इष्णुच् । वनोति याचतेऽसौ वनिष्णुः । अपानवायुर्वा । अञ्जु—इष्टुच् ।
अनक्ति प्रकटयति पदार्थानिति, अञ्जिष्ठः । सूर्यो वा । अर्पि—इसन् ।
अर्पयतीति, अर्पिसः । अग्रमांसं वा । माद्यति हृष्यतीति मत्स्यः । मीनो
वा । अत—इथिन् । अतति निरन्तरं गच्छति भ्रमतीत्यतिथिः । अकस्मा-
दागतः सञ्जनो वा । न विद्यतेनियता तिथिरस्येति व्युत्पत्त्यनन्तरम् । स्त्रियां
कृदिकारादक्तिन इति ङीप् । अतिथी स्त्री । अङ्गि—उलि । अङ् गति चेष्ट-
तेऽमेन मोङ्गुलिः । कणशाखा वा । कु—अस । कौति वा कवत इति कवसः ।
कण्टकजातिर्वा । अच इति पाटान्तरम् । तदा कवत इति कवचम् । यौति
मिश्यतीति यवासः । कण्डकवृक्षभेदो वा । कृषति तनूकरोतीति कृशा-
नुः । अग्निर्वा ॥

श्रः करन् ॥ ३ ॥ शर्करा ॥ ३ ॥
 पुषः कित् ॥ ४ ॥ पुष्करम् ॥ ४ ॥
 कलँश्च ॥ ५ ॥ पुष्कलम् ॥ ५ ॥
 गमेरिनिः ॥ ६ ॥ गमी ॥ ६ ॥
 आङि णित् ॥ ७ ॥ आगामी ॥ ७ ॥
 भुवश्च ॥ ८ ॥ भावी ॥ ८ ॥
 प्रे स्थः ॥ ९ ॥ प्रस्थायी ॥ ९ ॥
 परमे कित् ॥ १० ॥ परमेष्ठी ॥ १० ॥
 मन्थः ॥ ११ ॥ मन्थाः । मन्थानौ ॥ ११ ॥

(३) शृणातीति शर्करा । खण्डविकारी मृद्विकारी वा ॥
 (४) पुष्णातीति पुष्करम् । अन्तरिक्षं कमलमुदकं वा ॥
 (५) पुष धातोः कलनपि । पुष्यतीति पुष्कलम् पूर्णं वा ॥
 (६) गमिष्यतीति गमी पथिको वा । भविष्यति गम्यादय इति कालनियमः ॥

(७) णित्वाद् वृद्धिः आगमिष्यतीत्यागामी ॥
 (८) इनिः णित् । भविष्यतीति भावी ॥
 • (९) इनिः णित् । णित्वाद्युक् । प्रस्थातुमिच्छतीति प्रस्थायी गन्तुमनाः ॥

(१०) परमे उत्तमे व्यवहारे तिष्ठतीति परमेष्ठी । सर्वेषां पितामह ईश्वरो वा । सप्तम्या अलुक् षत्वं च ॥

(११) इनिः कित् कित्त्वान्नलोपः । मन्थयति विलोडयतीति मन्थाः । मथिन् शब्दस्य सर्वनामस्थान आत्वम् । मन्थानौ । मन्थानः । दध्यादिमन्थनदण्डो वज्रो वायुर्वा ॥

पतः स्थ च ॥ १२ ॥ पन्थाः ॥ १२ ॥

खजेराकः ॥ १३ ॥ खजाकः ॥ १३ ॥

वलाकादयश्च ॥ १४ ॥ वलाका । शलाका । पताका ॥ १४ ॥

पिनाकादयश्च ॥ १५ ॥ पिनाकः । तडाकः ॥ १५ ॥

(१२) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पन्था मार्गः । पन्थानौ । पूर्वव-
दात्वम् । पथे गतावित्यस्माद्भातोः पचाद्यचि कृते पथः । पथौ । पथाः ।
इत्यदन्तोऽपि दृश्यते ॥

(१३) खजति मथ्नातीति खजाकः पक्षिः । खजाका दर्विर्वा ।
बहुलवचनात्मन्द्यन्ते स्तूयन्ते तानि मन्दाकानि स्रोतांसि वा । तान्यस्याः
सन्तीति मन्दाकिनी । नदीभेदः ॥

(१४) वलते संवृणोत्यसौ वलाका । वक्पक्षिः कामिनी वलाको
वक्पक्षी वा । मन्यते जानाति सा मनाका । हस्तिनी वा । पुनातीति
पवाका । यां शलन्ति गच्छन्तीति शलाका । अञ्जनयष्टिका वा । पटति
गच्छतीति पटाकः । पक्षी वा । पत्यते ज्ञायतेऽसौ पताका ध्वजा वा ॥

(१५) पाति रक्षति पिनाकः । त्रिशूलं धातुर्वा । ताडयत्या-
हन्तीति तडाका प्रभा वा । बहुलवचनात्—आगप्रत्यये सति तडागः ।
इत्यपि सिद्धं भवति । भन्दतेऽसौ भदाकः । कल्याणम् । श्यायति प्राप्नोतीति
श्यामाकः ब्रीहिभेदे वा । समा इति प्रसिद्धः । मुगागमो निपातनम् ।
न भाति प्रकाशत इति नभाकम् । मेघयुतमाकाशं वा । यं पिनष्टि सम्य-
क्चूर्णयति स पिण्याकः । तिलकल्को वा । धातोः षकारस्य धत्वं युगा-
गमश्च । वर्तते येन स वार्ताको वार्ताकी वा । वनभण्टा इति प्रसिद्धा ।
धातोर्वृद्धिः । गुवति पुरोषमुत्सृजतीति गुवाकः । पूगोफलं वा । कुटादि-
त्वाद् गुणाभावः ॥

कषिदूषिभ्यामीकन् ॥ १६ ॥ कपीका । दूषीका ॥ १६ ॥
 अनितृपिभ्यां किञ्च ॥ १७ ॥ अनीकम् । तृपीकम् ॥ १७ ॥
 चङ्कणः कङ्कण च ॥ १८ ॥ कङ्णीका ॥ १८ ॥
 शृपृवृजां द्वे रुक् चाभ्यासस्य ॥ १९ ॥ शर्शरीकः ॥ पर्प-
 रीकः । वर्वरीकः ॥ १९ ॥
 फर्फरीकादयश्च ॥ २० ॥ फर्फरीकम् । दर्दरीकम् । तित्ति-
 डीकः । चञ्चरीकः । मर्मरीकः । कर्करीकम् । पुण्डरीकः ॥ २० ॥

(१६) कषति हिनस्तीति कपीका । पक्षिजातिर्वा । दूषयतीति
 दूषीका नेत्रमलं वा ॥

(१७) अनिति जीवयतीत्यनीकम् । विरुद्धं सैन्यं वा । हृष्यति
 तुष्टो भवतीति येन तत् हृषीकम् । ज्ञानेन्द्रियं वा ॥

(१८) यङ्लुगन्तात्कणधातोरोकन् कङ्कणादेशश्च । पुनः पुनः
 कणति शब्दयतीति कङ्कणीका । वाद्यसाधनविशेषो वा । घरियार इति
 प्रसिद्धः । किङ्किणीका क्षुद्रघण्टिका । बहुलवचनात् सिद्धम् ॥

(१९) शृणाति हिनस्तीति शर्शरीको हिसकः । पिपति पालयतीति
 पर्परीकः सूर्यो वा । वृणोति स्वीकरोतीति वर्वरीकः । कुटिलकेशो जनो वा ॥

(२०) स्फुरति चेतनो भवतीति फर्फरीकम् । पत्रादिसहितः
 शाखाग्रन्थिर्वा । ईकन्प्रत्यये धातोः फर्फरादेशः । दृणातीति दर्दरीकम् ।
 वादिचं वा । करोति कार्याणि येन तत् कर्करीकम् । शरीरं वा । कर्क-
 रीका गलन्तिका । कलशो इति प्रसिद्धा । अत्रोभयत्र धातोर्द्वित्वमभ्या-
 सस्य रुक् च । तिम्यत्याद्रीकरोतीति तित्तिडीकः । वृक्षजातिर्वा । मका-
 रस्य डकारोऽभ्यासस्य नुट् च । चरति गच्छति भक्षयति वा स चञ्चरीकः ।
 भ्रमरो वा । अभ्यासस्य नुम् । म्रियतेऽसौ मर्मरीकः । होनजनो वा । पुणति
 शुभकर्माचरतीति पुण्डरीकम् । श्वेताम्भोजंसितपद्मं भेषजं व्याघ्रोऽग्निर्वा ॥

ईषेः किद् ध्रस्वश्च ॥ २१ ॥ इषीका । २१ ॥

ऋजेश्च ॥ २२ ॥ ऋजीकः । २२ ॥

सर्तेर्नुम् च ॥ २३ ॥ सृणीका । २३ ॥

मृडः कीकच् कङ्कणौ ॥ २४ ॥ मृडीकः । मृडङ्कणः ॥ २४ ॥

अलीकादयश्च ॥ २५ ॥ अलीकम् । व्यलीकम् । वलीकम् । २५ ॥

कृतृभ्यामीपन् ॥ २६ ॥ करीषः । तरीषः ॥ २६ ॥

(२१) कित्वाद् गुणाभावः । ईषते गच्छतीति इषीका । मुञ्जादि-
शलाका वा ॥

(२२) कित् । अर्जति गच्छतीति ऋजीकः । उपहतो वा । कित्वाद्
गुणनिषेधः ॥

(२३) सरति प्राप्नोतीति सृणीका । लाला वा । ष्ठीवनभेदः । लार
इति प्रसिद्धम् ॥

(२४) मृडति सुखयतीति मृ डीकः । सुखदाता । मृडङ्कणः । बालो वा ।
बहुलवचनात् । कायति शब्दयतीति कङ्कणः । करभूषणं वा ॥

(२५) कीकन् प्रत्ययान्ता अमी निपात्यन्ते । अलति वारयतीत्य-
लीकम् । मिथ्या वा । विपूर्वाद् व्यलीकमप्रियं खेदे वा । वलते संवृणोत्यनेन
तत् वलीकम् । गृहच्छादनसामग्री वा । अन्येपि, वलते संवृतो भवतीति
वल्मीकम् । छिद्रमृषिभेदो वा । तस्यापत्यं वाल्मीकिः । मुडागमः । वहतीति
वाहीकः । गौरश्चो वा । धातोर्वृद्धिः । सुष्टु प्रैतीति सुप्रतीकः अग्निर्वा ।
धातोस्तुट् च ॥

(२६) कीर्यते विक्षिप्यते स करीषः । शुष्कगोमयं वा । तरति येन स
तरीषः । नौका वा ॥

शृपृभ्यां किञ्च ॥ २७ ॥ शिरीषः । पुरीषम् ॥ २७ ॥

अर्जर्जज च ॥ २८ ॥ ऋजीषम् ॥ २८ ॥

अम्बरीषः ॥ २९ ॥

कृशृपृकटिपटिशौटिभ्य ईरन् ॥ ३० ॥ करीरः । शरीरम् ।

परीरम् । कटोरः । पटीरः । शौटीरः ॥ ३० ॥

वशोः किञ्च ॥ ३१ ॥ उशीरम् ॥ ३१ ॥

कशोर्मुट् च ॥ ३२ ॥ कश्मीरः ॥ ३२ ॥

(२७) शृणाति हिनस्तीति शिरीषः । वृक्षभेदे वा । पिपति तत् पुरीषम् । शकृद्वा ॥

(२८) अर्जति सञ्चितो भवति यस्मात्तत्, ऋजीषम् । पिष्टपचनं वा । तवा इति प्रसिद्धम् ॥

(२९) अम्बते शब्दयतीति, अम्बरीषः । आकाशः स्वेदनी वा । भाङ् इति प्रसिद्धम् ॥

(३०) किरतीति करीरः । वृक्षभेदे वंशाङ्कुरो वा । शीर्यते हिंस्यत इति शरीरम् । प्राणिनायो वा । पूर्यतेऽनेनेति परीरम् । फलं वा । कट्यत आव्रियतेऽसौ कटोरः । कुटी जघनदेशो वा । पटति गच्छतीति पटीरः । कन्दुकः कामश्चन्दनवृक्षो वा । शौटति गर्वं करोतीति शौटीरः । त्यागो वीरो वा । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् शौटीर्यम् । वैराग्यम् । बहुलवचनात्— हिरण्यत इतस्ततो गच्छतीति हिरण्योरः । समुद्रफेनो दाडिमो वा । किमोर- तूणीरजम्बीरकुम्भीरकुटीरादयोऽपीरन् प्रत्ययान्ता बाहुलकादेव बोद्धव्याः ॥

(३१) उश्नते काम्यते तदुशीरम् वीरणमूलं वा । खस २ इति प्रसिद्धम् ॥

(३२) ईरन् इत्येव । कष्टे गच्छति शास्ति वाऽसौ कश्मीरः । देशभेदे वा ॥

कृत्र उच्च ॥ ३३ ॥ कुरीरम् ॥ ३३ ॥

घसेः किञ्च ॥ ३४ ॥ क्षीरम् ॥ ३४ ॥

गभीरगम्भीरौ ॥ ३५ ॥

विषाविहा ॥ ३६ ॥

पच एलिमच् ॥ ३७ ॥ पचेलिमः ॥ ३७ ॥

शीडो धुकूलक्वलञ्ज्वालनः ॥ ३८ ॥ शीधु । शीलम् ।

शैवलः । शैवालम् । शैपालः ॥ ३८ ॥

मृकणिभ्यामूकोकणौ ॥ ३९ ॥ मरूकः । काणूकः ॥ ३९ ॥

(३३) क्रियते तत् कुरीरम् । मैथुनं वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे कुलीरः । जलजन्तुभेदो वा ॥

(३४) अद्यते भक्ष्यते यतत् क्षीरं दुग्धं वा ॥

(३५) गमधातोर्मकारस्य भकार एकस्मिन् पच्चे नुमागमश्च । गम्यते प्राप्यते ज्ञायते वा स गभीरः शान्तो महाशयो वा । विशेष्यलिङ्गावेतौ शब्दौ ॥

(३६) विशेषेण स्यति कर्मान्तं करोतीति विषा । बुद्धिर्वा । विशेषेण जहाति त्यजति दुःखमिति विहा । सुखलोको वा । स्वभावादनयोरव्ययत्वम् ॥

(३७) पचति पदार्थानिति पचेलिमः । अग्निः सूर्यो वा । यस्तु पचधातोः सामान्यवार्तिकेन कृत्यार्थे केलिमञ् विधीयते स भावे कर्मणि कर्मकर्तरि वेतिभेदः ॥

(३८) श्रेते येन तत् शीधु । मद्यं वा । शीलं स्वभावः । शैवलम् । शैवालम् । बाहुलकात्—प्रत्ययवकारस्य पकारः । शैपालम् । जलनील्या नामान्येतानि । उदके लतारूपमुत्पन्नं सेवार इति प्रसिद्धम् ॥

(३९) म्रियते असौ मरूकः । मृगो वा । कणति शब्दयतीति काणूकः काको वा ॥

वलोरूकः ॥ ४० ॥ वलूकः ॥ ४० ॥

उलूकादयश्च ॥ ४१ ॥ उलूकः । वावदूकः । भल्लूकः ।

शम्बूकः ॥ ४१ ॥

शलिमण्डिभ्यामूकण् ॥ ४२ ॥ शालूकम् । मण्डूकः ॥ ४२ ॥

नियो मिः ॥ ४३ ॥ नेभिः ॥ ४३ ॥

अर्त्तेरुच्च ॥ ४४ ॥ ऊर्मिः ॥ ४४ ॥

भुवः कित् ॥ ४५ ॥ भूमिः ॥ ४५ ॥

अश्रोतेरशच् ॥ ४६ ॥ रश्मिः ॥ ४६ ॥

(४०) वलते संवृणीतीति वलूकः । पक्षो कमलमूलं वा ॥

(४१) ऊक प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वलतेऽसावुलूकः । पक्षिभेदो
या । धातोः सम्प्रसारणम् । भृशं वक्तोति वावदूको वक्ता । यङ्लुगन्ता-
दूकः । जलशुक्तिर्वा । धातोर्बुक् । बाहुलकादुक्प्रत्यये शम्बुक इत्यपि
सिद्धम् । भल्लते परितोभाषतेऽसौ भल्लूकः । ऋक्षो वा । बाहुलकाद् घृस्वे
भल्लुक इत्यपि । तथा भलतेऽसौ भालूकः स एव । महतीति मधूकः ।
वृक्षभेदो वा । तथा । एलूकजम्बूकबन्धूकवास्तूकादयोऽप्यत्रैव द्रष्टव्याः ॥

(४२) शल्यते प्राप्यते यत्तत्, शालूकम् । मूलद्रव्यं वा । मण्डति
शोभते ऽसौ मण्डूकः । भेको जलजन्तुर्वा ॥

(४३) नयतीति नेमिः । चक्रावयवी वा । बाहुलकात्—याति कार्याणि
प्रापयतीति यामिः । आदेर्जत्वं जामिः । स्वमा कुलस्त्री वा ।

(४४) ऋच्छति गच्छतीत्यूर्मिः । जलतरङ्गी वा ।

(४५) भवन्ति पदार्था अस्यामिति भूमिः । उत्पत्तिस्थानम् । अल्पा
भूमिर्भूमिका । कृदिकारादिति ङीप् भूमी ॥

(४६) अश्नुते व्याप्नोतीति रश्मिः । किरणो रज्जुर्वा ।

दल्मिः ॥ ४७ ॥

वीज्याज्वरिभ्यो निः ॥ ४८ ॥ वेणिः । ज्यानिः । जूर्णिः ॥ ४८ ॥

सृवृषिभ्यां कित् ॥ ४९ ॥ सृणिः । वृष्णिः ॥ ४९ ॥

अङ्गेर्नलोपश्च ॥ ५० ॥ अग्निः ॥ ५० ॥

वहिश्चिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् ॥ ५१ ॥ वह्निः । श्रेणिः ।

श्रोणिः ॥ योनिः । द्रोणिः । ग्लानिः । हानिः । तूर्णिः ॥ ५१ ॥

(४७) दलति येन विदृणातीति दल्मिः । सूर्यकिरण उतमायुधं वा ॥

(४८) वीज्यते क्षिप्यते स वेणिः । केशविन्यासो वा । निपातना-
गणत्वम् । जिनाति वयोहीनो भवतीति ज्यानिः । क्षतिर्वा । ज्वरति गीगी
भवतीति जूर्णिः । स्त्रीगीगी वा । बाहुलकात्—क्षीति शब्दयतीति क्षीणिः ।
डोक् क्षीणी । भूमिर्वा । क्षीणातीति क्षेणिः । क्षेणी ॥

(४९) सरति गच्छतीति सृणिः । अङ्कुशं वा । वर्षतीति वृष्णिः ।
क्षत्रियो वैश्यो वा ।

(५०) अङ्गति गच्छति प्रप्रेति जानाति वा सोऽग्निः । वह्निः ।
प्रसिद्धो वा ॥

(५१) वह्नीति वह्निः । अग्निर्वा । अयति सेवतेऽसौ श्रेणिः ।
पङ्क्तिर्वा । निपृथ्वाक्षिणी । अधिरोपणी वा । शृणोतीति श्रोणिः । कटि-
प्रदेशो वा । यीति संपोषयति पृथक् यीति वा स योनिः । कारणमुप-
स्थेन्द्रियं वा । द्रवति गच्छति यत्र स द्रोणिः । सेचनी देशविशेषो वा ।
ग्लायति यस्मिन् स ग्लानिः । दीर्घत्वं दीर्घमस्यं वा । होयते जहाति वा
स हानिः । अपचयो वा । प्रहङ्गिः । परिहङ्गिः । कृत्यच इति गणत्वम् ।
त्वरति सम्यग्भ्रमतीति तूर्णिः । मनो वा । बहुनवचनात्—शेतेऽसौ श्रेणिः ।
क्षत्रियो वा । धातेर्ह्रस्वत्वं च । ग्लायतीति ग्लानिः । आनन्दक्षयो वा ॥

घृणिष्टदिनपाणिर्ण्वूर्णिभूर्ण्वः ॥ ५२ ॥

वृद्धभ्यां विन् ॥ ५३ ॥ वर्धिः । दर्धिः ॥ ५३ ॥

जृगृत् जृगृभ्यःक्विन् ॥ ५४ ॥ जीर्धिः । शीर्धिः स्तीर्धिः ।

जागृविः ॥ ५४ ॥

दियो हे दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ ५५ ॥ दीदिविः ॥ ५५ ॥

कृविघृष्विष्ठविस्थविकिकीदिवि ॥ ५६ ॥

(५२) जिघर्ति चरति दीप्यते वा स घृणिः । किरणो वा । स्पृशति संयुक्तो भवतीति पृश्निः । अल्पशरीरो वा । धातोः सलोपः पर्यति सिञ्चतीति पाणिः । पादतलं वा । धातोर्द्ध्वः । चरति गच्छति भक्षयति चूर्णयति प्रेक्षयतीति वा चूर्णिः । विग्रहणं वा । विभर्ति धरति सर्वगति भूर्णिः । पृथिवी वा । बाहुलकात्-पुगति शब्दयतीति घूर्णिः ॥

(५३) वृणोतीति वर्धिः । भक्ष्यो वा । दृष्ट्वा । यथा सा दर्धिः । सूचालनपात्रं वा । डोप् । दर्धी ॥

(५४) जोर्यतीति जीर्धिः । पशुर्वा । शृणातीति शीर्धिः । स्तृणोत्याच्छादयतीति रतीर्धिः । अध्वर्युर्वा । जागतीति जागृविः नृपतिर्धा ॥

(५५) दीव्यतीति दीदिविः । सुकर्मचं वा । क्वन् प्रत्ययस्य बाहुलकादेवेत्सञ्ज्ञालोपो न भवतः ॥

(५६) करोति येन स कृविः । तन्तुवाद्द्रव्यं वा । पर्यति सिञ्चतीति घृष्विः । वराहो वा । छयति सूक्ष्मं करोतीति छविः । दीप्तिर्वा । धातोर्द्ध्वत्वं च । तिष्ठतीति स्थविः । तन्तुवायो वा । अद्यापि ह्रस्वः । किञ्चना शब्देन दीव्यतीति किकिदीकि । यणो वा । नीलकण्ठ इति प्रसिद्धः । किकीदिविः । किकिदिविः । किकिदीवः । किकिदिविः । किकीदीविः । इति पञ्चभेदा बहुलकानां नान्ये मन्तव्याः ॥

पातेर्डतिः ॥ ५७ ॥ पतिः । ५७ ॥

शकेर्ऋतिन् ॥ ५८ ॥ शकृत् ॥ ५८ ॥

अमेरतिः ॥ ५९ ॥ अमतिः ॥ ५९ ॥

वहिवस्यर्त्तिभ्यश्चिचत् ॥ ६० ॥ वहतिः । वसतिः । अरतिः ॥ ६० ॥

अञ्चेः को वा ॥ ६१ ॥ अङ्कतिः । अञ्चतिः ॥ ६१ ॥

हन्तेरंह च ॥ ६२ ॥ अंहतिः ॥ ६२ ॥

रमेर्नित् ॥ ६३ ॥ रमतिः ॥ ६३ ॥

(५७) पाति रक्षतीति पतिः । स्वामी वा ।

(५८) शक्नोतीति शकृत् । बाहुलकात्—यजतीति यकृत् । काल-
खण्डं वा । धातोर्जकारस्य ककारः ॥

(५९) अमति गच्छतीति, अमतिः कालो वा । बाहुलकात्—व्रत-
माचरतीति व्रततिः । विस्तरो व्रततो लता वा । मालयति गन्धं धारय-
तीति मालती मालतिः । सुमना वा । चमेली इति प्रसिद्धा । स्थापयति
धर्ममिति स्थपतिः । दाम्नी यज्ञकर्ता वा । गयन्तस्य स्थाधातोः पुकि
सति ह्रस्वत्वम् ॥

(६०) वहति प्रापयति पदार्थान् प्राप्नोति वेति वहतिः । पवनो
वा । वसन्ति यजेति वसतिर्वसती वा गृहं रात्रिर्वा । ऋच्छति गच्छतीति,
अरतिः क्रोधो वा । बाहुलकात्—अलति भूषयति समर्थो वा भवति ।
स) अलतिः । गीतमाचिका वा ॥

(६१) अञ्चति गच्छति पूजयति वा स) अङ्कतिः । अञ्चतिः ।
वायुर्वा ॥

(६२) अतिः । हन्त्यनेनेति अंहतिः । दानं वा ॥

(६३) रमन्तेऽस्मिन् स रमतिः कालः कामो वा ॥

सूङः क्रिः ॥ ६४ ॥ सूरिः ॥ ६४ ॥

अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् ॥ ६५ ॥ अद्रिः । शद्रिः । भूरिः ।
शुभिः ॥ ६५ ॥

वङ्क्रयादयश्च ॥ ६६ ॥ वङ्क्रिः । वप्रिः । अंह्रिः । तन्द्रिः ।
भेरिः ॥ ६६ ॥

राशदिभ्यां त्रिप् ॥ ६७ ॥ रात्रिः । शत्रिः ॥ ६७ ॥

अदेस्त्रिनिश्च ॥ ६८ ॥ अत्री । अत्रिः ॥ ६८ ॥

पतेरत्रिन् ॥ ६९ ॥ पतत्रिः ॥ ६९ ॥

(६४) सूते प्राणिनः प्रसवति समर्थयतीति, सूरिः । पण्डितो वा ।
स्त्रियां सूरौ ॥

(६५) योऽस्ति, अदन्ति यच्चेति वा स, अद्रिः । पर्वतो मेघो वृक्षः
सूर्यो वा । शोयते शातयतीति शद्रिः । शर्करा वा । भवतीति भूरि बहु
सुवर्णं वा । भूरि प्रयोजनमस्य स भौरिकः । कनकाध्यक्षो वा । शोभतेऽसौ
शुभिः । चतुर्वेदविद् ब्रह्मा वा ॥

(६६) वङ्कतेऽसौ वङ्क्रिः । वाद्यभेदो गृहदारु वा । वपन्ति यस्मिन्
स वप्रिः क्षेपं वा । सम्प्रसारणाभावः । बाहुलकात्—अंहयति भाषतेऽसावंह्रिः ।
पादो वा । तन्द्रिः सौत्रो धातुः । तन्दति क्लिप्नातीति तन्द्रिः मोहो वा ।
स्त्रियां तन्द्रौ । बिभेति येन स भेरिः । वाद्यविशेषो वा । भेरो वा ॥

(६७) राति सुखं ददातीति रात्रिः । प्रसिद्धा वा । शोयते छिनतीति
शत्रिः हृस्ती वा ॥

(६८) चात् त्रिप् । अति भक्षयतीति अत्री । अत्रिणौ । पापं वा ।
अचिः । मुनिभेदो वा । तस्यापत्यमात्रेयः ॥

(६९) पततीति पतत्रिः । पक्षी वा । पतत्रयः । पक्षवाचकात्पतच
शब्दान्मतत्त्वर्थ इति । पतत्रौ । पतत्रिणौ ॥

मृकणिभ्यामीचिः ॥ ७० ॥ मरीचिः । कणीचिः ॥ ७० ॥

श्वयतेश्चित् ॥ ७१ ॥ श्वयीचिः ॥ ७१ ॥

वेज्रो डिच्च ॥ ७२ ॥ वीचिः ॥ ७२ ॥

ऋहनिभ्यामूषन् ॥ ७३ ॥ अरूषः । हनूषः ॥ ७३ ॥

पुरः कुषन् ॥ ७४ ॥ पुरुषः । पूरुषः ॥ ७४ ॥

पूनहिकलिभ्यउषच् ॥ ७५ ॥ परुषः । नहुषः । कलुषम् ॥ ७५ ॥

पीयेरूषन् ॥ ७६ ॥ पीयूषम् । पेयूषः ॥ ७६ ॥

मस्जेर्नुम् च ॥ ७७ ॥ मज्जूषा ॥ ७७ ॥

(७०) म्रियतेऽसौ मरीचिः । दीर्घतिर्महर्षर्वा । कणति शब्दयतीति कणीचिः । पत्रादियुक्ता शाखा शब्दो वा ॥

(७१) श्वयति गच्छति वर्धते वा स श्वयीचिः । व्याधिर्वा ॥

(७२) वयति तन्तून् सन्तपोतीति वीचिः । डित्व टृलोपः । तरङ्गो वा ॥

(७३) ऋच्छति गच्छतीति, ऋहः । सूर्यो वा । हनतीति हनूषो दस्युः ॥

(७४) पुरत्यङ्गं गच्छतीति पुरुषः पुमान् । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घे पुरुषो वा ॥

(७५) पिपतीति परुषम् । निष्टुरं वचो वा । नहति बध्नातीति नहुषः । राजर्षिः सर्पविशेषो वा । कलते शब्दयतीति कलुषम् । पाप्मम् ॥

(७६) पीयति पीयते वा तत् पीयूषम् । पेयूषः । नूतनं पयोऽमृतं वा । सप्तरात्रप्रसूतायाः क्षीरम् । बहुलवचनात्—अङ्गवते लक्षयतीति अङ्कुषः । नकुलो वा ॥

(७७) धातोर्नुम् । स चाचीऽन्त्यात्परः । जश्तवश्चुत्वे । मज्जति शुद्धो भवतीति मज्जूषा । काष्ठमयं द्रव्यं वा ॥

गण्डेश्व ॥ ७८ ॥ गरडूषः । गण्डूषा ॥ ७८ ॥

अर्त्तेररुः ॥ ७९ ॥ अरुः ॥ ७९ ॥

कुटः किश्च ॥ ८० ॥ कुटरुः ॥ ८० ॥

शक्रादिभ्योऽटन् ॥ ८१ ॥ शक्रटः । कङ्कटः । देवटः ।

करटः ॥ ८१ ॥

(७८) गण्डति वडनावयवं दिशतीति गण्डूषः । जलादिना पूर्णं मुखम् । कुल्ला इति प्रसिद्धम् ॥

(७९) अरुच्छति प्राप्नोति येन तत् । अरुः । अयुधं वा ॥

(८०) कुटतीति कुटरुः । वस्त्रमृहं वा ॥

(८१) शक्रोतीति शक्रटः । शक्रटं यानविशेष ऋषिर्वा । यस्याऽपत्यं शक्रटायनः । वृणोतीति वरटः । कीटभेदो वरटा हंसयोपिद्ध । कङ्कते गच्छतीति कङ्कटः । कवचो वा । मरति प्रसरतीति सरटः । कृकलासो वा । गिरगट इति प्रसिद्धः । देवते व्यवहरतीति देवटः । शिल्पो वा । कम्पने येन स कपटः । माया वा । धातोर्नलोपः । कर्क कर्ककर्पाः सौत्रा धातवः । कर्कतीति कर्कटः । जलजन्तुभेदो वा । मर्कतीति मर्कटः । वानरो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीप् । मर्कटो । कर्पतीति कर्पटः । टिच्नं पुगणं वस्त्रं वा । पर्पति गच्छतीति पर्पटः । ऊषरभूमिर्वा । कखति हसतीति कखटम् । कठिनं वा । कुगागमः । चपति सान्त्वयतीति येन स चपेटः । चर्पटो वा । प्रसृताङ्गुलिर्हन्तो वा । एकच प्रत्ययादेरेत्वमप- रच्च रेफागमश्च । मयते प्राप्नोति यं न मयटः । प्रासादो वा । किरति विविक्षतीति करटः । काको वा । एवमन्येऽपिशब्दा अटन् प्रत्ययान्तः यथाप्रयोगं साध्याः ॥

कुकदिकडिकटिभ्योऽम्बच् ॥ ८२ ॥ करम्बम् । कदम्बः ।

कडम्बः । कटम्बः ॥ ८२

कदेर्णित् पक्षिणि ॥ ८३ ॥ कादम्बः ॥ ८३ ॥

कलिकर्द्योरमः ॥ ८४ ॥ कलमः । कर्दमः ॥ ८४ ॥

कुणिपुल्योः किन्दच् ॥ ८५ ॥ कुणिन्दः । पुलिन्दः ॥ ८५ ॥

कुपेर्वा वश्च ॥ ८६ ॥ कुविन्दः । कुपिन्दः ॥ ८६ ॥

नौ षत्र्जेर्धथिन् ॥ ८७ ॥ निषङ्गथिः । ८७ ॥

उद्यर्तेर्श्चित् ॥ ८८ ॥ उदरथिः । ८८ ॥

सर्तेर्णिञ्च ॥ ८९ ॥ सारथिः ॥ ८९ ॥

(८२) करोतीति करम्बम् । व्यामिश्रम् । कदतीति कदम्बः । वृक्ष-
भेदो वा । कडत्यावृणोतीति कडम्बः । अग्रभागे वा । कटतीति कट-
म्बो वादिच् वा ॥

(८३) कदति विकलो भवतीति कादम्बः पक्षिभेदो वा वक् प्रसिद्धः ॥

(८४) कलते सङ्ख्यातीति कलमः । शालिभेदो वा । कर्दति कुत्सितं
शब्दयतीति कर्दमः पापं वा ॥

(८५) कुण्यते शब्दयतेऽसौ कुणिन्दः । शब्दो वा । पोलीति महान्
भवतीति पुलिन्दः । श्वरश्चाण्डालभेदो वा । बाहुलकात्—अलति भूषय
तीति अलिन्दः । गृहैकदेशो वा । प्रज्ञादित्वादणि अलिन्द इत्यपि सिद्धम् ॥

(८६) कुप्यति क्रुद्धो भवति स कुविन्दः । कुविन्दः तन्तुवायो वा ॥

(८७) नितरां सजति सङ्गं करोतीति निषङ्गथिः । अलिङ्गको
वा । घित्वात् कुत्वम् ॥

(८८) उदृच्छन्त्यूर्ध्वं गच्छन्त्यापोऽस्मिन् स उदरथिः । समुद्रो वा ॥

(८९) सारयतीति नियमेन चालयतीति सारथिः । नियन्ता वा ।

खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ ॥ ९० ॥ खर्जूरः । कर्पूरः ।
धुस्तूरः । वल्लूरम् । पिञ्जूलम् । लाङ्गूलम् ॥ ९० ॥
कुवश्चट् दीर्घश्च ॥ ९१ ॥ कूची ॥ ९१ ॥
समीणः ॥ ९२ ॥ समीचः । समीची ॥ ९२ ॥
सिद्धेष्टेरू च ॥ ९३ ॥ सूचः । सूची ॥ ९३ ॥

अत्र णेर्नोपो गित्वाद् वृद्धिः ॥

(६०) खर्ज्यादिभ्य ऊरः । खर्जति मार्जयतीति खर्जूरः । वृक्ष-
भेदो रजतं वा । स्त्रियां गौरादित्वान् डीप् । खर्जूरौ । कल्पते समर्थो
भवतीति कर्पूरः । सुगन्धिद्रव्यं वा । बाहुलकादत्र लत्वाभावः । धुनोति
कम्पयतीति धुस्तूरः । कनकाद्वयः । धनुरा इति प्रसिद्धः । वल्लने संवृणो-
तीति वल्लूरम् । शुष्कमांसं वा । शालति गमयतीति शालूरः । मण्डूको
वा । मल्लते धरतीति मल्लूरः । कस्ते गच्छति प्राप्नोति शास्ति वा स
कस्तूरः । स्त्रियां कस्तूरो प्रसिद्धा । सुगन्धिभेदः । पिञ्जादिभ्य ऊलः ।
पिङ्गुवर्णयतीति पिञ्जूलम् । कुशवर्तिर्वा । कञ्चते दीप्यतेऽसौ कञ्चूलः ।
स्त्रीगात्राभरणं वा । लङ्गति गच्छतीति लाङ्गूलम् । पुच्छं वा । धातोर्वृद्धिः ।
ताम्यति काङ्क्षति यतताम्बूलमिति प्रसिद्धम् । धातोर्बुक् । धातोर्दुक् दी-
र्घत्वं च । शृणाति हिनस्तीति शार्दूलः । व्याघ्रो वा । धातोर्दुक् वृद्धिश्च ।
दुनोत्युपतापयतीति दुलूलम् । स्त्रिया अधोवस्त्रम् । धातोः कुक् । कुस्यति
शिलप्यतीति कुसूनः । धान्यपाचं वा ।

(६१) कूति शब्दयतीति कूचः । रतनं हस्ती वा । स्त्रियां कूची
चित्रलेखनी ॥

(६२) समीयति गच्छतीति समीचः । समुद्रो वा । समीची हरिणी ॥

(६३) इयभागस्य टेरू आदेशः । सीव्यति येन न सूचः । दर्भाङ्करो
वा । स्त्रियां सूचीति प्रसिद्धा ॥

शमेर्वन् ॥ ९४ ॥ शंवः ॥ ९४ ॥

उल्वादयश्च ॥ ९५ ॥ उल्वम् । विल्वम् ॥ ९५ ॥

स्थः स्तोऽम्बजवकौ ॥ ९६ ॥ स्तम्बः । स्तवकः ॥ ९६ ॥

शाशपिभ्यां ददनौ ॥ ९७ ॥ शादः । शब्दः ॥ ९७ ॥

अब्दादयश्च ॥ ९८ ॥ अब्दः । कुन्दः ॥ ९८ ॥

(६४) शाम्यतीति शंवः । मुमलस्य लोहमुखं वा । शामी इति प्रसिद्धा ॥

(६५) वन् प्रत्ययान्ता निपाताः । उच्यति ममवैतीति उल्वः । गर्भो वा । चकारस्य लत्वं गुणाभावश्च । शोचतीति शुक्लम् । ताम्रं वा । पूर्ववत्सर्वम् । नयति प्रापयतीति शुभगुणानिति निंवः । वृक्षभेदो वा । वीयते काम्यते तत् विंवम् । मण्डलमोपधिविशेषो वा । अत्रोभयञ्च नीवो धातोर्नुमागमो ह्रस्वत्वं च । स्त्रियां गौरादित्वात् । विंवो । विवफलमिवोष्ठौ यस्याः सा विंवोष्ठो कन्या । दधाति धान्यहेतुर्भवतीति धन्वम् । धनुर्वा । तद्योगादुन्वो जनः । जमति भक्षयतीति जंवः । पङ्को वा ॥

(६६) अम्बच् अवक इत्येतौ प्रत्ययौ । तिष्ठतीति स्तम्बः । शाखाशून्यो ब्रीहादेर्गुच्छो वा । स्तवकः । पुष्पगुच्छो वा ॥

(६७) श्यति सूक्ष्मं करोतीति शादः । कर्दमो वानतृणं वा । शृण्यत आहूयतेऽनेन स शब्दो नादः । पस्य वः ॥

(६८) ददन् प्रत्ययान्ता निपाताः । अबति रक्षणादिकं करोतीति अब्दः । संवत्सरोऽवसरो मेशो वा । कौति शब्दयतीति कुन्दः । पुष्पजातिर्वा । धातोर्नुम् । वृणोतीति वृन्दं समूहो वा । नुम् गुणाभावश्च । कनति दीप्यतेऽसौ कन्दः । मस्य मूलं सूकरो वा । तुदति व्यथतीति तुन्दः । स्थूलमुदरं वा । तुन्दो स्थूलोदरो । धातोर्नुम् ॥

वलिमलितनिभ्यः कयन् ॥ ९९ ॥ वलयम् । मलयः ।
तनयम् ॥ ९९ ॥

वृहोः पुग्दुं कौ च ॥ १०० ॥ वृषयः । हृदयम् ॥ १०० ॥
मीपीभ्यां रुः ॥ १०१ मेरुः । पेरुः ॥ १०१ ॥

जत्वा दयश्च ॥ १०२ ॥ जत्रु । जत्रुणी । अश्रु । अश्रुणी ॥ १०२ ॥
रुशातिभ्यां क्रुन् ॥ १०३ ॥ रुरुः । शत्रुः ॥ १०३ ॥

(९९) वलन्ते संवृणोतीति वलयः । करभूषणं वा । मलन्ते धरतीति
मलयः । पर्वतो वा । तनोति सुखमिति तनयः । पुत्रो वा । बाहुलकात्-
आमयति पीडयतीति आमयः । रोगो वा ॥

(१००) वृणोतीति वृषयः । आश्रयो वा । षुक् । हरति विषया-
निति हृदयम् । मनो वा । दुक् ॥

(१०१) मिनोति प्रक्षिपतीति मेरुः । सुमेरुः । पर्वतो वा । पीयते
पिबतीति वा । पेरुः । आदित्यो वा । बाहुलकात्—पिबतीति पारुः ।
स एव ॥

(१०२) जायते तत् जत्रु । स्कन्धसन्धिर्या । नस्य तः । जत्रुणी ।
जत्रूणि । श्वेतैः सौ शिग्रुः । शोभाञ्जनस्तरुः । सहिजना इति प्रसिद्धः ।
शाकं वा । मनुष्यविशेषो वा । तत्र शिग्रोरपत्यं शैग्रवः । विशेषेण तनो-
तीति वितद्रुः । नदी वा । नकारस्य दः । कवतेः सौ कद्रुः । वर्षाभेदो वा ।
वस्य दः । अस्यति प्रक्षिपति जलमिति अश्रुः । बहुलवचनात्—शकार-
भेदे । अश्रुः । नेत्रजलं वा ॥

(१०३) रौति शब्दं करोतीति रुरुः । मृगभेदो वा । शीयते शत-
यतीति शत्रुः । प्रज्ञादित्वाद्दण् । शत्रवः । वैरी ॥

जनिदान्युसृष्टमदिषमिनमिभृज्भ्य इत्वनत्वनल्लण्किन्-
 शक्स्यदडोटचः ॥ १०४ ॥ जनित्वः । दात्वः । च्यौत्नः ।
 सृणिः । वृशः । मत्स्यः । षण्डः । नटः । भरटः ॥ १०४ ॥
 अन्येऽपि दृश्यन्ते ॥ १०५ ॥ पेट्त्वम् ॥ १०५ ॥
 कुसेरुम्भोमेदेताः ॥ १०६ ॥ कुसुम्भम् । कुसुमम् ।
 कुसीदम् । कुसितः ॥ १०६ ॥
 सानसिबर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशवपालेल्वलपल्वल-
 धिष्णयशल्याः ॥ १०७ ॥

(१०४) जायते जनयति वा स जनित्वः । मातापितरौ वा । यो
 ददाति यत्र वा स दात्वः । यज्ञकर्म वा । च्ययते गच्छतीति च्यौत्नम् ।
 बलं वा । मरतीति सृणिः । चन्द्रोऽङ्कुशो वा । वृणोतीति वृशः । ओप-
 धिर्वा । माद्यतीति मत्स्यः । मीनो वा । स्त्रियां मत्सी । मत्स्या । सम-
 तीति षण्डः । अकृतदारो वा । नमतीति नटः । वंशावरोहोति प्रसिद्धः ।
 डित्वाट्टिलोपः । विभतीति भरटः । कुलालो वा ॥

(१०५) इत्त्वनादय इति शेषः । पीयते यत् पेट्त्वम् । अमृतं वा ।
 कच्यते बध्यतेऽसौ कच्छः । शाकमूलं वा । मरतीति मरटः । वायुर्वा ।
 व्यायते तद् ध्यात्वम् । चिन्ता वा । जुहोतीति ह्यौत्नः । यजमानो वा ।
 लूयतेऽसौ लूनिः । ब्रौहिर्वा । इत्यादि ॥

(१०६) कुस्यति श्लिष्यतीति कुसुम्भम् । महारजनं वा । कुसुमम् ।
 पुष्पं वा । कुसीदम् । वृद्धिजीविका वा । कुसितः । देशो वा ॥

(१०७) सनोति ददाति सन्यते वा स सानसिः । हिरण्यं वा ।
 असिप्रत्यय उपधावृद्धिश्च । वृणोतीति वर्णसिः । जलं वा । धातोर्नुक् । पिप-
 स्तीति पर्णसिः । जलगृहं वा । पूर्ववत्सर्वम् । तण्डति ताडयति ताड्यते वा । स
 तण्डुलः । उलच् । तुषरहितो ब्रौहिर्वा । अङ्कते लक्षयति येन स, अङ्कुशः ।

मूशक्यविभ्यः क्लृः ॥ १०८ ॥ मूलम् । शक्लः । अम्लः ।
अम्लः ॥ १०८ ॥

माछांशसिभ्यो वः ॥ १०९ ॥ माया । छाया । सस्यम् ॥ १०९ ॥

सनोतेः ॥ ११० ॥ सव्यम् ॥ ११० ॥

जनेर्यक् ॥ १११ ॥ जन्यम् । जाया ॥ १११ ॥

अघ्न्यादयश्च ॥ ११२ ॥ अघ्न्या । कन्या । वन्ध्या ॥ ११२ ॥

शस्त्रभेदो वा । उशच् । चपति भक्षयतीति चषालः । यूपकङ्कणं वा । इलति
स्वपितीति, इल्वलः । नक्षत्रविशेषो वा । पलति गच्छतीति पल्वलम् ।
अल्पसरो वा । अत्रोभयच्च वलच् गुणाभावश्च । धृष्णोति प्रगल्भो भव-
तीति धिष्ण्यः । स्थानमृच्चोग्रिरालयो वा । ऋकारस्येकारो ग्यप्रत्ययश्च ।
शलति गच्छतीति शल्यम् । शस्त्रविशेषो वाणाग्रभागो वा ॥

(१०८) मनते बध्नातीति मूलमिति प्रमिदुम् । शक्नोतीति शक्लः ।
प्रियंवदो वा । अम्वते शब्दं करोतीत्यम्बलः । बाहुलकात्—अमति
गच्छतीति अम्लः । रसविशेषो वा ॥

(१०९) मात्यन्तर्भवतीति माया । छलं मिथ्याजालो वा । छ्यति प्रका-
शमिति छाया । प्रकाशावरणमुत्कोचकप्रतिविम्बो वा । शस्यते यतत् सस्यम् ।
क्षेत्रपक्रमन्नं गुणो वा । बाहुलकात्—अनिति जीवयतीत्यन्यः । इतरो वा ॥

(११०) सुनोत्यभिपवतीति सव्यम् । वामभागो वा ॥

(१११) या जायते यस्यां वा सा जाया पत्नी । ये विभाषेति व्यव-
स्थितविभाषया पत्न्यां जाया नित्यमात्वमन्यत्र जन्यम् । निर्वादो युदुं वा ॥

(११२) यगन्ता निपाताः । यो न हन्यते न हन्तीति वा स,
अघ्न्यः । प्रजापालको वा । धातोः पधालोपो हस्य घत्वं च । अघ्न्या
गौर्वा । सन्दधाति यस्यां वेलायां सा सन्ध्या । आतो लोपः । सायङ्कालः
प्रतिज्ञा वा । सम्यग् ध्यायन्ति परं ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या । इति तु स्त्रियां

स्नामदिपद्यतिपृशकिभ्यो वनिप् ॥११३॥ स्नावा । मद्वा ।
 पद्वा । अर्वा । पर्व । शका । शकरी ॥ ११३ ॥
 शीड्कुशिरुहिजिक्षिष्टृभ्यः कनिप् ॥ ११४ ॥ शीवा ।
 कुश्वा । रुद्वा । जित्वा । क्षित्वा । सृत्वा । धृत्वा ॥ ११४ ॥
 ध्याप्योः सम्प्रसारणं च ॥११५॥ धीवा । पीवा ॥११५॥
 अधेर्ध च ॥ ११६ ॥ अध्वा ॥ ११६ ॥

क्तिन्नित्यधिकारे, आतश्चोपनर्ग इत्यङ् । कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति
 वा सा कन्या । कुमारी वा । बध्यतेऽमौ बन्ध्या अप्रसूता वा । कौति
 शब्दयतीति कुडम् । भित्तिर्वा । धातेर्दुक् । मन्यते येन तन्मध्यम् ।
 द्वेयोरन्तरालं वा । नस्य धः । उह्यते यत्तद् बह्यम् । मनुष्यविशेषो वा ।
 अहति व्याप्नोतीत्यहत्या । रात्रिर्वा । अहलीयतेऽस्यामिति व्युत्पत्यनन्तरम् ।
 पूर्वत्र धातेरनुगागमः । ऋपति गच्छतीति ऋण्यः मृगभेदो वा । कष्टे
 गच्छति शास्ति वा स कश्यः । मद्यं वा । इत्यादि ॥

(११३) स्नाति शुच्यतीति स्नावा । रसिको वा । स्नावानौ । स्नावानः
 माद्यतीति मद्वा । कल्याणदातेश्वरो वा । पद्यन्ते यत्र स पद्वा । पन्था वा ।
 ऋच्छतीत्यर्वा । अश्वो निन्द्यो वा । पिपतीति पर्व । ग्रन्थिर्वा । शक्नोतीति
 शका । हस्ती वा । स्त्रियां डोत्रेफौ । शकरी । नदी छन्दोभेदो वा ॥

(११४) श्नेतेऽसौ शीवा । अजगरो वा । क्रोशतीति कुश्वा । शृगालो
 वा । रोहति बीजादुत्पद्यत इति रुद्वा । वृद्धो वा । जयतीति जित्वा ।
 जयशीलः । क्षयति नाशयति क्षिपति निवसति गच्छति वा स क्षित्वा ।
 वायुर्वा । सरतीति सृत्वा । प्रजापतिर्वा । धारयतीति धृत्वा । व्यापको
 जगदीश्वरो वा । स्त्रियां जित्वरोत्यादि बोध्यम् ॥

(११५) ध्यायतीति धीवा । कर्मकारो वा । स्त्रियां धीवरो । मत्स्या-
 धानं पात्रम् । प्यायते बर्द्धतेऽसौ पीवा । स्थूलो वा । पीवरो तरुणो ॥

(११६) अति भक्षयतीति अध्वा । मार्गो वा ।

प्रईशदोस्तुट्वा॥११७॥प्रेर्त्वा।प्रशत्त्वा।प्रेर्त्वरी।प्रशत्त्वरी॥११७॥

सर्वधातुभ्य इन् ॥११८॥ पचिः । तुण्डिः । वलिः । वटिः ।
मणिः । वल्हिः यजिः । गण्डिः । तडिः । ध्राडिः । काशिः ।
वाशिः । घटिः । घटी । यतिः । केलिः । मसिः । कोटिः ।
जटिः । कटिः । हलिः । हेलिः । पणिः । कलिः ॥ ११८ ॥

(११७) प्रेतैःसौ प्रेर्त्वा । सागरी वा । प्रेर्त्वरी । प्रशोयतेऽसौ प्रशत्वा
समुद्रो वा । प्रशत्त्वरी नदी ॥

(११८) पचति येन स पचिः । अग्निर्वा । तुण्डति छिनत्तीति तुण्डिः ।
वलते संवृणोतीति वलिः । महाराजो वा । बाटयति ग्रथ्नाति स वटिः ।
विभाजको वा । मणति शब्दयतीति मणिः । बहुमूल्यः पाषाणो-वा । प्रश-
सितो मणिर्मणिकः । तदेव मणिक्कम् । वल्हते प्रधानो भवतीति वल्हिः ।
वल्हिका नाम क्षत्रिया जनपदो वा । यजतीति यजिः । सङ्गन्ता होता वा ।
गण्डति स गण्डिः । वदनैऋदेशो वा । ताडयतीति तडिः । पीडकः ।
धाडते विशेषेण हिनस्तीति ध्राडिः । पुष्पचयो वा । काश्यपे दोष्यनेऽसौ
काशिः । देशभेदो वा । तद्देशान्तर्गत्वाद्वाराणसी नगरी काशिः । काशी ।
तस्य देशस्य राजा काश्यपः । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः । काष्ठभेदिनी वा ।
घटतेऽसौ घटिः । घटी । यततेऽसौ यतिः । नियमधारी सन्न्यासी वा । केलति
चलति यस्यां सा केलिः । क्रीडा वा । मस्यति परिणमते स मसिः । मसो ।
पात्राञ्जनं वा । कुटतीति कोटिः । सङ्ख्यावरणमग्रभागो वा । बाहुलकाद्
गुणः । जटति सङ्घातं करोतीति जटिः । जटाधारी वा । कटतीति कटिः ।
कटी । शरीरमध्यं वा । हलति येन विलिखतीति हलिः । कृषोवलः । कृषि-
साधनं वा । हेलति विरुद्धं बहुभाषत इति हेलिः । प्रहेलिः । यः प्रकाशयति
व्यवहरति स पणिः विपणिः । वणिजां बोधो वा । कलन्ते स्पर्द्धमाना
भाषन्ते यच्च स कलिः । कलहो विग्रहो वा । नन्दति यच्चेति नन्दिः ।
वृद्धिर्वा । इत्यादीन्यनेकान्युदाहरणानि सन्ति ॥

हृषिषिरुहिवृतिविदिछिदिकीर्तिभ्यश्च ॥ ११९ ॥ हरिः ।
 पेपिः । रोहिः । वर्त्तिः । वेदिः । छेदिः । कीर्त्तिः ॥ ११९ ॥
 इगुपधात् कित् ॥ १२० ॥ ऋषिः । ऋषिः । रुचिः । शुचिः ।
 लिपिः ॥ १२० ॥

भ्रमेः सम्प्रसारणश्च ॥ १२१ ॥ भृमिः । भ्रमिः ॥ १२१ ॥
 क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च ॥ १२२ ॥ क्रिमिः । क्रमिः ।
 तिमिः । शतिः । स्तिभिः ॥ १२२ ॥

(११६) हरतीति हरिः । सर्पौ मण्डूकोऽश्वः सिंहः सूर्यो वा । इगु-
 पधात् किदिति वक्ष्यते यद्वाधनार्थं पिप्प्रादीनां ग्रहणम् । तत्र हि कित्वाद्
 गुणनिषेधः प्राप्तः स न स्यात् । पिनष्टि येन स पेपिः । वज्रो वा । रोह-
 तीति रोहिः । व्रतो वा । वर्तते सा वर्त्तिः । दीपोपकरणं वा । विद्यते या
 सा वेदिः । यज्ञभूमिर्वा । छिनत्तीति छेदिः । वर्धकश्छेता वा । कीर्त्यते
 संग्रह्यते सा कीर्त्तिः । पुण्यं यगो वा ॥

(१२०) कृष्यते विलेख्यते या सा कृषिः । खेतीति प्रसिद्धा । ऋषति
 गच्छति प्राप्नोति जानाति वा स ऋषिः । मन्त्रार्थद्रष्टा वा । रुच्यते सा रुचिः
 दीप्तिर्वा । शुच्यतीति शुचिः । शुद्धिर्वा । लिम्पतीति लिपिः । लेखे वा ।
 बाहुलकात्—वत्वे लिपिः । इत्यपि । लिपिं करोतीति लिपिकरः । लिप्यर्थे
 एव । तूलते निष्कर्षतीति तूलिः । तूलो । कूर्चिका । दध्यादिना सह पक्वः
 क्षीरविकारो वा ।

(१२१) भ्राम्यतीति भृमिः । वायुर्वा । बाहुलकात्—भ्रमिरित्यपि सिद्धम् ॥

(१२२) क्राम्यति पादान् विक्षिपतीति क्रिमिः । जुद्धजन्तुर्वा । सम्प्रसारणानु-
 वृत्तेः कृमिरित्यपि । ताम्यत्याकाङ्क्षतीति तिमिः । म. स्यभेदे वा । शतिस्तम्भौ
 सौत्रौ धातू । शितिः कृष्णः । शुक्रो वा । स्तम्भनातीति स्तिभिः । समुद्रो वा ॥

मनेरुच्च ॥ १२३ ॥ मुनिः । १२३ ॥

वर्णेर्बलिश्चाहिरण्ये ॥ १२४ ॥ बलिः ॥ १२४ ॥

वसिवपियजिराजिब्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ् ॥
१२५ ॥ वासिः । वापिः । याजिः । राजिः । ब्राजिः । सादिः ।
निघातिः । वाशिः । वादिः । वारिः ॥ १२५ ॥

नहो भद्व ॥ १२६ ॥ नाभिः ॥ १२६ ॥

रुषेर्वृद्धिश्छन्दसि ॥ १२७ ॥ कार्षिः ॥ १२७ ॥

(१२३) किदित्येष । मन्यते जानातीति मुनिः । मननशीलः ।
मुनिरियं ब्राह्मणो । ब्रह्मादित्वान् मुनी । मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ॥

(१२४) वर्णिः सौत्रौ धातुः वर्णयति स बलिः । राजकरः सत्का-
रसामग्री शरीराङ्गं वा । हिरण्ये तु वर्णिः सुवर्णम् ॥

(१२५) वस्त आच्छादयति वसति वा स वासिः । छेदनवस्तु वा ।
वपन्ति यजेति वापिर्वापो वा । जलाशयभेदो वा । यजतीति याजिः । यष्टा
वा । राजते दीप्यतेऽसौ राजिः । राजी । पंक्तिर्वा । राजीवं पद्मम् । वृज-
तीति ब्राजिः । वायुसमूहो वा । सीदतीति सादिः । सारथिर्वा । हन्ति
यया सा घातिः । निघातिर्लौहघाता धारा । वाञ्छयते शब्दयतीति वाशिः ।
अग्निर्वा । वादयति व्यक्तमुच्चारयति स वादिः । विद्वान् वा । वारयति निवा-
रयतीति वारिः । गजबन्धनो शृङ्खला वा । जले नपुंसकम् । वारि ।
बाहुलकात्—हरतीति हरिः । पथिकसंसृतिर्वा । संप्रहारिः । योद्धा ।
खटति काङ्क्षतीति खाटिः । शुष्कवृणस्थानं वा ॥

(१२६) नहति दुष्टं नाडीर्वा, बध्नातीति नाभिः । क्षत्रियः प्राण्यङ्गं
वा । नाभो डीष् ॥

(१२७) कर्षत्याकर्षतीति कार्षिः । अग्निर्वा । लोके तु कृषिः ॥

श्रः शकुनौ ॥ १२८ ॥ शारिः । शारिका ॥ १२८ ॥
 कञ्ज उदीचां कारुषु ॥ १२९ ॥ कारिः ॥ १२९ ॥
 जनिघसिभ्यामिण् ॥ १३० ॥ जनिः । घासिः ॥ १३० ॥
 अज्यतिभ्यां च ॥ १३१ ॥ आजिः । आतिः ॥ १३१ ॥
 पादे च ॥ १३२ ॥ पदाजिः । पदातिः ॥ १३२ ॥
 अशिपणायोरुडायलुकौ च ॥ १३३ ॥ राशिः । पाणिः ॥ १३३ ॥

(१२८) श्रृणाति हिनस्तीति शारिः पक्षी । स्त्री शारिका । शुक-
 शारिकमिति पक्ष एकवद्भावः । शारोन् हन्तीति शारिका वा । शकुनेर-
 न्यत्र शरिर्हिंस्रः । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । शलिः अपिशलिर्मुनिविशेषस्त
 स्यापत्यमापिशलिः । बाह्वादित्वादिञ् ॥

(१२९) करोतीति कारिः । शिल्पी । शिल्पिनोऽन्यत्र करिः ॥

(१३०) जायतेऽसौ जानिः । जननं वा । घसति भक्षयतीति घासिः ।
 अग्निर्वा । बाहुलकात्—श्लयते प्राप्यतेऽसौ शालिः । ब्रीहयो वा । पलति
 गच्छतीति पालिः । खड्गादेरग्रभागो वा । प्रत्ययान्तरकरणं स्वार्थम् ॥

(१३१) अजन्ति क्षिपन्ति शस्तादिकं यच्च स आजिः । संग्रामी वा ।
 अतति निरन्तरं गच्छतीति, आतिः । तितरिभेदो वा । शोभनः—आतो
 स्वाती नक्षत्रम् ॥

(१३२) पदभ्यामजत्यतीति वा स पदाजिः । पदातिः । पदगः ।
 पादस्यपदाज्जाति० सूत्रेण पदादेशः ॥

(१३३) अशेरुट् पणायते रायलुक् । अश्नुते व्याप्नोतीति राशिः ।
 समूहो वा । पणायति व्यवहरति येन स पाणिः । ऋस्तो वा ॥

वातेर्डिच्च ॥ १३४ ॥ विः ॥ १३४ ॥

प्रे हरतेः कूपे ॥ १३५ ॥ प्रहिः ॥ १३५ ॥

नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः ॥ १३६ ॥ नीविः ॥ १३६ ॥

समाने ख्यः स चोदात्तः ॥ १३७ ॥ सखा ॥ १३७ ॥

आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च ॥ १३८ ॥ अश्रिः । अहिः ॥ १३८ ॥

अच इः ॥ १३९ ॥ रविः । कविः । पविः । अरिः । अलिः ॥ १३९ ॥

(१३४) वाति वायुवद्गच्छतीति विः । पक्षी वा । डित्वादाकार-
लोपः । अटन्ति वयोऽस्यामित्यटविर्नगरी । पदस्य विः पदवी ॥

(१३५) इण्-डित् । प्रहरति जलमस्मात् स प्रहिः कूपोवा । कूपा-
दन्यत्र हरिः ॥

(१३६) पूर्वस्योपसर्गस्य दीर्घः । निवीयते संव्रियते सा नीविः ।
नीवी । मूलधनं दुकूलबन्धनं वा ॥

(१३७) समानं ख्यातीति सखा । सखायौ । सखायः । मित्रं
सहायो वा ॥

(१३८) आश्रयति तच्चेति, अश्रिः । कोणो वा । आहन्तीति, अहिः ।
मेघः सर्पो वा । अत्राहुपसर्गस्यैव ह्रस्वत्वम् ॥

(१३९) अजन्ताद्वातेरिः प्रत्ययः । लुनाति छिनतीति लविः ।
छेदको लोहो वा । पुनातीति पविः । वज्रं हरिकं वा । तरति येन स तरिः ।
वस्त्रादिस्थापनभाण्डं वा । स्त्रियां तरी । रौतीति रविः । सूर्यो वा । कौति
शब्दयत्युपदिशति स कविः । मेधावी विद्वान् । क्रान्तदर्शनो वा । स्त्रियां
कवी । ऋच्छति प्राप्नोति परपदार्थानित्यरिः । शत्रुर्वा । कपिलकादित्वा-
ल्लत्वे । अलिः । भ्रमरो वा । नखेनातिक्रामतीति नखयति तस्मात् । नखिः ।
सूचयतीति सूचिः । इत्यादि ॥

कुण्ठिकम्प्योर्नलोपश्च ॥ १४४ ॥ कुठिः । कपिः ॥ १४४ ॥
 सर्वधातुभ्यो मनिन् ॥ १४५ ॥ कर्म । चर्म । भस्म । जन्म ।
 शर्म । हेम । श्लेष्मा । तर्म । स्थाम । दाम । छद्म । सुत्रामा ॥ १४५ ॥
 वृहेर्नोऽच्च ॥ १४६ ॥ ब्रह्म ॥ १४६ ॥
 अशिशकिभ्यां छन्दसि ॥ १४७ ॥ अश्मा । शक्मा ॥ १४७ ॥

(१४४) कुण्ठति गतिं प्रतिहन्तीति कुठिः । पर्वतो वृक्षो वा । कम्प-
 तेऽसौ कपिः वानरो वर्णभेदो वा । कपिवर्णमस्यास्तोति कपिशः । कपिल-
 वर्णः । लोमादिपाठादत्र मत्वर्थीयः शप्रत्ययः ॥

(१४५) क्रियते तत् कर्म क्रिया वा । अर्द्धर्चादित्वादुभयलिङ्गः कर्म-
 शब्दः । कर्माणां कुरुते शुभम् । चरति गच्छति येन तच्चर्म । प्रसिद्धम् ।
 भसितं दीपितमिति यत्तद्भस्म । जायते यच्च तज्जन्म । उत्पत्तिः । शृणातीति
 शर्म । सुखं गृहं वा । हिनोति वर्धते येन तत् हेम । सुवर्णं वा । श्लिष्यतीति
 श्लेष्मा । कफोद्गावो वा । श्लेष्माऽस्यास्तोति पामादित्वान्मत्वर्थे नः
 प्रत्ययः । श्लेष्मणः । सिध्मादित्वात् । श्लेष्मलः । तरतीति तर्म यूपार्थं वा ।
 तर्मणी । तर्माणि । तिष्ठति येन तत् स्थाम । बलं वा । स्थामनी । ददातीति
 दाम । स्रग्वा । छादयतीति छद्म । माया वा । इस्मन्निति ह्रस्वत्वम् । सुष्ठु
 त्रायत इति सुत्रामा । आषति दहतीति, ऊष्म । अन्येषामपीति दीर्घे ।
 ऊष्मा । श्लेष्मर्तुर्वाष्पो वा ॥

(१४६) वृंहति वर्धते तद् ब्रह्म । ईश्वरो वेदस्तत्त्वं तपो वा ॥

(१४७) अश्नात्यश्नुते व्याप्नोति वा स, अश्मा । मेघः पाषाणी वा ।
 भाषायामपि दृश्यते । अश्मानं दृषदं मन्ये । शक्नोतीति शक्मा सूर्यो वा ॥

हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच् ॥ १४८ ॥ हरिमा । भरिमा ।
धरिमा । सरिमा । स्तरिमा । शरिमा ॥ १४८ ॥

जनिमृङ्भ्यामिमनिन् ॥ १४९ ॥ जनिमा । मरिमा ॥ १४९ ॥

वेजः सर्वत्र ॥ १५० ॥ वेमा ॥ १५० ॥

नामन्सीमन्व्योमन्रोमन्लोमन्पाप्मन्ध्यामन् ॥ १५१ ॥

(१४८) छन्दसीति वर्तते । हरति स हरिमा । कालो वा । भर्तुं यो-
ग्यो भरिमा । कुटुम्बं वा । ध्रियत इति धरिमा । रूपं वा । सरतीति सरिमा ।
वायुर्वा । स्तोयित आच्छाद्यत इति स्तरिमा । तल्पं वा । शृणातीति
शरिमा । प्रसवो वा ॥

(१४९) छन्दसीत्यनुवर्तते । जायत इति जनिमा । जन्म । म्रियत
इति मरिमा मृत्युः ॥

(१५०) वयति वस्त्राणि येन स वेमा । तन्तुवायदण्डः । वस्त्र-
निर्माणसामग्री वा । सर्वत्र वचनाच्छन्दसीति निवृत्तम् ॥

(१५१) सप्तामी मनिनन्ता निपात्यन्ते । म्नायतेऽभ्यस्यते येन तत्
नाम संज्ञा । स्वार्थे वार्तिकेन धेयट् । नामैव नामधेयम् । सिनोति बध्ना-
तीति सीमा । अवधिर्वा । व्ययति संवृणोतीति व्योम । अन्तरिक्षं वा ।
रौति शब्दयतीति रोम । लूयते छिद्यते तल्लोम । गात्रकेशा वा । पिवतीति
पाप्मा । क्लिबषं वा । धातोः पुक् । ध्यायते स ध्यामा परिमाणं । तेजो वा ।
बाहुलकात्—यक्षयति पूजयतीति यक्षमा । राजरोगो वा । सुब्रति प्रेरय-
तीति सोमा । चन्द्रो वा । हूयतेऽसौ हीमा । आहुतिर्वा । दधाति यद्यत्र
वेति धाम स्थानं तेजो वा ॥

मिथुने मनिः ॥१५२॥ सुशर्मा । सुधर्मा ॥१५२॥
 सातिभ्यां मनिन्मनिणौ ॥१५३॥ साम । आत्मा ॥१५३॥
 हनिमशिभ्यां सिकन् ॥१५४॥ हंसिका । मक्षिका ॥१५४॥
 कोररन् ॥ १५५ ॥ कवरः ॥ १५५ ॥
 गिर उडच् ॥ १५६ ॥ गरुडः ॥ १५६ ॥
 इन्देः कमिन्नलोपश्च ॥ १५७ ॥ इदम् ॥ १५७ ॥
 कायतेर्दिमिः ॥ १५८ ॥ किम् ॥ १५८ ॥

(१५२) यत्रोपसर्गो धातुक्रियया सम्बद्धस्तन् मिथुनम् । तस्मिन् सत्युक्तेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यश्च धातुभ्यो मनिः प्रत्ययः स्यान्नतु मनिन् । स्वर-भेदार्यो नियमः । सुष्ठु शृणातीति सुशर्मा । राजविशेषो वा । सुधरतीति सुधर्मा । इत्यादि ॥

(१५३) स्यति कर्माणि समापयतीति सामवेदभेदो वा । अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति व्याप्नोति वा स आत्मा । आत्मने हित-मात्मनोऽनम् ॥

(१५४) हन्तीति हंसिका । हंसस्त्री वा । मक्षति शब्दयतीति रोषं करोति वा सा मक्षिका । प्रसिद्धा । जातिर्वा ॥

(१५५) कौट्युपदिशतीति कवरः । पाठको वा । केशविन्यासः कवरो । अन्यत्र कवरा कन्या पाठिकेत्यर्थः ॥

(१५६) गिरति निगलतीति गरुडः । पक्षिभेदो वा ॥

(१५७) इन्दति परमैश्वर्यहेतुर्भवतीति, इदम् । प्रत्यक्षविषयबोधकः सर्वनामसंज्ञको वा ॥

(१५८) कायति शब्दयतीति किम् । प्रश्नाद्यर्थे वा ॥

सर्वधातुभ्यः घृन् ॥ १५९ ॥ वस्त्रम् । अस्त्रम् । छत्रम् ॥ १५९ ॥

भस्त्रिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिरच ॥ १६० ॥ भ्राष्ट्रः ।

गान्त्रम् । नान्त्रम् । हान्त्रम् । वेष्ट्रम् । आष्ट्रम् ॥ १६० ॥

दिवेद्युच्च ॥ १६१ ॥ द्यौत्रम् ॥ १६१ ॥

उषिखनिभ्यां कित् ॥ १६२ ॥ उष्ट्रः । खात्रम् ॥ १६२ ॥

सिविमुच्योष्टेरू च ॥ १६३ ॥ सूत्रम् । मूत्रम् ॥ १६३ ॥

(१५९) वस्त आच्छाद्यत इति वस्त्रम् । अस्यति क्षिपतीति, अस्त्रम् । छादयति घर्मादिक्रमपवारयतीति छत्रमिति प्रसिद्धम् । इस्मन्त्रन्नितिसूत्रेण ह्रस्वादेशः । यतति यो गच्छति येन वा तत्पत्रम् । वाहनं वा । राजतेऽसौ राष्ट्रः राष्ट्रं राज्यं देशो वा । जातिविशेषो वा । अग्रेऽपि । गच्छत्यनया सा गन्त्री । महच्छकटं वा । पित्रत्यनेन तत् पात्रम् । पाति रक्षतीति पात्रः सज्जनो वा । दशति यया सा दंष्ट्रा दन्तो वा । इत्यादि ॥

(१६०) भृञ्जति यजेति भ्राष्ट्रः । अम्बरोषो वा । गच्छति येन तद्गान्त्रम् । शकटं वा । नमति येन तन्नान्त्रम् । स्तोत्रं वा । हन्यते तत् हान्त्रम् । मरणं वा । विशन्ति यजेति वेष्ट्रम् । लोको वा । अश्नुते व्याप्नोतीति आष्ट्रम् । आकाशो वा ॥

(१६१) वृद्धिरित्यनुवर्तते । दीव्यति द्योतते प्रकाशते तद् द्यौत्रम् ॥

(१६२) ओषति दहत्युष्ट्रः । पशुजातिभेदो वा । खन्यते तत् खात्रम् । खनितम् । जलाधारविशेषो वा । जनसनखनामित्यात्वम् ॥

(१६३) सीव्यति येन यदर्थं बध्नाति तत् सूत्रम् । तन्तुः । शास्त्रैकदेशो वा । मुच्यते यत्तत् मूत्रम् । प्रस्रावो वा ॥

अमिचिमिशसिभ्यः ऋः ॥ १६४ ॥ अन्त्रम् । चित्रम् ।
मित्रम् । शस्त्रम् ॥ १६४ ॥

पुत्रो ह्रस्वश्च ॥ १६५ ॥ पुत्रः ॥ १६५ ॥

स्त्यायतेर्दृट् ॥ १६६ ॥ स्त्री ॥ १६६ ॥

गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यः स्त्रः ॥ १६७ ॥ गोत्रम् ।
गोत्रा । धर्त्रम् । वेत्रम् । पक्त्रम् । वक्त्रम् । यन्त्रम् । सत्रम् ।
क्षत्रम् ॥ १६७ ॥

(१६४) अमति जानाति प्राप्नोति येन तत् अन्त्रम् । उदरनाडी वा ।
चीयते तत् चित्रम् । चित्रा । नक्षत्रं वा । चैत्रो मासः । मिनोति मान्यं
करोतीति मित्रम् । मुहृद्वा । नित्यत्रपुंसकम् । क्वचित् पुल्लिङ्गो वा । शत्रो
मित्र इत्यादिषु । अयम्मित्रम् । इयम्मित्रम् । शोभनानि मित्राण्यस्याः
सन्तीति सुमित्रा तस्या अपत्यं सौमित्रिः । बाह्वादित्वादित् । शंसति द्विन-
स्तीति येन तत् शस्त्रम् । आयुधं वा ॥

(१६५) पुनाति पवित्रं करोतीति पुत्रः । आत्मजो वा ॥

(१६६) स्त्यायति शब्दयति गुणान् गृह्णाति वा सा स्त्री । प्रसिद्धा
भार्या वा ।

(१६७) गवते शब्दयत इति गोत्रम् । नाम । वंशो वा । गोत्रा पृथिवी ।
धरतीति धर्त्रम् । गृहं वा । वेति गच्छतीति वेत्रम् । लताविशेषो वा । पचति
येन यत्र वा तत् पक्त्रम् । गार्हपत्यं वा । वक्ति येन तद् वक्त्रम् । मुखं वा ।
यच्छति उपरमति येन तद्यन्त्रम् । कलाविशेषो वा । सीदन्ति यचेति
सत्रम् । यज्ञो वा । सतः सत्पुरुषान् चायते तत् सत्रमिति व्युत्पत्त्यन्तरम् ।
क्षद् सौत्रो धातुः । क्षदति रक्षतीति क्षत्रम् । वर्णभेदो वा । क्षतात्त्रायत इत्यपि ॥

हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन् ॥ १६८ ॥ होत्रम् । यात्रा । मात्रा ।
श्रोत्रम् । भस्त्रा ॥ १६८ ॥

गमेरा च ॥ १६९ ॥ गात्रम् ॥ १६९ ॥

दादिभ्यश्छन्दसि ॥ १७० ॥ दात्रम् । पात्रम् ॥ १७० ॥

भूवादिगृभ्यो णित्रन् ॥ १७१ ॥ भावित्रम् । वादित्रम् ।
गारित्रम् ॥ १७१ ॥

चरेर्वृत्ते ॥ १७२ ॥ चारित्रम् ॥ १७२ ॥

अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ ॥ १७३ ॥ अशित्रम् । वहित्रम् ।
धरित्री । त्रोत्रम् । वरुत्रम् ॥ १७३ ॥

(१६८) हुयत इति होत्रं होमः । यायत इति यात्रा गमनं वा ।
मातोति मात्रा । मानं भूषणं वा । श्रूयतेऽनेन तत् श्रोत्रम् । करणं वा ।
बिभस्ति दोष्यते यया सा भस्त्रा । अग्निज्वलनो वा ॥

(१६९) गच्छति चेष्टतेऽनेनेति गात्रम् । अवयवः । शरीरं वा ॥

(१७०) दाति लुनाति तत् दात्रम् । धान्यादिछेदनसाधनं वा ।
पिबत्यनेनेति पात्रम् । योग्यो भाजनं वा । पूर्वचापि पात्रमिति साधितम् ।
तत्र प्रत्ययस्य पित्वात्पात्री । ब्राह्मणीत्यपि साधितम् । क्षयति नश्यति
निवासहेतुर्भवतीति क्षेत्त्रम् । केदारः । कलत्रं वा । एवमन्येपि शब्दा द्रष्टव्याः ।

(१७१) भवतीति भावित्रम् । लोकत्रयो वा । वाद्यते तद्वादित्रम् ।
तूर्यादिर्वा । गीर्यते भक्ष्यते तद् गारित्रम् । ओदनो वा ॥

(१७२) चरतीति चारित्रम् । वृत्तान्तम् । समाचारो वा । इत्त्रच्प्रत्यये
चरिचं सुशीलम् ॥

(१७३) अश्यादिभ्य इत्रः । अशनुते व्याप्नोतीति अशित्रम् । चरुर्वा ।
कटतीति कटित्रम् । कवचभेदी वा । वहति येन तद्वहित्रम् । वाहनं वा ।
बध्नातीति बधित्रम् । कामो वा । धरतीति धरित्रो । पृथिवी वा । चादिभ्य
उचः । चायते येन तत्चोत्रम् । प्रहारो वा । लुनाति छिनत्ति येन तल्लोत्रम् ।
क्षोरचिन्हं वा । वृणोतीति वरुत्रम् । प्रावरणं वा ॥

अमेर्दिषति चित् ॥ १७४ ॥ अमित्रः ॥ १७४ ॥
 आः समिण्नि कषिभ्याम् ॥ १७५ ॥ समया । निकषा ॥ १७५ ॥
 चितेः कणः कश्च ॥ १७६ ॥ चिक्रणम् ॥ १७६ ॥
 सूचेः स्मन् ॥ १७७ ॥ सूक्ष्मम् ॥ १७७ ॥
 पातेर्दुम्सुन् ॥ १७८ ॥ पुमान् ॥ १७८ ॥
 रुचिभुजिभ्यां किष्यन् ॥ १७९ ॥ रुचिष्यम् । भुजिष्यः ॥ १७९ ॥
 वसेस्तिः ॥ १८० ॥ वस्तिः ॥ १८० ॥

(१७४) शत्रौ वाच्येऽमेरितः । अमति गच्छतीति अमित्रः । शत्रुः ॥
 (१७५) समेतीति समया । निकषति हिनस्तीति निकषा । समीपवा-
 चकौ वा । स्वरादिपाठादनयोरव्ययत्वम् । बाहुलकाद्—दीव्यतीति दिवा ।
 दिनं वा । दुष्यतीति दोषा । रात्रिर्वा । अनयोरपि तत्रैव पाठादव्ययत्वम् ।
 स्वदते स्वादु क्रियते या सा स्वधा । न्यायेनैश्वर्यक्रिया । तृप्तिर्वा । धातोर्दस्यधः ॥
 (१७६) चेतति जानाति येन तत् चिक्रणम् । स्निग्धं वा ॥
 (१७७) सूचयति पैशुन्यं करोतीति सूक्ष्मम् । अत्यल्पं वा ॥
 (१७८) पाति रक्षतीति पुमान् । पुमांसौ । पुमांसः । असुडादि-
 कार्यम् । शोभनः पुमान् यस्याः सा सुपुंसौ । असुड् । उगितत्वान् डोप् ॥
 . (१७९) रोचते तत्, रुचिष्यम् । इष्टं वा । भुनक्तीति भुजिष्यः । दासे वा ॥
 (१८०) वस्त आच्छादयति सा वस्तिः । वसनस्य दशाः कोणी नाभे-
 रधोभागो वा । बाहुलकात्—शास्ति शिञ्जत इति शास्तिः । राजदण्डो वा ।
 यजतीति यष्टिः । यष्टी वा । काष्ठदण्डो वा । अस्यते क्षिप्यते या सा, अस्तिः ।
 अगं वृक्षमस्यत्युत्पादयति सः अगस्तिः । मुनिर्वा । तस्यापत्यमागस्त्यः ।
 शकन्धादित्वाद्वा पररूपम् । पुलं महत्त्वमसते गच्छति प्राप्नोतीति पुनस्तिः ।
 ऋषिर्वा । तस्यापत्यं पौलस्त्यः । गभमन्धकारमस्यतीति गभस्तिः । किरणो वा ।
 दूयते परितापयतीति दूतिः । दूती वा । इतस्ततः समाचारज्ञापिका स्त्री वा ॥

सावसेः ॥ १८१ ॥ स्वस्ति ॥ १८१ ॥

वौ तसेः ॥ १८२ ॥ वितस्तिः ॥ १८२ ॥

पदिप्रथिभ्यां नित् ॥ १८३ ॥ पत्तिः । प्रथितिः ॥ १८३ ॥

दृणातेर्द्विस्वः ॥ १८४ ॥ दृतिः ॥ १८४ ॥

कृतृकपिभ्यः कीटन् ॥ १८५ ॥ किरीटम् । तिरीटम् । कृपीटम् ॥ १८५ ॥

रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच् ॥ १८६ ॥ रुचितम् । उचि-
तम् । कुचितम् । कुटितम् ॥ १८६ ॥

कुटिकुपिभ्यां क्मलन् ॥ १८७ ॥ कुट्मलम् । कुप्मलम् ॥ १८७ ॥

(१८१) सुष्टु, अस्ति वर्तत इति स्वातो । कल्याणं वा । बहुलव-
चनाद्-भूमावनिषेधः । स्वरादित्वादव्ययत्वं च ॥

(१८२) विशेषेण तस्यत्युपनिषति वा सा वितस्तिः । द्वादशाङ्गुलं
परिमाणं वा ॥

(१८३) पद्यते गच्छत्यनौ पतिः । पदातिः । पुरुषो वा । प्रथ्यते या
सा प्रथितिः । प्रख्यातिर्वा । तितुचेति सूत्रेऽग्रहादीनामिति वार्तिकेनेट् ॥

(१८४) दीर्यतेऽसौ दृतिः । चर्ममयं पात्रं वा ॥

(१८५) किरति विक्षिपतीति किरीटम् । मुकुटं । शिरोवेष्टनं वा ।
तरतीति तिरीटम् । शिरोवेष्टनम् । लोभो वा । कल्पतेऽसौ कृपीटम् । कुक्षिशदकं
वा । बाहुलकादच लत्वाभावः ॥

(१८६) रोचते तत् रुचिरम् । मिष्टं वा । वक्तुं योग्यमुचितम् । योग्यं
वा । कीचति शब्दतारं करोतीति कुचितम् । परिमितं वा । कुटतीति
कुटितम् । कुटिलं वा ॥

(१८७) कुटतीति कुट्मलम् । मुकुलम् (फूलतो हुई कली) इतिप्र-
सिद्धम् । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुप्मलम् । पर्णं वा ॥

कुपेलंश्च ॥ १८८ ॥ कुल्मलम् ॥ १८८ ॥

सर्वधातुभ्योऽसुन् ॥ १८९ ॥ चेतः । सरः । सदः ॥ १८९ ॥

रपेरत एञ्च ॥ १९० ॥ रेपः ॥ १९० ॥

(१८८) कुन्नातीति कुल्मलम् ! पापं वा ॥

(१८९) वर्चते दीप्यतेऽसौ वर्चः । तेजः । पुरीषं वा । रक्षतीति रक्षः । पालको दुष्टो वा । प्रज्ञादित्वादणि स एव राक्षसः । रुणद्धि येन स रोधः । तटो वा ! चेतति जानाति येन तत्, चेतः । चित्तं वा । सरन्ति गच्छन्त्यापो यच्च तत् सरः । तडागो वा । स्तोत्रविवक्षायां गौरादित्वात्सरसी । महासरो वा । सरस्वान् समुद्रः । सरो विज्ञानमुदकं वा विद्यतेऽस्यां सा सरस्वती । वाक् । नदी वा । रोदतीति रोदः । गौरादित्वाद्रोदसी । द्यावापृथिव्यौ वा । वेति गच्छतीति वयः । कालकृताऽवस्था वा । अथवा वेति खादतीति वयः । वय एव वायसः काकः । प्रज्ञादित्वादण् । सीदन्त्यचेति सदः । सभा वा । एति प्राप्नोतीति, अयः । लोहं वा । अयः कामयतेऽसावयस्कान्तश्चुम्बकमणिः । अनिति जीवति येनेति अनः । ओदनं पक्वान्नं वा । अनो महत्सम्पद्यते यत्र तन्महानसम् । पाकस्थानम् । समासान्तपृच् । ताम्यति काङ्क्षति येन तत् तमः । गुणः क्लेशो रात्रिरन्धकारो वा । तमशब्दोऽचप्रत्ययान्तोऽदन्तोऽपि टृश्यते । महति पूजयति पूज्यो भवति वेति महः । महद्वा । महसी । महंसी । अचप्रत्ययेऽकारान्तोऽपि । सहते यचेति सहः । बलं । मार्गशीर्षो वा । सहसा बलेन सह प्रवर्तते स साहसिको दस्युर्दुष्टकर्मा वा । सहो बलं विद्यते यचेति सहस्यः । पौषो मासः । तपति दुःखीभवति तप्यते समर्थो वा भवति येन तत् तपः । धर्मसेवनम् । माघमासो वा । तपसि साधुस्तपस्यः । फाल्गुनो मासः । ग्रीष्मेऽकारान्तस्तपशब्दः । मिमीते येन स माः । मासो वा । इत्यादि ॥

(१९०) रप्यत उच्यत इति रेपः । अवद्यम् । वचो वा । बहुलवचनादन्यत्रापि । पीयते तत् पयः । उदकम् । दुग्धं वा । पयोऽस्या अस्तीति पयस्विनी गौः । पयस्वो तडागः । विनिः । धातोरीत्वम् । पुनर्गुणोऽसत्ययादेशः ॥

अशोर्देवने युट् च ॥ १९१ ॥ यशः ॥ १९१ ॥
 उब्जेर्बले बलोपश्च ॥ १९२ ॥ ओजः ॥ १९२ ॥
 श्वेः सम्प्रसारणं च १९३ ॥ शवः ॥ १९३ ॥
 श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किञ्च ॥ १९४ ॥ शिरः ॥ १९४ ॥
 अर्तेरुञ्च ॥ १९५ ॥ उरः ॥ १९५ ॥
 व्याधौ शुट् च ॥ १९६ ॥ अर्शः ॥ १९६ ॥
 उदके नुट् च ॥ १९७ ॥ अर्णः ॥ १९७ ॥
 इण आगसि ॥ १९८ ॥ एनः ॥ १९८ ॥

(१९१) अश्रयते दीव्यते क्रीडादि क्रियते येन तत्, यशः । कीर्तिर्वा ॥

(१९२) उज्जति कोमलो भवतीति ओजः । पराक्रमो वा । ओजसा वर्तते औजसिकः । ठक् ॥

(१९३) श्रयति गच्छतीति शवः । मृतकशरीरं वा । बाहुलकात्—
 वहति यत् इति उधः । गवादेर्दुग्धस्थानं वा । धातोः सम्प्रसारणे कृते
 दीर्घत्वं धकारश्चान्तादेशः । घट इवोधो यस्याः सा घटोध्नी । कुण्डोध्नी ।
 गौर्महिषो वा ॥

(१९४) श्रियत आश्रियते तत् शिरः । मस्तकम् । शिरसी । शिरांसि ॥

(१९५) स्वाङ्ग इत्यनुवर्तते । ऋच्छति प्राप्नोति येन तत्, उरः ।
 हृदयस्थानं वा । पिच्छादित्वादिलच् । बहूरोऽस्यास्तोत्युरसिलः ॥

(१९६) ऋच्छति प्राप्नोति दुखं येन तत्, अर्शः । गुदरोगो वा ।
 अर्शोऽस्यास्तोत्यर्शसः पुमान् । अर्श आदित्वादच् ॥

(१९७) अर्तेरित्येव । ऋच्छति गच्छतीत्यर्णो जलम् । अर्णोऽस्मिन्-
 स्तोत्यर्णवः समुद्रः । वप्रत्यये सलोपः ॥

(१९८) ईयते प्राप्यते दुःखमनेन तदेनः । पापं वा ॥

रिचैर्धने धिञ्च ॥ १९९ ॥ रेक्णः ॥ १९९ ॥

चायतेरन्ने ह्रस्वश्च ॥ २०० ॥ चनः ॥ २०० ॥

वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च ॥ २०१ ॥ वर्षः । शेषः । २०१ ॥

सुरिभ्यां तुट् च ॥ २०२ ॥ स्रोतः । रेतः ॥ २०२ ॥

पातेर्बले जुट् च ॥ २०३ ॥ पाजः ॥ २०३ ॥

उदके थुट् च ॥ २०४ ॥ पाथः ॥ २०४ ॥

अन्ने च ॥ २०५ ॥ पाथः ॥ २०५ ॥

अदेर्नुम् धौ च ॥ २०६ ॥ अन्धः ॥ २०६ ॥

(१९९) रिणक्ति व्ययं करोति यत् तत् रेक्णः । सुवर्णं वा ।
घित्वात्कुन्त्वम् ॥

(२००) चायते पूज्यतेऽनेन तत् चनो भक्तम् । प्रत्ययस्य नुडागमे
सति यलोपो ह्रस्वश्च ॥

(२०१) विप्रयते स्वीक्रियते तत् वर्षोरूपम् । शेषे येन तत् शेषः ।
लिङ्गेन्द्रियं वा । अकारान्तोऽपि मेढ्रवाची शेषशब्दो दृश्यते । शुन इव
शेषोऽस्य स शुनः शेषो मुनिः । षष्ठ्या अलुक् । बाहुलकात्—वर्णव्यत्यये
वर्षः । शेष इत्यपि सिद्धम् ॥

(२०२) स्रवति चलतीति स्रोतः । स्वतो जलक्षरणं वा । रीयते
स्रवतीति रेतः । वीर्यं वा ॥

(२०३) पाति रक्षतीति पाजः । बलं वा ॥

(२०४) पातेरेव । पातीति पाथो जलम् ॥

(२०५) थुट् । पाति रक्षतीति पाथो भक्तम् ॥

(२०६) अन्न इत्यनुवर्तते । अद्यते भक्ष्यते तदन्धोऽन्मोदनो वा ॥

स्कन्देश्च स्वाङ्गे ॥ २०७ ॥ स्कन्धः ॥ २०७ ॥

आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा ॥ २०८ ॥ अप्रः ।

अपः । आपः ॥ २०८ ॥

रूपे जुट् च ॥ २०९ ॥ अब्जः ॥ २०९ ॥

उदके नुम्भौ च ॥ २१० ॥ अम्भः ॥ २१० ॥

नहेर्दिवि भश्च ॥ २११ ॥ नभः ॥ २११ ॥

इण आगोऽपराधे च ॥ २१२ ॥ आगः ॥ २१२ ॥

अमेर्हुक् च ॥ २१३ ॥ अंहः ॥ २१३ ॥

रमेश्च ॥ २१४ ॥ रंहः ॥ २१४ ॥

(२०७) स्कन्दते गच्छति चेष्टते शुष्यति वा येन तत् स्कन्धो वा-
हुमूलं वृक्षावयवो वा । अकाराऽन्तोप्ययम् ॥

(२०८) आप्यते सुखं येन तत् अप्रः । अपः । अपत्यं सुकर्म वा ।
ह्रस्वस्यापि विकल्पे । आप इत्यपि भवति । आपोभिर्मार्जनमित्यादि सत्प्र-
योगदर्शनात् ॥

(२०९) आप इत्येव । आप्यते यत् तदब्जो रूपम् । अदृम्यो जात
इति निर्वचने अब्जः । कमलं वा ॥

(२१०) आप इत्येव । आप्यते तत् अम्भः । उदकम् । अम्भसां
वर्तत इत्याम्भसिको मत्स्यः ॥

(२११) नह्यति घर्मं बध्नातीति नभो मेघधूल्यादियुक्त आकाशः ।
आवणमासी वा । नभोऽस्मिन् शुद्धमस्तीति नभस्यो भाद्रो मासः ॥

(२१२) ईयते प्राप्यते ज्ञायते वा तत्, आगोऽपराधो दण्डो वा ॥

(२१३) अमान्ति प्राप्नुवन्ति दुःखं येन तत्, अंहः । पापं वा ॥

(२१४) चात्—हुक् । रमते येन तत् रंहः । वेगो वा ॥

देशोऽह च ॥ २१५ ॥ रहः ॥ २१५ ॥

अत्रच्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च ॥ २१६ ॥ अङ्कः । अङ्गः ।
योगः । भर्गः ॥ २१६ ॥

भूरञ्जिभ्यां कित् ॥ २१७ ॥ भुवः । रजः ॥ २१७ ॥

वसेर्णित् ॥ २१८ ॥ वासः ॥ २१८ ॥

चन्देरादेश्च छः ॥ २१९ ॥ छन्दः ॥ २१९ ॥

पचिवचिभ्यां सुट् च ॥ २२० ॥ पक्षः । दक्षः ॥ २२० ॥

(२१५) चाद्रमेरसुत् । रमन्तेऽस्मिन्निति रहः । एकान्तो विश्वासदेशो
वा । रह एकान्ते भवं रहस्यम् । वेदान्तं वा । देशादन्यत्र रहोऽव्ययं शब्दान्तरं
वास्ति । रहो मैथुनसमयस्तत्र भवं रहस्यं मैथुनम् । दिगादित्वादित् ॥

(२१६) अञ्चति गच्छति येन तत् अङ्कः । सङ्ख्याद्योतकं चिन्हं वा ।
अनक्ति व्यक्तीकरोतीति अङ्गः । पक्षो वा । अवयवेऽङ्गशब्दोऽदन्तः ।
युज्यते स योगः । समाधिः । कालो वा । भर्जति पक्वं भवतीति भर्गः ।
प्रजापतिः । तेजो वा । बाहुलकात्—उच्यते यत्र तत् ओकः । स्थानं वा ।
न्यङ्कादित्वात् कुत्वम् ॥

(२१७) भवन्ति यस्मिन्निति भुवः । अन्तरिक्षं वा । रजति तत्
रजः । लोकः । सूक्ष्मधूलिः । स्त्रीपुष्पम् । गुणो वा । आकारान्तश्च ॥

(२१८) वस्त आच्छादयति शरीरादिकमनेन तत् वासो वस्त्रं वा ।
असुनो णिद्वद्वावाट्टुः ॥

(२१९) चन्दति हृष्यति येन दीप्यते वा तत् छन्दः । गायत्र्यादि ।
कपटमिच्छाऽभिप्रायो वशो वा । छन्दानुवृत्तिः । इत्यादि प्रयोगदर्शना-
दकारान्तोऽप्ययं शब्द इति मन्तव्यम् ॥

(२२०) पचतीति पक्षः । पूर्वोत्तरपक्षौ वा । वक्ति येन तद्वक्षः । हृदयं वा ॥

वहिहाधाऽभ्यश्छन्दसि ॥ २२१ ॥ वक्षाः । हासाः । धासाः । २२१ ॥
 इणश्चासिः ॥ २२२ ॥ अयाः ॥ २२२ ॥
 मिथुनेऽसिः ॥ २२३ ॥ सुपयाः । सुयशाः ॥ २२३ ॥
 नञि हन एह च ॥ २२४ ॥ अनेहाः ॥ २२४ ॥
 विधाजो वेध च ॥ २२५ ॥ वेधाः ॥ २२५ ॥
 नुवो धुट् च ॥ २२६ ॥ नोधाः ॥ २२६ ॥
 गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च ॥ २२७ ॥
 सुतपाः । जातवेदाः ॥ २२७ ॥

(२२१) सुट् । वहति भारमिति वक्षाः । अनड्वान् वा । हीयते
 हीनो भवतीति हासाः । चन्द्रमा वा । दधातीति धासाः । पर्वतो वा ॥

(२२२) एति प्राप्नोति अयाः । अग्निर्वा । स्वरादिषट्ठादव्ययम् ।
 अत एव दीर्घादिगमिः प्रत्ययः ॥

(२२३) यच्चेपसर्गौ धातुक्रियया संयुक्तस्तन्मिथुनम् । तत्र सति येभ्यो
 धातुभ्योऽसुन् विधीयते तेभ्यः सर्वेभ्योऽसिरेव स्यात् । स्वरभेदार्थं सूचनिदम् ।
 सुपयाः । सुतपाः । सुपेशाः । न्योजाः । सुजवाः । सुस्रोताः । इत्यादयो द्रष्टव्याः ॥

(२२४) न हन्यते विच्छिन्ने न भवतीत्यनेहाः । कालो वा । अने-
 हसौ । अनेहसः ॥

(२२५) विशेषेण दधातीति वेधाः । वेधसौ । वेधसः । वेधसम् ।
 विद्वान् । विधाता । जगदीश्वरो वा ॥

(२२६) नौति स्तौति नूयते स्तूयते वा स नोधाः । ऋषिर्वा ॥

(२२७) गतिकारकोपपदाद्वातोऽसिः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति
 गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । उत्तरपदप्रकृतिस्वरस्यापवादः ।
 सुतपाः । सुतेजाः । सुवक्षाः । कारके । उग्रतेजाः । हिरण्यरेताः । जात-
 वेदाः । सर्ववेदाः । विश्ववेदाः । वृद्धेभ्यः शृणोतीति वृद्धश्रवाः । विष्टर
 आसने शृणोतीति विष्टरश्रवाः । इत्यादि ॥

चन्द्रे मो ङित् ॥ २२८ ॥ चन्द्रमाः ॥ २२८ ॥

वयसि धाजः ॥ २२९ ॥ वयोधाः ॥ २२९ ॥

पयसि च ॥ २३० ॥ पयोधाः ॥ २३० ॥

पुरसि च ॥ २३१ ॥ पुरोधाः २३१ ॥

पुरूरवाः ॥ २३२ ॥

चक्षेर्वहुलं शिञ्च ॥ २३३ ॥ नृचक्षाः । २३३ ॥

उषः किञ्च ॥ २३४ ॥ उपः । २३४ ॥

दमेरुनसिः ॥ २३५ ॥ दमुनाः । २३५ ॥

(२२८) चन्द्रमानन्दं मिमीतेऽसौ चन्द्रमाः । सोमो वा । चन्द्रमसौ ।
चन्द्रमसः ॥

(२२९) वयो दधातीति वयोधाः । तक्षणी वा ॥

(२३०) धाज इत्येव । पयो दधतीति पयोधाः । समुद्रो वा । मेघ-
विशेषः । स्तनो वा ॥

(२३१) धाज इत्येव । पुरोऽग्रे यजमानं दधातीति पुरोधाः । पुरोहितो वा ॥

(२३२) पुरु बहु रौत्युपदिशति ब्रवीति वा स पुरूरवाः । राजर्षिर्वा ॥

(२३३) विशेषेण चष्टेऽसौ विचक्षाः । उपाध्यायो वा । नृन् चष्टे
पश्यति ख्याति वा स नृचक्षाः । ईश्वरो दुष्टो वा । शित्वाभावपक्षे ।
आचष्टेऽसौ । आख्याः । प्रख्याः । प्रजापतिर्वा ॥

(२३४) असिः । आपति दहतीति उपः । कर्णछिद्रं । पर्वतभेदः ।
स्त्रियां सूर्योदयात्प्राक् प्रभातप्रकाशः । उषा वा । उपः काले बुध्यत इत्युपबुधः ।
अग्निर्वा । संयमी वा । कप्रत्ययान्ताट्टापि कृते । उषा रात्रिरित्यपि भवति ॥

(२३५) दाभ्यत्युपशमयतीति दमुनाः । अग्निर्वा ॥

अङ्गेरसिः ॥ २३६ ॥ अङ्गिराः । २३६ ॥

सर्त्तेरप्पूर्वादसिः ॥ २३७ ॥ अप्सराः ॥ २३७ ॥

विदिभुजिभ्यां विश्वेऽसिः ॥ २३८ ॥ विश्ववेदाः । विश्व-
भोजाः ॥ २३८ ॥

वशोः कनसिः ॥ २३९ ॥ उशनाः । २३९ ॥

इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ॥

—:0:—

(२३६) अङ्गति प्राप्नोति जानाति वा स, अङ्गिराः । ईश्वरोऽग्निर्ऋ-
षिभेदो वा । तस्यापत्यमाङ्गिरसः । असिप्रत्ययस्य रुडागमः ॥

(२३७) अप्सरांति विरुदं गच्छतीत्यप्सराः । उपसर्गान्त्यलोपः ।
अथवाऽप्सु जलेषु प्राणेषु वा सरन्तीत्यप्सरसः । किरणा वा । अथवा न
प्सान्ति भक्षयन्ति रक्षां कुर्वन्तीत्यप्सरसः । प्रत्ययस्य रुट् । नित्यबहु-
वचनान्तः स्त्रीलिङ्गश्च ॥

(२३८) विश्वं सर्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः । जगदीश्वरो वा ।
विश्वे विद्यते विश्वं वा विन्दति स विश्ववेदाः । अग्निर्वा । विश्वं भुनक्ति ।
प्रलयसमये कारणरूपेण स्वात्मनि स्थापयति वा विश्वं पालयतीति विश्व-
भोजाः । ईश्वरो राजा वा ॥

(२३९) वष्टि कामयते स उशनाः । शुक्रवारो वा । सम्प्रसार-
णादिकार्यम् ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे चतुर्थः पादः ॥

—:0:—

अदिभुवो डुतच् ॥ १ ॥ अद्भुतम् । १ ॥

गुधेरूमः ॥ २ ॥ गोधूमः । २ ॥

मसेरूरन् ॥ ३ ॥ मसूरः । ३ ॥

स्थः किञ्च ॥ ४ ॥ स्थूरः । ४ ॥

पातेरतिः ॥ ५ ॥ पातिः । ५ ॥

वातेर्नित् ॥ ६ ॥ वातिः । ६ ॥

अर्त्तेश्च ॥ ७ ॥ अरतिः ॥ ७ ॥

तृहेः क्रो हलोपश्च ॥ ८ ॥ तृणम् ॥ ८ ॥

वृज्जलुटितनिताडिभ्य उलच् तण्डश्च ॥ ९ ॥ तण्डुलाः ॥ ९ ॥

(१) अदित्यव्ययं कदाचिदर्थे । अद् भवतीत्यद्भुतम् । आश्चर्यम् ।
अद्भुतमधीते । अद्भुताध्यापकः ॥

(२) गुध्यति वेष्टयतीति गोधूमः । अन्नविशेषो वा । गोधूमस्य विकारो
गोधूममयः ॥

(३) मस्यति परिणमतेऽसौ मसूरः । ब्रीहिभेदो वेश्या वा ॥

(४) तिष्ठतीति स्थूरः । मनुष्यो वा । तस्यापत्यं स्थौर्यः ॥

(५) पाति रक्षतीति पातिः । स्वामी । सम्पातिः । पक्षिराजो वा ॥

(६) वाति गच्छतीति वातिः । सूर्यश्चन्द्रो वा ॥

(७) अर्यते गम्यते सा अरतिः । उद्वेगो वा ॥

(८) तृह्यते हन्यते तत्, तृणम् । प्रसिद्धमेव ॥

(९) त्रियन्ते लुब्धन्ते तन्यन्ते ताड्यन्ते वा ते तण्डुलाः । प्रसिद्धा वा ।
वृजादीनां स्थाने तण्डादेशः ॥

दंसेष्टनौ न आ च ॥ १० ॥ दासः ॥ १० ॥

दंशेश्च ॥ ११ ॥ दाशः ॥ ११ ॥

उदि चेर्देसिः ॥ १२ ॥ उच्चैः ॥ १२ ॥

नौ दीर्घश्च ॥ १३ ॥ नीचैः ॥ १३ ॥

सौ रमेः को दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः ॥ १४ ॥ सूरतः ॥ १४ ॥

पूजो यण् एग्नस्वश्च ॥ १५ ॥ पुण्यम् ॥ १५ ॥

संसते शिः कुट् किञ्च ॥ १६ ॥ शिक्वम् ॥ १६ ॥

अर्त्तेः क्युरुञ्च ॥ १७ ॥ उरणः ॥ १७ ॥

(१०) दंसयति दर्शाति पश्यति वा स दासः । सेवकः शूद्रो वा ।
टित्वान् डीप् । दासी । नकारस्याकारः । नित्करणं पक्ष आद्युदात्तार्थम् ॥

(११) टटनौ नकारस्य चात्वम् । दशति मत्स्यादिकमिति दाशो
धीवरः । स्त्रियां दाशी । धीवरी ॥

(१२) उच्चीयते वर्धयतेऽसावुच्चैः । महान् वा । स्वरादित्वादव्ययम् ॥

(१३) चेरित्येव । निचीयत इति नीचैः । अधोऽधमो वा । अस्यापि
स्वरादित्वादेवाव्ययत्वम् ॥

(१४) सुष्ठु रमत इति सूरतः । उपशान्तः । कृपालुर्वा । दमार्था-
दन्यत्र सुरतः । क्रीडायुक्तः ॥

(१५) पवते पवित्रो भवति येन तत् पुण्यम् । सुकृतो धर्मो वा ॥

(१६) संसते गच्छतीति शिक्वम् । काचः । छाँका इति प्रसिद्धः ।
तत्र धृतं वस्तु शैक्वम् ॥

(१७) ऋच्छति गच्छतीति उरणः । मेषो वा ॥

हिंसेरीरन्नीरचौ ॥ १८ ॥ हिंसीरः ॥ १८ ॥

उदि.ट्टणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च ॥ १९ ॥ उदरम् ॥ १९ ॥

डित्खनेर्मुट् चोदात्तः ॥ २० ॥ मुखम् ॥ २० ॥

अमेः सन् ॥ २१ ॥ अंसः ॥ २१ ॥

मुहेः खो मूर्च ॥ २२ ॥ मूर्खः ॥ २२ ॥

नहेर्लोपश्च ॥ २३ ॥ नखः ॥ २३ ॥

शीङो ह्रस्वश्च ॥ २४ ॥ शिखा ॥ २४ ॥

माङ ऊखो मय च ॥ २५ ॥ मयूखः ॥ २५ ॥

(१८) हिंसीरन्नीरचौ । व्याघ्रो दुष्टो वा । प्रत्ययद्वयं स्वरभेदार्थम् ॥

(१९) उद् ट्टणाति येनान्मिति उदरम् । कुक्षिस्थानम् । प्रत्यय-
भेदोऽत्रापि स्वरभेदार्थः ॥

(२०) खनेरलचौ । तयोर्दित्वं धातोर्मुडागमश्च । तस्योदात्तत्वम् ।
खनत्यन्नादिकमनेनेति मुखमांस्यम् । मुखे भवो मुख्यो रोगः । शरीरावय-
वाद्यत् । मुखमिवोत्तमं मुख्यम् । शाखादित्वादिवार्थे यः ॥

(२१) अमति गच्छति प्राप्नोति येन स, अंसः । स्कन्धो विभागो
वा । अंसीऽस्यास्तोत्र्यमलः ॥

(२२) मुह्यति विक्षिप्त इव भवतीति मूर्खः । मूर्खस्य भावो मौर्ख्यं ।
मूर्खिमा वा । बाहुलकात्—खस्येनादेशाभावः ॥

(२३) नहति बध्नाति रुधिरादिकमिति नखः । प्राण्यङ्गं वा ॥

(२४) खः । शिखेऽसौ शिखा । चूडाकेशभेदो ज्वाला वा । ह्रस्ववि-
धानसामर्थ्याद् गुणाऽभावः ॥

(२५) मिमीते मान्यहेतुर्भवतीति मयूखः । किरणः । कान्तिः । करो
ज्वाला वा ॥

कलिगलिभ्यां फगस्योच्च ॥ २६ ॥ कुल्फः । गुल्फः ॥ २६ ॥
 स्पृशोः श्वण्शुनौ पृ च ॥ २७ ॥ पार्श्वः । पर्शुः ॥ २७ ॥
 श्मनि श्रयतेर्डुन् ॥ २८ ॥ श्मश्रु ॥ २८ ॥
 अश्वादयश्च ॥ २९ ॥ अश्रु ॥ २९ ॥
 जनेष्टन् नलोपश्च ॥ ३० ॥ जटा ॥ ३० ॥
 अच् तस्य जङ्घ च ॥ ३१ ॥ जङ्घा ॥ ३१ ॥
 हन्तेः शरीरावयवे द्वे च ॥ ३२ ॥ जघनम् ॥ ३२ ॥
 क्लिशोरन् लो लोपश्च ॥ ३३ ॥ केशः ॥ ३३ ॥

(२६) कलिं संख्यातीति कुल्फः । शरीरावयवो रोगो वा । गलिं भक्षयतीति गुल्फः । पादग्रन्थिर्वा ॥

(२७) स्पृशति येन स पार्श्वः । कक्षयोरधोभागो वा । पर्शुः । आयुधं वा ॥

(२८) श्मनि मुखे श्रयतीति, श्मश्रु । श्मश्रुणो । श्मश्रूणि । पुरुषमुखरोमाणि वा ॥

(२९) अश्रुते व्याप्नोतीति, अश्रु । नेत्रजलं वा । दुन् प्रत्ययो रुडागमश्च । एवमन्येऽपि यथायोग्यं द्रष्टव्याः ॥

(३०) जायतेऽसौ जटा । दीर्घाः केशा वा । जटा अस्य सन्तीति जटालः । सिध्मादित्वाल्लच् । जटिलः । पिच्छादित्वादिलच् ॥

(३१) तस्य जनेः । जायतेऽसौ जङ्घा । जानोरधोभागो वा ॥

(३२) हन्ति येन यद् वा हन्यते तज्जघनम् । जानोरुपरिभागो वा । इवार्थे शाखादित्वाद्यः । जघनमिव जघन्यं नीचम् ॥

(३३) क्लिश्यति येन स केशः । शिरलोमानि वा । केशा अस्य सन्तीति केशवः । केशिकः । केशो ॥

फलेरितजादेश्च पः ॥ ३४ ॥ पलितम् ॥ ३४ ॥

कृत्रादिभ्यः संज्ञायां वुन् ॥ ३५ ॥ करकः । कटकः । नरकम् ।
कोरकः ॥ ३५ ॥

चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च ॥ ३६ ॥ कीचकः । ३६ ॥

पचिमव्योरिच्चोपधायाः ॥ ३७ ॥ पेचकः । मेचकः । ३७ ॥

जनेररष्ठ च ॥ ३८ ॥ जठरम् । ३८ ॥

वचिमनिभ्यां चिच्च ॥ ३९ ॥ वठरः । मठरः । ३९ ॥

उर्जिष्टृणातेरलचौ ॥ ४० ॥ उर्दरः । ४० ॥

(३४) फलति निष्पन्नं पक्वमिव भवतीति पलितम् । केशश्चित्यं वा ।
फस्य पः ॥

(३५) करोतीति करकः । करंका । वृष्टिपाषाणो वा । करको दा-
डिमः । कमण्डलुर्वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटकः । बाहुभूषणम् ।
शिखरो वा । नृणाति नयतीति नरकम् । पापभागो वा । सरति गच्छतीति
सरकम् । गमनं वा । अलति भूषितो भवतीत्यलकम् । शीतादिकं वा ।
अलति वारयति येभ्यस्तेऽलकाः । कुटिलाः केशा वा । कुरति शब्दयतीति
कोरकः । कलिका (कली) इति प्रसिद्धा ॥

(३६) चीकयते सहतेऽसौ कीचकः । वंशभेदो वा ॥

(३७) पचतीति पेचकः । उलूकपक्षी वा । मचते शब्दयतीति मे-
चकः । कृष्णवर्णो मयूरपक्षिचिन्हं वा ॥

(३८) जायतेऽस्मादिति जठरम् । उदरम् । कठिनं वा ॥

(३९) अन्त्यस्य ठः । वक्तीति वठरः । मुखो वा । मन्यतेऽसौ मठरः ।
मुनिभेदो मतो वा । तस्यापत्यं माठरः । माठर्यः ॥

(४०) ऊर्कः पराक्रमं रसं वा टृणातीति, उर्दरः । शूरो दुष्टो वा ।
स्वरभेदार्थं प्रत्ययद्वयम् ॥

कृदरादयश्च ॥ ४१ ॥ कृदरः । मृदरः । सृदरः । ४१ ॥

हन्तेर्युन्नाद्यन्तयोर्धत्वतत्वे ॥ ४२ ॥ घातनः । ४२ ॥

क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन् वृद्धिश्च ॥ ४३ ॥ क्रान्तुः । गान्तुः ।
क्षान्तुः ॥ ४३ ॥

हर्यतेः कन्यन् हिरच् ॥ ४४ ॥ हिरण्यम् ॥ ४४ ॥

कृत्रः पासः ॥ ४५ ॥ कर्पासः ॥ ४५ ॥

जनेस्तुरश्च ॥ ४६ ॥ जर्तुः ॥ ४६ ॥

ऊर्णोतेर्डः ॥ ४७ ॥ ऊर्णा ॥ ४७ ॥

(४१) कृत्स्नं दृष्ट्वातीति कृदरः । कुशूलो वा । मृदं दृष्ट्वातीति
मृदरः । व्याधिर्विलं वा । सृष्टिं दृष्ट्वातीति सृदरः सर्पः ॥

(४२) हन्तीति घातनः । मारको वा ॥

(४३) क्रामति पादान् विक्षिपतीति क्रान्तुः । पक्षी वा । गच्छ-
तीति गान्तुः । पथिको वा । आगान्तुरभ्यागतः । क्षमतेऽसौ क्षान्तुः ।
सहजशीलो वा ॥

(४४) हर्यते काम्यते तत्, हिरण्यम् । मुवर्णं वा ॥

(४५) क्रियत उत्पाद्यतेऽसौ कर्पासः । सस्य भेदो वा । कर्पासस्य-
विकारः कार्पासं वस्त्रम् । विष्ववादित्वादण् ।

(४६) जायते यत इति जर्तुः । उपस्थेन्द्रियम् । हस्तो वा ॥

(४७) ऊर्णोत्याच्छादयति यया सा, ऊर्णा । अविमेषयो रोमाणि
वा । ऊर्णां याति प्राप्नोतीत्यूर्णायुः । मेपो मेषोर्णा कम्बलो वा । ऊर्णा
इव नाभिरस्य स ऊर्णनाभः । समासान्तोऽच् ऊर्णनाभिरिति वा । समासा-
न्तस्य विधेरनित्यत्वात् । लूताह्विर्वा ॥

दधाते र्यन्नुट् च ॥ ४८ ॥ धान्यम् ॥ ४८ ॥

जीर्षतेः किन् रश्च वः ॥ ४९ ॥ जित्रिः ॥ ४९ ॥

मव्यतेर्यलोपो मश्वापतुट्चालः ॥ ५० ॥ ममापतालः ॥ ५० ॥

ऋजेः कीकच् ॥ ५१ ॥ ऋजीकः ॥ ५१ ॥

तनोतेर्डउः सन्वच्च ॥ ५२ ॥ तितउः ॥ ५२ ॥

अर्भकपृथुकपाका वयसि ॥ ५३ ॥

अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते ॥ ५४ ॥ अवद्यम् ॥ ५४ ॥

(४८) दधाति पुष्णाति लोकानिति धान्यम् । व्रीहिर्वा । धाने पोषणे साधु धान्यमित्यपि ॥

(४९) यो जीर्यति येन वा स जित्रिः । कालः पक्षी वा । हलि-
चेति बाहुलकाद्वीर्याभावः ॥

(५०) मव्यति बध्नातीति ममापतालः । बन्धनहेतुर्विषयो वा ॥

(५१) अर्जति गच्छतीति, ऋजीकः । सूर्यो धूमो वा ॥

(५२) तनोति विस्तृणोति येन तत् तितउः । चालनी पोषणशोधकपात्रम् ॥

(५३) ऋध्यति वर्धतेऽसावर्भकः । ऋधुधातोर्वुन् धस्य भः । प्रयते
वर्धते स पृथुकः । कुक्न् प्रत्ययः सम्प्रसारणं च । पिबतीति पाकः । कन्
प्रत्ययः । अर्भकपृथुकपाका बालकपर्यायाः ॥

(५४) वदितुमयोग्यमवद्यम् । नञ्पूर्वाद्वदधातीर्यत् । अवतीत्यवमम् ।
अमः प्रत्ययः । तच्चैव वस्य धः । अधमम् । ऋच्छति गच्छतीत्यर्वा । वन् ।
अश्वो वा । रिफाति निन्दतीति रेफः । कुत्सितपर्याया इमे ॥

लीरीङोर्ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः ॥ ५५ ॥
लितम् । रिप्रम् ॥ ५५ ॥

क्लिशोरीच्चोपधायाः कन् लोपश्चलो नाम् च ॥ ५६ ॥
कीनाशः ॥ ५६ ॥

अश्रोतेराशुकर्मणि वरट् च ॥ ५७ ॥ ईश्वरः ॥ ५७ ॥

चतेरुन् ॥ ५८ ॥ चत्वारः ॥ ५८ ॥

प्रात्ततेरन् ॥ ५९ ॥ प्रातः ॥ ५९ ॥

अमेस्तुट् च ॥ ६० ॥ अन्तः ॥ ६० ॥

दहेर्गोहलोपो दश्च नः ॥ ६१ ॥ नगः ॥ ६१ ॥

(५५) लीयते श्लिष्यत इति लिप्तम् । श्लिष्टम् । रीयते तत्, रिप्रम् ।
कुत्सितम् । तरौ प्रत्ययौ पुडागमः ॥

(५६) क्लिश्नातीति कीनाशः । कृषीवलो न्यायाधीशो वा । धातो-
रुपधाया ईत्वं लकारलोपः कन् प्रत्ययो नामागमश्चान्त्यादचः परः ॥

(५७) अश्रुते, आशु शीघ्रं करोति जगद्रचयति स, ईश्वरः । स्वामी
वा । टित्वादीश्वरो । वरच् प्रत्यये ईश्वरा ॥

(५८) चतते याचतेऽसौ चतुः । संख्यावाचो वा । चत्वारः । चतस्रः ॥

(५९) प्रकृष्टमतीति गच्छतीति प्रातः । प्रभातकालो वा । स्वरादि-
त्वादव्ययम् ॥

(६०) अमति गच्छतीति यत्रेति, अन्तः । मध्यं वा । पूर्ववदव्ययम् ॥

(६१) दहति दह्यते वा स नगः । पर्वतो वृक्षो वा । बाहुलकान्नकारस्य
नाकारो नागः । सर्पभेदो वा ॥

सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च ॥ ६२ ॥ सिंहः ॥ ६२ ॥
 व्याडि घ्रातेश्च जातौ ॥ ६३ ॥ व्याघ्रः ॥ ६३ ॥
 हन्तेरच् घुर च ॥ ६४ ॥ घोरम् ॥ ६४ ॥
 क्षमेरुपधालोपश्च ॥ ६५ ॥ क्षमा ॥ ६५ ॥
 तरतेर्ङिः ॥ ६६ ॥ त्रयः ॥ ६६ ॥
 ग्रहेरनिः ॥ ६७ ॥ ग्रहणिः ॥ ६७ ॥
 प्रथेरमच् ॥ ६८ ॥ प्रथमः ॥ ६८ ॥
 चरेश्च ॥ ६९ ॥ चरमः ॥ ६९ ॥

(६२) सिञ्चतीति सिंहः । प्रसिद्धो वा । हकारप्रत्ययो नुमागमः ।
 चस्य कः । ककारस्य च लोपः । हिनस्तीति सिंहः । इति पृषोदरादित्वाद-
 प्याद्यन्तविपर्ययः ॥

(६३) विशेषेण समन्ताज् जिघ्रतीति व्याघ्रः । हस्ती वा ॥

(६४) हन्तीति घोरम् । भयानकं वा ॥

(६५) क्षमते सहते सर्वमिति क्षमा । पृथिवी वा ॥

(६६) तरतीति त्रिः । संख्यावाचो वा । त्रयः । त्रीन् । त्रिभ्यः ॥

(६७) गृह्णातीति ग्रहणिः । कृदिकारादिति ङीप् । ग्रहणी ।
 संग्रहणी । व्याधिभेदो वा ॥

(६८) प्रथते प्रख्यातो भवतीति प्रथमः । आद्य उत्तमो नूतनो वा ॥

(६९) चरति गच्छतीति भक्षयति वा स चरमः । अन्त्यः पश्चिमो

वा ॥

मङ्गेरलच् ॥ ७० ॥ मङ्गलम् ॥ ७० ॥

इत्युणादिषु पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

मन्थानंविशदंविधायबहुलंव्युत्पन्नपक्षेन वा
 व्युत्पन्नेनदलेनयेनविधिवद्वाग्वारिधिर्मन्थितः ।
 व्यक्ताव्यक्ततराणियत्रवचसां रत्नान्यदीप्यन्त वै
 भूयात्सोयमुणादिरुत्तमगणोध्येतुर्यशोवृद्धये ॥ १ ॥

(७०) मङ्गति प्राप्नोति सुखं येन तन्मङ्गलम् । प्रशस्तम् । मङ्गलो
 वारभेदो वा । मङ्गलस्य भावो माङ्गल्यम् ॥

इतिश्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतोणादिव्याख्यायां
 वैदिकलौकिककोषे पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

अथोणादिशब्दसूचीपत्रम् ॥

-:०:-

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
अ			अन्तः	५	६०	अर्कः	३	४०
अक्षम्	३	८८	अन्तम्	४	१६४	अर्णः	४	१८७
अक्षरम्	३	७०	अन्धः	४	२०६	अरणिः	२	१०२
अक्षः	३	६५	अन्नम्	३	१०	अरण्यम्	३	१०२
अक्षम्	३	१०	अनलः	१	१०६	अरतिः	४	६०
अग्रम्	२	२८	अन्यः	४	१०८	अरतिः	५	७
अगस्तिः	४	१८०	अपः	४	२०८	अर्थः	२	४
अघ्न्यः	४	११२	अप्रः	४	२०८	अर्मः	३	१५२
अङ्गः	४	२१६	अपराः	४	२३७	अर्मकः	५	५३
अङ्कतिः	४	६१	अपष्टुः	१	२५	अर्मः	१	१४०
अङ्गः	४	२१६	अलः	४	२०८	अर्यमा	१	१५८
अञ्जतिः	४	६१	अब्दः	४	८८	अररः	३	१३२
अञ्जलिः	४	२	अभ्रकम्	२	३२	अररः	४	७८
अष्टविः	४	१३४	अमतः	३	११०	अर्वा	५	५४
अण्डः	१	११४	अमत्रम्	३	१०५	अर्शः	४	१८६
अणवः	१	८	अमतिः	४	५८	अर्शसानः	२	८८
अक्लः	३	४३	अमनिः	२	१०२	अर्हन्तः	३	१२६
अन्नः	३	६	अम्बरम्	३	१३१	अलकम्	५	३५
अतसः	३	११७	अम्बरीषः	४	२८	अलकाः	५	३५
अन्नः	१	१२३	अम्बुः	४	१०८	अलतिः	४	६०
अदमनिः	२	१०५	अम्बः	४	२१०	अवगथः	२	८
अधमः	५	५४	अम्बः	४	१०८	अवद्यम्	५	५४
अध्वर्युः	१०	३७	अयः	४	१८८	अवनिः	२	१०२
अनः	४	१८८	अयस्कान्तः	४	१८८	अवभृथः	२	३
अन्तः	३	८६						

शब्दाः	॥	॥	शब्दाः	॥	॥	शब्दाः	॥	॥
अवमम्	५	५४	अञ्जिष्ठः	४	२	अणुः	१	८
अव्यधिषः	१	४८	अतिधिः	४	२	अहुतम्	५	१
अवसः	३	११७	अत्रिः	४	६८	अन्धुः	१	२७
अशनिः	२	१०२	अद्रिः	४	६५	असुः	१	७५
अश्वः	१	१५१	अनिलः	१	५४	अस्यु	१	२७
अष्ट	१	१५७	अपिशलिः	४	१२८	अरुः	२	११७
अष्टका	३	१४८	अभिन्नातः	३	८६	अर्जुनः	३	५८
अंसः	५	२१	अमित्रः	४	१७४	अर्जुनम्	३	५८
अस्त्रम्	४	१५८	अरिः	४	१३८	अरुणः	३	६०
असनः	२	७८	अर्चिः	२	१०८	अश्रु	५	२८
अस्मद्	१	१३८	अर्पिसः	४	२	असुः	१	१०
अस्त्रम्	२	१३	अलिः	४	१३८	असुः	४	१०२
अहः	१	१५८	अविनः	२	४६	असुरः	१	४२
अंहः	४	२१३	अविषः	१	४५	अङ्कूषः	४	७६
अंहतिः	४	६२	अग्निः	४	१३८	अन्दूः	१	८३
अहल्या	४	११२	अग्नित्रम्	४	१७३	अरुषः	४	७३
अङ्गारः	३	१३४	अशिरः	१	५२	अग्नेगूः	२	६८
अध्वा	४	११६	असिः	४	१४०	अनेहाः	४	२२४
अप्वा	१	१५४	अस्तिः	४	१८०	आ		
अयाः	४	२२२	अस्थि	३	१५४	आखनिकः	२	४५
अर्वा	४	११३	अहिः	४	१३८	आगः	४	२१२
अलावूः	१	८७	अहिः	४	६६	आडम्बरः	३	१३१
अश्मा	४	४७	अत्रिः	४	६८	आपः	२	५८
अक्षि	३	१५६	अनीकम्	४	१७	आपः	४	२०८
अग्निः	४	५०	अवीः	३	१५८	आपणिकः	२	४५
अङ्गिराः	४	२३६	अलीकम्	४	२५	आपतिकः	२	४५
आजः	४	१४०	अङ्कुशः	४	१०७	आपन्निकः	२	४५
अजिनम्	२	४८	अङ्कुरः	१	३८	आमयः	४	८८
अजिरम्	१	५३	अङ्गुलिः	४	२	आम्रम्	२	१६

शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू
आमलकः	२	३३	इष्टका	३	१४८	उरः	४	१८५
आर्द्रम्	२	१८	इष्मः	१	१४५	उरणः	५	१७
आवसथः	३	११६	इरा	२	२८	उत्कः	३	४२
आष्ट्रम्	४	१६०	इरिणम्	२	५१	उलपः	३	१४५
आख्याः	४	२३३	इषिरः	१	५१	उल्वः	४	८५
आगामी	४	७	इषीका	४	२१	उग्रनाः	४	२३८
आका	४	१५३	इष्टुः	३	१५७	उस्रः	२	१३
आजिः	४	१३१	इक्षुकुट्टकः	२	३२	उषः	४	२३४
आतिः	४	१३१	इन्दुः	१	१२	उष्ट्रः	४	१६२
आमिष्ठा	३	६६	इषुः	१	१३	उष्णः	३	२
आमिषम्	१	४६	ई			उषपः	३	१४३
आविः	२	१०८	ईर्मम्	१	१४५	उषर्बुधः	४	२३४
आसुः	१	३३	ईश्वरः	५	५७	उक्षा	१	१५८
आतुरः	१	४१	ईश्वः	१	१५३	उषाः	४	२३४
आयुः	१	२	उ			उष्मा	४	१४५
आयुः	२	११८	उक्षम्	२	७	उचितम्	४	१८६
आलुः	१	५	उयः	२	२८	उयिक्	२	७१
आशुः	१	१	उयतेजः	४	२२७	उहीयः	२	१०
अशुशुक्षिः	२	१०३	उज्जकः	२	३७	उशी	४	१
आहू	१	८६	उत्सः	३	६८	उशीनरः	४	१
आहू	१	८५	उदकम्	२	३८	उशीरम्	४	३१
इ			उदकधरः	२	२२	उरः	१	३१
इदम्	४	१५७	उदरम्	५	१८	उरमुकम्	३	८४
इन्द्रः	२	२८	उदरयिः	४	८८	उलूकः	४	४१
इष्मः	१	१४५	उदश्वित्	२	५७	उन्नेता	२	८४
इमः	३	२	उन्द्रः	२	१३	उन्नेः	५	१२
इमः	३	१५३	उपदेश	२	८४	ऊ		
इक्ष्वलः	४	१०७	उपहरः	३	१	ऊधः	४	१८३
						ऊनः	३	२

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
कमम्	१	१४४	एतः	३	८६	कटम्बः	४	८२
कर्णनाभः	५	४७	एतशः	३	१४८	कट्वरम्	३	१
कर्णनाभिः	५	४७	एतशाः	३	१४८	कटिः	४	११८
कर्दरः	५	४०	एधतुः	१	७७	कटितम्	४	१०३
कर्णा	५	४७	एनः	४	१८८	कटोरः	४	३०
कर्णायुः	५	४७	एवः	१	१५२	कटुः	१	८
कम्मा	४	१४५	एलकः	४	४१	कटोलः	१	६६
कर्मिः	४	४४	ओ			कठाकुः	३	७७
करुः	१	३०	ओकः	३	४१	कठिनम्	२	४८
कृ			ओकः	४	२१६	कठेरः	१	५८
कृक्	२	५७	ओजः	४	१८२	कठोरः	१	६४
कृक्थम्	२	७	ओदनः	२	७६	कठत्रम्	३	१०६
कृक्षम्	३	६६	ओम्	१	१४२	कटम्बः	४	८२
कृवः	३	६७	ओष्ठः	२	४	कटारः	३	१३५
कृक्करः	३	७५	ओतुः	१	६८	कणोचिः	४	७०
कृक्करः	३	१३१	क			कण्ठः	१	१०३
कृक्कः	२	२८	कक्खटम्	४	८१	कण्वम्	१	१५१
कृक्कसानः	२	८७	कक्षम्	३	६२	कण्ठोलः	१	६६
कृतम्	३	८८	कङ्कटः	४	८१	कदम्बः	४	८२
कृषभः	३	१२३	कङ्कणः	४	२४	कदरः	३	१३१
कृष्यः	४	११२	कङ्कणीका	४	१८	कद्रुः	४	१०२
कृषिः	४	१२०	कक्कः	४	१०५	कदली	१	१०१
कृजोकः	४	२२	कक्कू	१	८४	कदली	३	१३१
कृजोकः	५	५१	कचपम्	३	१४२	कनकम्	२	३२
कृजाम्	४	२८	कंचूलः	४	८	कन्तुः	१	२७
कृजः	१	२७	कंजारः	३	१३७	कन्तुः	१	७३
कृतुः	१	७२	कटकम्	२	३२	कन्दः	४	८८
ए			कटकः	५	३५	कन्दरः	३	१३१
एतः	३	४३	कटप्रः	२	५७	कन्दुः	१	१४
एतम्	१	१३३						

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
कन्या	४	११२	कतुः	१	७६	कण्यः	४	११२
कपटम्	४	८१	कर्दमः	४	८४	कशेरुः	१	८८
कपालम्	१	११८	कर्पटः	४	८१	कशेरुः	१	८८
कपिः	४	१४४	कर्परः	३	१३१	कषिः	४	१४०
कपिलः	१	५५	कर्पासः	५	४५	कषाकुः	३	७७
कपोतः	१	६२	कर्पूरः	४	८०	कपीका	४	१६
कपोलः	१	६६	कर्तुरः	१	४१	क्षत्रम्	४	१६७
कफेलूः	१	८३	करभः	३	१२२	क्षत्ता	२	८४
कवरः	४	१५५	कर्भ	४	१७५	क्षमः	३	६२
कमठः	१	१००	करम्बम्	४	८२	क्षमूरः	४	८०
कम्बलः	१	१०७	क्रयिकः	२	४४	क्षमूरी	४	८०
कम्बूः	१	८३	करीरः	४	३०	काकः	३	४३
कमरः	३	१३२	कर्वाः	१	१५५	काकुः	१	१
कमलम्	१	१०४	कर्वरः	२	१२१	काणूकः	४	३८
कमलः	१	१०४	करीषः	४	२६	काण्डम्	१	११५
करिः	४	१२८	कर्पूः	१	८०	कादम्बः	४	८३
कर्कः	३	४०	कलिः	४	११८	कारिः	४	१२८
करकः	५	३५	कलकः	३	४०	कारुः	१	१
कर्कटः	४	८१	कलतम्	२	१०६	क्रान्तुः	५	४३
कर्कन्धूः	१	८३	कलापकम्	२	३२	कार्षिः	४	१२७
कर्करः	३	१३६	कलभः	३	१२२	कार्षकः	२	३८
कर्करीकम्	४	२०	कलमः	४	८४	काशिः	४	११८
कर्करटुः	१	३७	कलिलम्	१	५४	काशूः	१	८५
करटः	४	८१	कलुषम्	४	७५	काष्ठम्	२	२
करेटुः	१	३७	कविः	४	१३८	काष्ठपुत्रिका	२	३३
कर्णः	३	१०	कवलः	१	१०६	चान्तुः	५	४३
करण्डः	१	१२८	कवसः	४	२	क्ष्मा	५	२५
करुणा	३	५३	कश्मलम्	१	१०८	कासारः	३	१२८
करिणुः	२	१	कश्मीरः	४	३२			

शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू
किक्कीदिविः	४	५६	कुटितम्	४	१८६	कुररः	३	१३३
किङ्कणीका	३	१८	कुटपः	४	१४२	कुरीरम्	४	३३
किम्	४	१५८	कुट्मलम्	४	१०८	कुखा	४	११४
किरिः	४	१४३	कुट्मलः	१	१०८	कुरवः	१	२४
किरीटम्	४	१८५	कुटरुः	४	८०	कुल्फः	२	२६
किरणः	२	८१	कुटीरः	४	३०	कुल्मलम्	४	१८८
क्रिमिः	४	१२२	कुटिलम्	४	१८६	कुलीरः	४	३३
किर्मीरः	४	३०	कुटिलः	१	५४	कुलालः	१	११८
किरीरः	४	३०	कुठिः	४	१४४	कुशलः	१	१०६
क्विविषम्	१	५०	कुठेरः	१	५८	कुष्ठम्	२	२
किंवदन्ती	३	५०	कुङ्मलः	१	१०८	कुद्रः	२	१३
किंशारुः	१	४	कुड्यम्	४	११२	कुधुनः	३	५५
किशोरः	१	६५	कुण्डम्	१	११५	कुषलम्	४	१८०
चित्वा	४	११४	कुण्डिनः	२	४८	कुमा	१	१४५
क्षिपणिः	२	१०७	कुण्डलम्	१	१०४	कुरः	२	२८
क्षिपणुः	३	५२	कुणिन्दः	४	८५	कुसितः	४	१०६
क्षिपणुः	३	५१	कुणपः	३	१४३	कुसीदम्	४	१०६
क्षिप्रम्	२	१३	कुणालः	३	७६	कुसुम्भम्	४	१०६
कीकसम्	३	११७	कुत्सम्	३	६६	कुसुमम्	४	१०६
कीचकः	५	३६	कुन्तिः	३	५०	कुसूलः	४	८०
कीनाशः	५	५६	कुन्दः	४	८८	कुहुः	१	३०
कीर्त्तिः	४	११८	कुपिन्दः	४	८६	कुहकः	२	३०
चोरम्	४	३४	कुबिन्दः	४	८६	कूची	४	८१
कुक्कुरः	१	४१	कुत्रः	२	२८	कूपः	३	२७
कुकुरः	१	४१	कुबेरः	१	५८	क्रूरः	२	२१
कुक्षः	३	६८	कुम्भीरः	४	३०	ककवाकुः	१	६
कुञ्जिः	३	१५५	कुमारः	३	१३८	कृच्छम्	२	२१
कुचितम्	४	१८६	कुमारयुः	१	३७	कृतकम्	३	३७
कुटिः	४	१४३	कुरङ्गः	१	१२१	कस्तिका	३	१४०

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
कलुः	३	३०	कोमलम्	१	१०८	ग		
कलसम्	३	६६	कोरकः	५	३५	गगनम्	२	७७
कलस्नम्	३	१७	कोष्ठः	१	६८	गङ्गा	१	१२३
कलरः	५	५४१	कोशलः	१	१०६	गङ्गरः	१	५८
कलन्तत्रम्	३	१०८	कोष्ठः	२	४	गङ्गोलः	१	६६
कलोपम्	४	१८५	कोष्णिः	४	४८	गण्डः	१	११४
कपणः	२	७८	कोष्ठा	२	८४	गण्डयन्तः	३	१२८
कपाणः	२	८०	कोमम्	१	१४०	गण्डिः	४	११८
कमिः	४	११२	ख			गण्डुः	१	७
कविः	४	५६	खजपम्	३	१४२	गण्डूपः	४	७८
कशानुः	४	२	खजाकः	४	१३	गण्डोलः	१	६६
कषिः	४	१२०	खट्वा	१	१५१	गतिला	१	५७
कषिः	४	१२७	खड्गः	१	१२४	गदयिदुः	३	२८
कषकः	२	३८	खडूः	१	८२	गन्त्री	४	१५८
कषिकः	२	४०	खड्डूः	१	८२	गन्तुः	१	६८
कषणः	३	४	खण्डः	१	११४	गभीरः	४	३५
कसरः	३	७३	खदिरः	१	५३	गभस्तिः	४	१८०
केतुः	१	७४	खनिः	४	१४०	गमथः	३	११३
केणिः	४	४८	खनितम्	४	१६२	गमी	४	६
केदा	१	१५८	खरुः	१	३६	गम्भीरः	४	३५
केदुः	१	१०	खर्जुः	१	८०	गर्गः	१	१२८
केलिः	४	११८	खर्जूरः	४	८०	गरुडः	४	४६
केवलः	१	१०६	खलतिः	३	११२	गरुत्	१	८४
केशः	५	३३	खल्पः	३	२८	गर्तः	३	८६
केवम्	४	१७०	खाटिः	४	१२५	गर्दभः	३	११२
केमम्	१	१४०	खात्रम्	४	१६२	ग्रन्थिः	४	१४०
कोकिलः	१	५४	खिद्रः	२	१३	गर्भः	३	१५२
कोटरः	३	१३१	खिदिरः	१	५१	गर्भुत्	१	८५
कोटिः	४	११८	खुरः	२	२८	गर्वः	१	१५५

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
गर्वरः	२	१२१	गृधुः	१	२३	चक्षुः	२	११८
ग्रहणिः	५	६७	गृहयाप्यः	३	२६	चकोरः	१	६४
गवयः	२	६८	गोणुः	३	१६	चङ्कुरः	१	३८
गह्वरः	३	१	गोत्रम्	४	१६७	चञ्चरीकः	४	२०
गातुः	१	७३	गोत्रा	४	१६७	चटुलः	१	८६
गात्रम्	१	१६८	गोधूमः	५	२	चण्डः	१	११४
गाथा	२	४	गोपीथः	२	८	चण्डालः	१	११७
गान्धम्	४	६०	गोरोचनम्	२	७८	चण्डिला	१	५७
गान्तुः	५	४३	गौरः	१	६५	चतुरः	१	३८
ग्रामः	१	१४३	गौरः	२	२८	चत्वरम्	१	१२१
गारित्रम्	४	१७१	गौः	२	६८	चत्वारः	५	५८
गलानिः	४	५१	ग्लौः	२	६४	चनः	४	२००
गिरिः	४	१४३	घ			चन्दनम्	२	७८
ग्रीवा	१	१५४	घटिः	४	११८	चन्द्रः	२	१३
ग्रीषाः	१	१४८	घतनः	५	४२	चन्द्रमाः	४	२२८
गुडः	१	११५	घर्मः	१	१४८	चन्द्रिरम्	१	५१
गुडेरः	१	५८	घासिः	४	१३०	चपटः	४	८१
गुत्सः	३	६८	घुण्डः	१	११५	चपेटः	४	८१
गुधेरः	१	६१	घुरणः	२	८३	चपलम्	१	१११
गुपिलः	१	५६	घूर्णिः	४	५२	चम्पा	३	२८
गुरुः	१	२४	घृणा	३	४	चमूः	१	८०
गुर्विणी	२	५४	घृणिः	४	५२	चमरः	३	१३२
गुल्फः	५	२६	घृतम्	३	८८	चमसः	३	११७
गुवाकः	४	१५	घृत्विः	४	५६	चरिः	४	१४०
गुह्यरः	१	६१	घोरम्	५	६४	चरुः	१	७
गुहिलः	१	५६	च			चरकः	२	३२
गूथः	२	१२	चक्रधरः	२	२२	चरित्रम्	४	१७२
गृत्तम्	३	६८	चक्रुः	१	२२	चर्पटः	४	८१
गृध्रः	२	२४				चर्म	४	१४५

शब्दाः	पृ	श्र	शब्दाः	पृ	श्र	शब्दाः	पृ	श्र
चरमः	५	६८	छविः	४	५६	जन्यम्	४	१११
चर्षकः	२	३२	छागः	१	१२४	जन्युः	३	२०
चषालः	४	१०७	छातः	३	८६	जन्तुः	३	३६
चाटु	१	३	छाया	४	१०८	जम्भलः	१	१०६
चत्वालः	१	११६	छित्तरम्	३	१	जम्बः	४	८५
चारित्रम्	४	१७२	छिदकम्	२	३७	जम्बोरः	४	३०
चारु	१	३	छिद्रम्	२	१३	जम्बूः	१	८३
चिकणम्	४	१७६	छिदिः	४	१४३	जम्बूकः	४	४१
चिकुराः	१	४१	छिदिरः	१	५१	जयन्तः	३	१२८
चित्तभानुः	३	३२	छेदिः	४	११८	जर्जरः	३	१३१
चित्तम्	४	१६४	छेमण्डः	१	१२८	जरटः	१	१००
चित्रा	४	१६४	ज			जरुः	३	१०
चीरम्	२	२५	जगत्	२	८४	जर्णुः	५	४६
चीवरम्	३	१	जघनम्	५	३२	जरुथम्	२	६
चुकम्	२	१४	जङ्घा	५	३१	जरन्तः	३	१२६
चुत्रः	२	२८	जघ्नुः	१	२२	जरायुः	१	४
च्युपः	३	२५	जटा	५	३०	जरसानः	२	८६
चूर्णिः	४	५२	जटायुः	२	११८	जहुरिः	२	७३
चेतः	४	१८८	जटिः	४	११८	जहकः	२	३४
चीन्नः	४	१०४	जठरम्	५	३८	जागृविः	४	५४
छ			जतुः	१	१८	जातवेदाः	४	२२७
छगलः	१	११३	जत्रु	४	१०२	जानु	१	३
छत्वरम्	३	१	जन्म	४	१४५	जामाता	२	८५
छत्रम्	४	१५८	जन्म	१	१४५	जामिः	४	४३
छदिः	२	१०८	जनितः	४	१०४	जाया	४	१११
छद्म	४	१४५	जनिः	४	१३०	ज्यानिः	४	४८
छन्दः	४	२१८	जनिमा	४	१४८	जायुः	१	१
छर्दिः	२	१०८	जनुः	२	११५	जिगतुः	३	३१
छलम्	१	१०४	जन्तुः	१	७३	जित्वा	३	७१

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
जिनः	३	२	तद्	१	१३२	वपुः	१	१०
जिनिः	५	४८	तन्वीः	३	१५८	तर्भ	४	१४५
जिघ्रः	१	१४१	तन्तुः	१	६८	वयः	५	६६
जिह्वाः	१	१५४	तन्त्रिः	४	६६	तरलः	१	१०६
जीमूतः	३	८१	तनयम्	४	८८	तर्षः	३	६२
जीरः	२	२३	तन्यतुः	४	२	तरसम्	३	११७
जीरदानुः	२	२३	तनुः	१	७	वसरिणः	३	३८
जीर्विः	४	५४	तनुः	२	११७	तरसानः	२	८६
जीवातुः	१	७८	तनूः	१	८०	तलिनम्	२	५३
जीवथः	३	११३	तपः	४	१८८	तलुनः	३	५४
जीवन्तः	३	१२७	तपुः	२	११७	तल्पम्	३	२८
जुहुराणः	२	८१	तपसः	३	११७	त्वक्	२	६३
जुहः	२	६०	तमः	४	१८८	त्वष्टा	२	८५
जूः	२	५७	तमतः	३	११७	तविषी	१	४८
जूर्णिः	४	४८	तमालः	१	११८	तसरः	३	७५
जैवाट्कः	१	७८	त्यद्	१	१३२	त्सरुः	१	७
ज्योतिः	२	११०	तर्कारः	३	१३८	तातः	३	८०
त			तर्कारी	३	१३८	ताम्रम्	२	१६
तक्रम्	२	१३	तर्कुरी	१	१६	तामरसम्	३	११७
तकिला	१	५७	तरङ्गः	१	१२०	ताम्बूलम्	४	८०
तक्षकः	२	३२	तरण्डः	१	१२८	तालु	६	५
तक्षा	१	१५६	तरणिः	२	१०२	ताविषी	१	४८
तडाका	४	१५	तरिः	४	१३८	तिग्मम्	१	१४६
तडागः	४	१५	तरीः	३	१५८	तिजिलः	१	५६
तडिः	४	११८	तरीषः	४	२६	तितउ	५	५३
तडित्	१	८८	तरुः	१	७	तित्तिरिः	४	१४३
तण्डुलः	४	१०७	तरुणः	३	५४	तिथः	२	१२
तण्डुलाः	५	८	तदूः	१	८८	तिसिड्डीकः	४	२०
ततम्	३	८८	तरन्तः	३	१२८	तिमिः	४	१२२

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
तिमिरम्	१	५१	द			दशन	१	१५६
तिरीटम्	४	१०५	दक्षिणः	२	५०	दशेरः	१	५८
त्रिफला	१	१०४	दक्षिणा	२	५०	दंष्ट्रा	४	१५८
त्रिविष्टपम्	३	१४५	दक्षाप्यः	३	८६	दस्मः	१	१४५
त्रिविष्टपः	३	१४५	दण्डः	१	११४	दस्युः	३	२०
तीक्ष्णम्	३	१८	दण्डधरः	२	२२	दस्त्रः	२	१३
तीव्रम्	२	२८	दद्रुः	१	८०	दङ्गः	२	१३
तीर्थम्	२	७	दद्रूः	१	८०	दाकः	३	४०
तीवरः	३	१	दधिषायः	३	८७	दात्रम्	४	१७०
तुण्डः	४	११	दलः	३	८६	दात्वः	४	१०४
तुण्डिलः	१	५४	दमुनाः	४	२३५	दानुः	३	३२
तुल्यः	२	७	दभ्रम्	२	१३	दाम	४	१४५
तुन्दः	४	८८	दमघः	३	११३	दाक	१	३
तुषारः	३	१३८	दरत्	१	१३०	दारुणम्	३	५३
तुहिनम्	२	५२	दरथः	३	११३	दाः	२	५७
तूणीरः	४	३०	दर्दरीकम्	४	२०	दाशः	५	११
तूणिः	४	५१	दर्भः	३	१५१	दासः	५	१०
तूलिः	४	१२०	ददुः	१	४०	दिधिषूः	१	८३
तूस्तम्	३	८६	दद्रूः	१	८०	दिनम्	२	४८
दृढम्	५	८	दर्वः	१	१५५	दिवसम्	३	१२१
दृपत्	२	८५	दर्विः	३	८४	दिवा	१	१५६
दृप्रः	२	१३	दर्विः	४	५३	दिवा	४	१७५
दृपसा	१	१०४	द्रविणम्	३	५०	दीदिविः	४	५५
दृफला	१	१०४	दर्शतः	३	११०	दीनः	३	३
दृष्णा	३	१२	दरसानः	२	८६	दीनारः	३	१४०
तोदम्	४	१७३	दलपः	३	१४२	दुकूलम्	४	८४
तोमरः	३	१३१	दल्भः	३	१५१	दावा	१	१५६
			दल्लिः	४	४७	द्रुः	१	३५
						द्रुमः	१	३५

शब्दाः	(१) प	(२) म	शब्दाः	(१) प	(२) म	शब्दाः	(१) प	(२) म
दुहिणः	२	४८	ध			धासाः	४	२२१
दुष्टु	१	२५	धनम्	२	८१	धिषणा	२	८२
दुहिता	२	८५	धनुः	१	७	धिषण्यम्	४	१०७
दूतः	३	८०	धनुः	२	११७	धीरः	२	२४
दूतिः	४	१८०	धनूः	१	८०	धीवरः	३	१
दूः	२	५७	धन्वम्	४	८५	धीवरो	४	११५
दूरम्	२	२०	धन्वा	१	१५६	धीवा	४	११५
दूषीका	४	१६	धमकः	२	३५	ध्रुवम्	२	६१
दृतिः	४	१८४	धमनिः	२	१०२	ध्रुवकः	२	३२
दृप्रः	२	१३	धरणिः	२	१०२	ध्रुस्तूरः	४	८०
दृम्फू	१	८३	धर्वम्	४	१६७	धूकः	३	४७
दृशानः	२	८०	धरित्री	४	१७३	धूमः	१	१४५
दृशुः	१	२३	धर्मः	१	१४०	धूमकेतुः	१	७४
दृषत्	१	१३१	धरेमा	४	१४८	धूर्तः	३	८६
देवटः	४	८१	धर्वणिः	२	१०४	धूसरः	३	७३
देवयुः	१	३७	धवाणकः	३	८३	धृत्वा	४	११४
देवरः	३	१३२	ध्वनिः	४	१४०	धृषुः	१	२३
देवलः	१	१०६	धवलः	१	१०६	धेनः	३	११
देविलः	१	५६	धाकः	३	४०	धेनुः	३	३४
देवा	२	८८	धाणकः	३	८३	न		
देष्णः	३	१६	धातकी	३	१४८	नचत्रम्	३	१०५
दोः	२	६८	धाता	२	८४	नखम्	५	३३
द्योतनः	२	७८	धातुः	१	६८	नखरः	३	१३१
द्रोणः	३	१०	धानाः	३	६	नखिः	४	१३८
द्रोणिः	४	५१	धान्यम्	५	४८	नगः	५	६१
दोषा	४	१७५	धाम	४	१५१	नटः	४	१०४
द्यौः	२	६८	ध्यात्वम्	४	१०५	नदनुः	३	५२
द्यौत्रम्	४	१६१	ध्यामा	४	१५१	नदत्ताः	७	१२७
			ध्राडिः	४	११८	नन्दयन्तः	३	१२८

शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स
नान्दः	४	११८	निद्रा	२	१७	पञ्चः	४	२२०
ननन्दा	२	८८	निधनम्	२	८१	पङ्गुः	१	३६
ननान्दा	२	८८	निधुवनम्	२	८०	पतङ्गः	१	११८
नना	२	८५	निम्बः	४	८५	पचतः	३	११०
नभः	४	२११	निर्ऋतः	२	८	पचिः	४	११८
नभसः	३	११७	निर्ऋथः	२	८	पचेलिमः	४	३७
नभस्यः	४	२११	निष्कः	३	४५	पचन्	१	१५७
नमतः	२	११०	निषङ्गथिः	४	८७	पङ्कालः	१	११८
नभाकम्	४	१५	निषद्वरः	२	१२२	पटाकः	४	१४
नमसः	३	११७	निहाका	३	४४	पटीरः	४	३०
न्यङ्कुः	१	१७	नीकः	३	४७	पटलः	१	१०४
नयनम्	२	७८	नीचैः	५	१३	पटुः	१	१८
नरकम्	५	३५	नीशः	२	२	पटोलः	१	६६
नलिनम्	२	४८	नीपः	३	२३	पटुः	१	१५३
नवन्	१	१५६	नोरम्	२	१३	पण्डः	१	११४
नंश्चकः	२	३०	नीलङ्गुः	१	३६	पण्डा	१	११४
नहुषः	४	७५	नीवेः	४	१३६	पणसः	३	११७
ना	२	१००	नीवरम्	३	१	पणिः	४	११८
नाकुः	१	१८	नृच्छाः	४	२३३	पताका	४	१४
नागः	५	६१	नृतूः	१	८१	पतिः	४	१८३
मान्त्रम्	४	१६०	नेमः	१	१४०	पतिः	४	५७
नापितः	३	८७	नेमिः	४	४३	पतनम्	३	१५०
नाभिः	४	१२६	नेष्टा	२	८५	पतत्रम्	३	१०५
नाम	४	१५१	नोधाः	४	२२६	पतदम्	४	१५८
नारङ्गः	१	१२२	न्योजाः	४	२२३	पतत्रिः	४	६४
निकषा	४	१७५	नीः	२	६४	पतिरः	१	५८
निघण्टुः	१	३७	प			पतसः	३	११७
निवातिः	४	१२५	पक्त्रम्	४	१६६	पत्सलः	३	७४
निघ्रावः	१	१५३	पक्षः	३	६८	पथः	४	१२

शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स
पथिलः	१	५७	परीरम्	४	३०	पशुः	१	२७
पदाजिः	४	१३२	परपरीकः	४	१८	पाकः	३	४३
पदातिः	४	१३२	परिव्राट्	२	५८	पाकः	५	५३
पद्मम्	१	१४०	पर्वतः	३	११०	पाकुक्	२	३०
पद्मः	२	१३	पर्वी	४	११३	पानः	४	२०३
पद्मा	४	११३	प्रशक्वा	४	११७	पाण्डुः	१	३७
पविः	४	१३८	प्रशत्वरी	४	११७	पाणिः	४	१३३
पन्थाः	४	१२	प्रशास्त्रा	२	८५	पातालम्	१	११७
पन्नः	३	१०	पर्शुः	१	३३	पातिः	५	५
पनसः	३	११७	पर्शुः	५	२७	पात्रम्	४	१५८
पपीः	३	१५८	परशुः	१	३३	पात्रम्	४	१७०
पपुः	१	२२	पर्षत्	१	१३०	पाथः	४	२०४
पम्पा	३	२८	प्रस्थायी	४	८	पाथः	४	२०५
पयः	४	१८०	परुः	२	११७	पाथिः	२	११४
पयोधाः	४	२३०	परुषः	४	७५	पादूः	१	८५
प्रख्याः	४	२३३	प्रहाणिः	४	५१	पापम्	३	२३
पर्जन्यः	३	१०३	परिहाणिः	४	५१	पाप्मा	४	१५१
परिज्वा	१	१५८	प्रहिः	४	१३५	पायुः	१	१
पर्णम्	३	६	प्रहेलिः	४	११८	पारुः	४	१०१
पर्णमुट्	२	२२	प्रह्वः	१	१५३	पारक्	१	१३६
पर्णकुट्	२	२२	प्रह्वः	३	६३	प्राकषिकः	३	४१
पर्णशुट्	२	२२	पलाण्डुः	१	३७	प्राट्	२	५७
पर्णसिः	४	१०७	पलितम्	५	३४	प्राणथः	३	११३
प्रतिदिवा	१	१५६	पलितः	३	८२	प्राणन्तः	३	१२७
प्रथितिः	४	१८३	पललम्	१	१०६	प्रातः	५	५८
प्रथमः	५	६८	पलालम्	१	११८	प्रापणिका	२	४१
पपः	३	२८	पल्लवः	४	१०७	प्राष्टट्	२	५७
पपटः	४	८१	पवाका	४	१४	पाखम्	५	२७
परमेष्ठी	४	१०	पविः	४	१३८	पाणिः	४	५३

शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स
पालिः	४	१३०	पुरिः	४	१४३	पेचकः	५	३७
पाशधरः	२	२२	पुरीषम्	४	२७	पेत्वम्	४	१०५
पाषाणः	२	८	पुरुः	१	२३	पेयूषम्	४	७६
पांसुः	१	२७	पुरुषः	४	७४	पेरुः	४	१०१
पिङ्गलः	१	१०८	प्रुवः	१	१५१	प्रेर्वरी	४	११७
पिञ्जरः	३	१३१	पुरुवरवाः	४	२३२	प्रेर्वा	४	११७
पिञ्जूलम्	४	८०	पुरोधः	४	२३१	पेशलः	१	१०६
पिण्याकः	४	१५	भुक्तिः	३	१५५	पेधिः	४	११८
पिण्डिलः	१	५४	पुलिनम्	२	५३	पोतः	३	८६
पिता	२	८५	पुलिन्दः	४	८५	पोता	२	८५
पिनाकः	४	१५	पुलस्तिः	४	१८०	पोथः	२	१२
पियालः	३	७६	पुष्करम्	४	४	पोषयित्तुः	३	२८
पिशितम्	३	८५	पुष्कलम्	४	५	फ		
पिशुनः	३	५५	पुष्पप्रचायिका	२	३२	फण्डः	१	११४
पीतुः	१	७१	पूगः	१	१२४	फर्फरीकम्	४	२०
पीथः	२	७	पूजिलः	१	५६	फल्गुः	१	१८
पीयुः	१	३६	पूरुषः	४	७४	फल्गुनः	३	५६
पीयूषम्	४	७६	पूषा	१	१५८	फलिनः	२	४८
पीलुः	१	३७	पृथक्	१	१३७	फेनः	३	३
प्रीहा	१	१५८	पृथुः	१	२८	ब		
पीवरः	३	१	पृथुकः	५	५३	बञ्जयः	३	११३
पीवरी	४	११५	पृथवी	१	१५०	बटिः	४	११८
पीवा	४	११५	पृथिवी	१	१५०	वणिक्	२	७०
पुण्ड्रः	२	१३	पृथ्वी	१	१५०	बधत्रम्	३	१०५
पुण्डरीकम्	४	२०	पृदाकुः	३	८०	बधिरम्	४	१७३
पुण्यम्	५	१५	पृष्ठम्	२	१२	बदरम्	३	१३१
पुत्रः	४	१६५	पृषत्	२	८४	बधकः	२	३६
पुमान्	४	१७८	पृषतः	३	१११	बधिरः	१	५१
पुरणः	२	८१	पृथ्निः	४	५२	बधूः	१	८३

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
बन्धुः	१	१०	बृहत्	२	८४	भातुः	१	७३
बन्धुरः	१	४१	बृहज्जातुः	३	३२	भातुः	३	३२
बन्धूकः	४	४१	भ			भामः	१	१४०
बन्ध्या	४	११२	भगालम्	३	७६	भाता	२	८५
बन्धूरः	१	४१	भट्टिलः	१	५४	भाष्टम्	४	१६०
बभ्रुः	१	२२	भण्डिलः	१	५४	भालुः	१	५
बर्कारः	३	१३१	भदाकः	४	१५	भालूकः	४	४१
ब्रध्नः	३	५	भद्रम्	२	२८	भावित्रम्	४	१७१
बर्बरः	३	१३१	भदन्तः	३	१३०	भावी	४	८
बर्बरः	२	१२१	भदानकः	३	८२	भासन्तः	३	१२८
ब्रह्म	४	१४६	भर्गः	४	२१६	भित्तिका	३	१४७
बर्हिः	२	१०८	भरटः	४	१०४	भिदकः	२	३७
बर्हिणः	२	४८	भरण्डः	१	१२८	भिद्रम्	२	१३
बल्लभः	३	१२५	भरतः	३	११०	भिदिः	४	१४३
बलिः	४	११८	भरथः	३	११४	भिदिरम्	१	५१
बलिः	४	१२४	भ्रमरः	३	१३२	भिदुः	१	२३
बलीकम्	४	२५	भ्रमिः	४	१२१	भिषक्	१	१३८
बलिहः	४	११८	भरिमा	४	१४८	भोमः	१	१४८
बहुः	१	२८	भकः	१	७	भोगकः	२	३१
बाष्पः	३	२८	भल्लुकः	४	४१	भोषः	१	१४८
बाहुः	१	२७	भल्लूकः	४	४१	भुजिः	४	१४२
बिन्दुः	१	१०	भवन्तः	३	१२८	भुजिष्यः	४	१७८
बिम्बम्	४	८५	भवन्तिः	३	५०	भुज्युः	३	२१
बुध्नः	३	५	भवान्	१	६३	भुरिक्	२	७२
बुधानः	२	८०	भविलः	१	५४	भुवः	४	२१७
बृन्दः	४	८८	भषकः	२	३२	भुवनम्	२	८०
बृणिः	४	४८	भसत्	१	१३०	भुवन्यः	३	५१
बृषभः	३	१२१	भन्ना	४	१६८	भुविः	२	११२
बृषलः	१	१०६	भल्ल	४	१४५	भूकम्	३	४१

शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू
भूमिः	४	४५	मत्स्यः	४	१०४	मनुः	३	२०
भूः	२	६८	मत्सरः	३	७३	ममायतालः	५	५०
भूणिः	४	५२	मथुरा	१	३८	मघटः	४	८१
भूरिः	४	६५	मदगुः	१	७	मयुः	१	७
भृगुः	४	२८	मदगुरः	१	४१	मयूखः	५	२५
भृङ्गः	१	१२५	मदयिद्धः	३	२८	मयूरः	१	६७
भृङ्गारः	३	१३६	मद्रः	२	१३	मर्कः	३	४३
भृज्जनम्	२	८०	मदारः	३	१३४	मरूकः	४	३८
भूमिः	४	१२१	मदिरा	१	५१	मर्कटः	४	८१
भेकः	३	४३	मदा	४	११३	मरिचिः	४	७०
भेरः	२	२८	मध्यम्	४	११२	मर्जुः	१	८१
भेरिः	४	६६	मधुः	१	१८	मर्त्तः	३	८६
भेलः	२	२८	मधुः	२	११६	मरतः	३	११०
भेषजम्	१	१३८	मधूकः	४	४१	मरुत्	१	८४
म			मनाका	४	१४	मर्दलः	१	१०६
मच्चिका	४	१५४	मन्ता	२	८४	मरिमा	४	१४८
मकुरः	१	४०	मन्तुः	१	७३	मर्मरीकः	४	२०
मघवा	१	१५८	मन्थाः	४	११	मलम्	१	११०
मङ्गलम्	५	७०	मन्दाकम्	४	१३	मलयः	४	८८
मज्जा	१	१५८	मन्दनम्	२	८१	मलिनः	२	४८
मञ्जुः	१	३७	मन्द्रः	२	१३	मल्लिका	२	३२
मञ्जूषा	४	७७	मन्दरः	३	१३१	मल्लूरः	४	८१
मठरः	५	३८	मन्दारः	३	१३४	मस्तकम्	३	१४८
मण्डः	१	११४	मन्दारुः	३	१३४	मसुः	१	६८
मण्डयन्तः	३	१२८	मन्दिरम्	१	५१	मसिः	४	११८
मण्डलः	१	१०४	मन्दुरा	१	३८	मसिनम्	२	४८
मणिः	४	११८	मन्दसानः	२	८७	मसुरा	१	४३
मण्डकः	४	४२	मनुः	१	१०	मसूरा	५	३
मत्स्यः	४	२	मनुः	२	११५	महः	४	१८८

शब्दाः	पृ	पृ	शब्दाः	पृ	पृ	शब्दाः	पृ	पृ
महत्	२	८४	मीवः	१	१५४	मृद्धीकः	४	२४
महानसम्	४	१८८	मीवरः	३	१	मृणालम्	१	११८
महिनम्	२	५६	मुकुरः	१	४०	मृतम्	३	८८
महिलः	१	५४	मुखम्	५	२०	मृत्युः	३	२१
महसम्	३	११७	मुचिरः	१	५१	मृदङ्गः	१	१२१
महिषः	१	४५	मुङ्गः	१	१२८	मृदरः	५	४१
माः	४	१८८	मुहलः	१	१२८	मृदुः	१	२८
माता	२	८५	मुद्रा	२	१३	मेचकः	५	३७
माता	४	१६८	मुदिरः	१	५१	मेरुः	४	१०१
मातरिश्वा	१	१५८	मुनिः	४	१२३	मौनम्	४	१२३
माया	४	१०८	मुमुचानः	२	८३	य		
मायुः	१	१	मुगलः	१	१०६	यक्षः	१	१४०
मार्जारः	३	१३७	मुक्कः	३	४१	यक्ष्मा	४	१५१
मार्जालीयः	१	११६	मुपलः	१	१०६	यक्षत्	४	५८
माला	२	२८	मुखम्	२	१३	यजतः	३	११०
मालती	३	११०	मुसलः	१	१०६	यजत्रम्	३	१०५
मालती	४	५८	मुहिरः	१	५१	यजिः	४	११८
म्लानिः	४	५१	मुहुः	२	१२०	यजुः	२	११७
मांसम्	३	६४	मुहूर्तम्	३	८८	यज्युः	३	२०
माहिनम्	२	५६	मुहिरः	१	६१	यतिः	४	११८
मितद्रुः	१	३४	मूकः	३	४१	यद्	१	१३२
मित्रम्	४	१६४	मूत्रम्	४	१६३	यन्त्रम्	४	१६७
मित्रयुः	१	३७	मूर्खः	५	२२	यमुना	३	६१
मिथिला	१	५७	मूर्धा	१	१५८	ययीः	३	१५८
मिश्रुनम्	३	५५	मूलम्	४	१०८	ययुः	१	२१
मिश्रम्	२	१३	मूलैरः	१	६१	यवागूः	३	८१
मिहिरः	१	५१	मूषिकः	२	४२	यवनः	२	७४
मौनः	३	३	मृगयुः	१	३७	यवासः	४	२
मौरः	२	२५	मृदङ्गणः	४	२४			

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
यशः	४	१८१	रज्जुः	१	१५	राजिः	४	२५
यष्टिः	४	१८०	रजतम्	३	१११	रात्रिः	४	६७
यज्ञः	१	१५४	रजनम्	२	७८	रासभः	३	१२५
याजिः	४	१२५	रजनिः	२	१०२	रामठम्	१	१०१
याता	२	८७	रजनी	२	७८	राशिः	४	१३३
यात्रा	४	१६८	रण्डा	१	११४	रास्त्रा	३	१५
यातुः	१	७३	रतूः	१	८२	राहुः	१	३
यामः	१	१४०	रत्नम्	३	१४	रिक्थम्	२	७
यामिः	४	४३	रत्निः	४	२	रिप्रम्	५	५५
यावसः	३	११८	रथः	२	२	रिपुः	१	२६
युग्मम्	१	१४६	रभसः	३	११७	रिष्वः	१	१५३
युधानः	२	८०	रमकः	२	३३	रुचः	३	६६
युष्मः	१	१४५	रमण्यम्	३	१०१	रुक्मम्	१	१४६
युयुधानः	२	८३	रमतिः	४	६३	रुचकम्	२	३७
युवाः	१	१५६	रवणः	२	७४	रुचिः	४	१२०
युष्मद्	१	१३८	रवथः	३	११३	रुचिकम्	४	१८६
यूका	३	४७	रविः	४	१३८	रुचिरम्	१	५१
यूथः	२	१२	रशना	२	७५	रुचिष्ठम्	४	१६८
यूपः	३	२७	रश्मिः	४	४६	रुद्रः	२	२२
योगः	४	२१६	रस्त्रम्	३	१२	रुधिरम्	१	५१
योनिः	४	५१	रसना	२	७५	रुम्नः	२	१४
योषित्	१	८७	रहः	४	२१४	रुनः	४	१०३
योषा	३	६२	रंहः	४	२१४	रुवथः	३	११५
र			राः	२	६६	रुद्धा	४	११४
रक्षः	४	१८८	राका	३	४०	रूपम्	३	२८
रघुः	१	२८	रास्त्रा	३	६३	रिक्थः	४	१८८
रहः	३	४०	राजा	१	१५६	रिणः	३	३८
रजः	४	२१७	राजातनः	२	७८	रितः	४	२०२
रजकः	२	३२	राजन्यः	३	१००	रिपः	४	१८०

शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू
रिफः	५	५४	लवाणकः	३	८३	वचक्रुः	३	८१
रोचना	२	७८	लविः	४	१३८	वज्रः	२	२८
रोचिः	२	१११	लशुनम्	३	५७	वज्रधरः	२	२२
रोदः	४	१८८	लव्वः	१	१५३	वटुः	१	८
रोदसी	४	१८८	लाक्षा	३	६२	वण्डः	१	११४
रोधः	४	१८८	लाङ्गलम्	१	१०८	वतण्डः	१	१२८
रोम	४	१५१	लाङ्गूलम्	४	८०	वक्षम्	३	६२
रोहन्तः	३	१२७	लिचा	३	६६	वक्षः	३	६२
रोहन्ती	३	१२७	लिगुः	१	३६	वक्षरः	३	७१
रोहिः	४	११८	लिमम्	५	५५	वदन्तिः	३	५०
रोहिणः	२	५५	लिपिः	४	१२०	वदान्यः	३	१०४
रोहित्	१	८७	लिविः	४	१२०	वन्द्रः	२	१३
रोहितः	३	८४	लुषभः	३	१२४	वनः	२	२८
रोहिषम्	१	४७	लूनिः	४	१०५	वनिः	४	१४०
ल			लोतः	३	८६	वनिष्णुः	४	२
लक्षणम्	३	७	लोत्रम्	४	१०३	वप्रः	२	२७
लक्ष्मणम्	३	७	लोम	४	१५१	वप्रिः	४	६६
लक्ष्मीः	३	१६०	लोष्ठः	३	८२	वपुः	२	११७
लघट्	१	१३५	लोहितम्	३	८४	वयः	४	१८८
लघुः	१	२८	व			वपुनम्	३	६१
लङ्का	३	४०	वक्रम्	४	१६७	वयोधाः	४	१२८
लङ्गकः	२	३७	वक्रः	२	१३	व्यलीकम्	४	२५
लटकः	२	३२	यकुलः	१	४१	वर्चः	४	१८८
लट्टा	१	१५१	वक्षः	३	६२	वरटः	४	८१
लत्तिका	३	१४७	वक्षः	४	२२०	वठरः	५	३८
लभमः	३	११७	वक्षाः	४	२२१	वर्णः	३	१०
लभकः	२	३३	वग्नः	३	३३	वरणः	२	७४
लवङ्गः	१	१२०	वङ्क्तिः	४	६६	वर्णसिः	४	१०७
						वर्णिः	४	१२४

शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श
वर्णः	३	३८	वस्तिः	४	१८०	वार्त्ताकम्	३	७८
वरुणः	३	५३	वसुः	१	७०	वार्त्ताकः	४	१५
वरिण्यः	३	८८	वस्रः	३	६	वार्त्ताकुः	३	७८
व्रततिः	४	५८	वसन्तः	३	१२८	वारि	४	१२५
वरत्रा	३	१०७	वसिः	४	१४०	वावद्रुकः	४	४१
वरुद्रम्	४	१०३	वसुः	१	१०	वात्रः	२	१३
वर्त्तनिः	२	१०६	वस्त्रः	२	१३	वाशिः	४	११८
वर्त्तिः	४	११८	वसुरोचिः	२	१११	वाशिः	४	१२५
वर्त्तिः	४	१४१	वहतिः	४	६०	वाशुरा	१	३८
वर्त्तिका	३	१४६	वहित्रम्	४	१०३	वासः	४	२१८
वरुथः	२	६	वहतुः	१	७७	वासरः	३	१३२
वर्द्धम्	२	२७	वहन्तः	३	१२८	वासिः	४	१२५
वर्षः	४	२०१	वन्धिः	४	५१	वासुः	१	१
वर्षः	४	२०१	वह्यम्	४	११२	वासु	१	७०
वरण्डः	१	१२८	वाक्	२	५७	वास्तुकः	४	४१
वर्वरीकः	४	१८	वागुरा	१	४१	वाहसः	३	११८
वर्विः	४	५३	वातः	३	८६	वाहीकः	४	२५
वर्षम्	३	६२	वातप्रमीः	४	१	विः	४	१३४
वरसानः	२	८६	वातिः	५	६	विक्रयिकः	२	४४
वल्कः	३	४२	वादिः	४	१२५	विकुस्रः	२	१५
वलाका	४	१४	वादित्रम्	४	१७१	विचक्षाः	४	२३३
वलूकः	४	४०	वापिः	४	१२५	विजयन्तः	३	१२८
वल्लुगः	१	१८	वामः	१	१४०	विटपः	३	१४५
वल्लीकम्	४	२५	वायसः	३	१२०	विडङ्गः	१	१२१
वलयम्	४	८८	वायसः	४	१८८	विडालः	१	११८
वङ्गूरम्	४	८०	वायुः	१	१	वितद्रुः	४	१०२
वस्तम्	३	८८	व्याघ्रः	५	६३	वितस्त्रिः	४	१८३
वस्त्रम्	४	१५८	वारङ्गः	१	१२२	विद्युः	१	३८
वसतिः	४	६०	व्राजिः	४	१२५	विदधः	३	११५

शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू	शब्दाः	पं	सू
विधुः	१	२३	हृशः	४	१०४	शक्रः	२	१३
विधुरः	१	३८	हृथिकः	२	४०	शकलम्	१	११२
विपणिः	४	११८	हृषपः	४	१००	शकुलः	१	४१
विपिनम्	२	५२	हृषा	१	१५६	शक्ता	४	११३
विप्रः	२	२८	वेणिः	४	४८	शकरी	४	११३
विल्वम्	४	८५	वेणुः	३	३८	शङ्कुः	१	३६
विशिपः	३	१४५	वेतनम्	३	१५०	शङ्खः	१	१०२
विशालः	१	११८	वेत्रम्	४	१६७	शशठः	४	१०४
विश्वम्	१	१५१	वेतसः	३	११८	शशिङ्गलः	१	५४
विश्वप्सन्	१	१५८	वेदिः	४	११८	शशठः	१	८८
विश्वभोजाः	४	२३८	वेधाः	४	२३५	शतद्रुः	१	३५
विश्ववेदाः	४	२३८	वेनः	३	६	शतिः	४	१२२
विषा	४	३६	वेन्ना	३	८	शत्रिः	४	६७
विष्टपः	३	१४५	वेमा	४	१५०	शत्रुः	४	१०३
विष्टरश्वाः	४	२२७	वेशन्तः	३	१२६	शतेरः	१	६०
विष्णुः	३	३८	वेष्टम्	४	१६०	शद्रिः	४	६५
विहा	४	३६	वेष्पः	३	२३	शपथः	३	११३
वीकः	३	४७	वेहत्	२	८५	शब्दः	४	८७
वीचिः	४	७२	वैजयन्तः	३	१२८	शबलः	१	१०५
वीणा	३	१५	व्योम	४	१५१	शमठः	१	१००
वीघ्नम्	२	२६	श			शमथः	३	११३
वीरः	२	१३	शकटः	४	८१	शम्बः	४	८४
हृकः	३	४१	शक्तिधरः	२	२२	शम्बुकः	४	४१
हृक्षः	३	६६	शक्तत्	४	५८	शम्बूकः	४	४१
हृजनम्	२	८१	शकुनः	३	४८	शमलम्	१	११२
हृजिनम्	२	४०	शकुनिः	३	४८	शमश्रुः	५	२८
हृत्रः	२	१३	शकुन्तः	३	४८	शयण्डः	१	१२८
हृदयवाः	४	२२७	शकुन्तिः	३	४८	शयथः	३	११३
हृदसानः	२	८७	शक्ता	४	१४७	शयानकः	३	८२

शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श
अयुः	१	७	अवपः	३	२८	अिरीषः	४	२०
अयुनः	३	६१	अस्त्रम्	४	१६४	अिकुः	१	३२
अरिः	४	१२८	अंस्ता	२	८४	अिरुपम्	३	२८
अरुः	१	१०	आकम्	३	४३	अितम्	२	१३
अर्करा	४	३	आदः	४	८०	अिवः	१	१५३
अरथ्यम्	३	१०१	आमः	१	१४६	अिभिदानः	२	८२
अरणिः	२	१०२	आमाकः	४	१५	अिविरम्	१	५३
अरत्	१	१३०	आरिका	४	१२८	अिशिरः	१	५३
अरमः	३	१२२	आरिः	४	१२८	अिशुः	१	२०
अर्म	४	१४५	आर्ङ्गः	१	१२०	अीकरः	३	१३१
अरिमा	४	१४८	आर्दूलः	४	८०	अीधुः	४	३८
अरीरम्	४	३०	आलभञ्जिका	२	३२	अीः	२	५०
अर्पः	१	१५५	आलिः	४	१२०	अीरः	२	१३
अवणा	२	७८	आलुः	१	५	अीर्विः	४	५४
अवाय्यः	३	८६	आलुकम्	४	४२	अीलम्	४	३८
अर्वरी	२	१२१	आलूरः	४	८०	अीवा	४	११४
अर्शरीकः	४	१८	आ	१	१५८	अकः	३	४३
अलकम्	३	४३	आस्ता	२	८४	अलिः	३	१५५
अलकः	४	१०८	आस्तिः	४	१८०	अकः	२	३८
अल्यम्	३	१८	अिक्यम्	५	१६	अकम्	२	२८
अलाका	४	१४	अिखा	५	२४	अचिः	४	१२०
अलभः	३	१२२	अियुः	५	१०२	अनकः	२	३२
अल्यम्	४	१०७	अिष्ठाणकः	३	८३	अन्ध्युः	३	२०
अलिः	४	१२८	अिष्ठाणम्	३	८३	अभम्	२	१३
अवः	४	१८३	अितिः	४	१२२	अभिः	४	६५
अवयीचिः	४	७१	अिथिलः	१	५२	अल्वम्	४	८५
अवरः	३	१३१	अिनिः	४	५१	अलकः	३	४१
अवसानः	२	८६	अिरः	४	१८४	अुणाः	३	१२
अवसुरः	१	४४	अिरिः	४	१४३	अुभम्	१	१४४

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
शुशिरम्	१	५१	स			स्यन्दनः	२	७८
शुशिलः	१	५६	सक्तुः	१	६८	स्यमिकः	३	४६
शुक्रः	२	१८	सक्थि	३	१५४	स्यमीकः	३	४६
शूरः	२	२५	स्कान्यः	४	२०७	सरः	४	१८८
शूर्पम्	३	२६	संकुक्तः	२	२८	सरकम्	५	३५
शूलधरः	२	२२	सखा	४	११७	सर्जः	१	८०
शृङ्गः	१	१२६	संग्रहणी	५	६७	सरट्	१	१३४
शृङ्गारः	३	१३६	स्नयितुः	३	२८	सरटः	४	८१
शृङ्गः	१	८१	स्नवकः	४	८६	सरटः	४	१०५
शेषः	४	२०१	स्नम्बः	४	८६	सरण्डः	१	१२८
शेषालः	४	३८	सत्रम्	४	१६७	सरणिः	२	१०२
शेषः	४	२०१	स्तरिमा	४	१४८	सरण्युः	३	८१
श्रेयतः	३	८३	स्तरोः	३	१५८	सरित्	१	८७
श्रेयनः	२	४६	स्तपतिः	४	५८	सर्पिः	२	१०८
श्रेणिः	४	५१	स्थविः	४	५६	सर्मः	१	१४०
श्लेषा	४	१४५	स्थविरः	१	५३	सरिमा	४	१४८
शिवः	१	१५२	सदः	४	१८८	सरयुः	३	२२
शेवा	४	१५४	सधिः	२	२१३	सरयूः	३	२२
शेवालः	४	३८	सन्ध्या	४	११२	सरलः	१	१०६
शैवलः	४	३८	सनिः	४	१४०	सर्वः	१	१५३
शोचिः	२	१०८	सप्त	१	१५७	सर्ववेदाः	४	२२७
शोधः	२	४	संपातिः	५	५	सर्वपः	३	१४१
शोणः	३	६	समीचः	४	८२	सलिलम्	१	५४
शोणिः	४	५१	समीची	४	८२	संवत्सरः	३	७२
शोत्रम्	४	१६८	समिधः	२	११	स्वधा	४	१७५
शोटीरः	४	३०	सम्प्रह्वाणिः	४	१२५	सवनः	२	७४
ष			समया	४	१७५	स्वप्नः	३	१०
षण्डः	१	११४	समरः	३	१३१	सव्यम्	४	११०
षिङ्गः	१	१२४	संयदरः	३	१	सव्येष्ठा	३	१०१

शब्दाः	पं	श्र	शब्दाः	पं	श्र	शब्दाः	पं	श्र
स्वहः	१	१०	सार्थः	२	५	सुधर्मा	४	१५२
स्वर्भानुः	३	३२	सारथिः	४	८८	सुषा	३	६६
स्वसा	२	८६	स्वाती	४	१३१	सुपयाः	४	२२३
स्वस्ति	४	१८१	स्वादुः	१	१	सुप्रतीकः	४	२५
संवसथः	३	११६	साम्रा	३	१५	सुयशाः	४	२२३
संघत्	२	८५	सिक्थम्	२	०	सुमेरुः	४	१०१
संस्तवानः	२	८८	सितम्	३	८८	सुरः	२	२४
सस्यम्	४	१०८	स्तिभिः	४	१२२	स्रक्	२	६२
सहः	४	१८८	स्थिरः	१	५३	सुरेणुः	३	३८
सहसानः	२	८७	सिन्दूरम्	१	६८	सुरतः	५	१४
सहारः	३	१३८	सिन्धुः	१	११	स्रवः	२	६१
सहुरिः	२	७३	सिध्नः	२	१३	सुवक्षाः	४	२२७
सहोरः	१	६५	सिनः	३	२	सुविह्वलम्	३	१०८
साकम्	३	४३	स्फिरः	१	५३	सुवनम्	२	८०
स्थाणः	३	३७	सिमः	१	१४४	सुशर्मा	४	१५२
स्थाम	४	१४५	सिरा	२	१३	सृष्टु	१	२५
स्थालम्	१	११६	सिंहः	५	६२	सुस्तीतः	४	२२३
सादिः	४	१२५	सीता	३	८०	सृज्यम्	४	१७७
साधन्तः	३	१२८	स्त्री	४	१६६	सृचः	४	८३
साध्वसम्	३	११७	स्त्रीर्विः	४	५४	सृचिः	४	१३८
साधुः	१	१	सौमा	४	१५१	सृची	४	८३
सानु	१	३	सौमिकः	२	४३	सूपः	३	२५
सायुः	१	१	सीरः	२	३५	सूत्रम्	४	१६३
सावा	४	११३	सुजवाः	४	२२३	सूणा	३	१५
सानसिः	४	१०७	सुतपाः	४	२२७	सूरः	५	४
स्फारम्	२	१३	सुतेजाः	४	२२७	सुनुः	३	३५
साम	४	१५३	सुत्रामा	४	१४५	सूना	३	१३
सारङ्गः	१	१२२	सुवेप्यम्	३	८८	सूपः	३	२६
सारणिः	२	१०३	सुवेप्यम्	३	८८	सूमः	१	१४५

शब्दाः	पं.	सं.	शब्दाः	पं.	सं.	शब्दाः	पं.	सं.
स्यूनः	३	८	ह			हालः	१	१
स्यूमः	१	१४४	हतुः	३	३०	हासाः	४	२२१
सूः	२	५०	हयः	२	२	हिङ्गुः	१	३६
सूरः	२	२४	हन्ता	२	८४	हिण्डीरः	४	३०
सूरतः	५	१४	हनुः	१	१०	हिमम्	१	१४०
सूरिः	४	६४	हनुषः	४	०३	हिरण्यम्	५	४४
सुकः	३	४१	हरिः	४	११८	हिरण्यरेताः	४	२२७
सृणः	४	१०४	हरिणः	२	४६	हिंसीरः	५	१८
सृणः	४	४८	हरिणः	२	१	ह्रीका	३	४८
सृणीका	४	२३	हरित्	१	८७	ह्रीकुः	३	८५
सृत्वा	४	११४	हरितः	३	८३	ह्रीका	३	४८
सृदाकुः	३	०८	हरिद्रुः	१	३४	ह्रीकुः	३	८५
सृदरः	५	४१	हरिमा	४	१४८	हृदयम्	४	१००
सृमः	२	१३	हर्यतः	३	११०	हृषीकम्	४	१७
सृहयाय्यः	३	८६	हर्षयितुः	३	२८	हृषुः	१	२३
सेतुः	१	६८	हर्षुलः	१	८६	हंतुः	१	०३
स्तेनः	२	४६	हृस्वः	१	१५३	हेम	४	१४५
सेना	३	१०	हलिः	४	११८	हेमन्तः	३	१२८
सेहा	१	१५८	हविः	२	१०८	हेलिः	४	११८
सेडुः	१	१०	हंसः	३	६२	होता	२	८५
सोमः	१	१४०	हंसि	४	१५४	होत्रम्	४	१६८
स्तोमः	१	१४०	हस्तः	३	८६	होमः	१	१४०
सोमः	४	१५१	हस्तः	२	१३	होमा	४	१५१
सोमा	३	८	हाग्नम्	४	१६०	होमी	३	८४
स्रोतः	४	२०२	हानिः	४	५१	ह्रीनः	४	१०५
			हारिः	४	१२५			

शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि	पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
७	७	अयूते	अयूनाति	१४४	२३	४७	१४७
२३	२३	भेषजमेव	भेषमेव	१४६	५०	८	८०
४०	२	ह्यथः	ह्यथः	१४६	८०	१०१	१०८
४४	८	तदन्त्रम्	तदन्त्रम्	११८	३२	४	१
४५	८	संभ्रमत्या	संभ्रमत्या	१५०	८	६०	१६०
४८	७	स्त्येनः।।श्येनः।	श्येनः।।स्त्येनः।	१५०	३१	२६	८६
५२	२३	व्युत्पन्नपक्षे	व्युत्पन्नपक्षे	१५५	८२	६४	६८
६४	२१	लक्षणा	लक्षणा	१५८	६८	मरिचिः	मरीचिः
६८	१७	रक्षकः	रक्षः	१६१	१५	युवाः	युवा
७२	११	युवती	युवतिः	१६१	५८	२५	१२५
१०८	१२	ममते	मवते				

इति

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library

मुससुरी
MUSSOORIE

अवधि मं०

Acc. No.....

कृपया इस पुस्तक को निम्नलिखित दिनांक या उससे पहले वापस
कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped
below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL SANS 491.25
PAN



125487

Sans

491.25

LIBRARY

~~12974~~

भाषिनी

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

MUSSOORIE

Accession No. 125487

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving